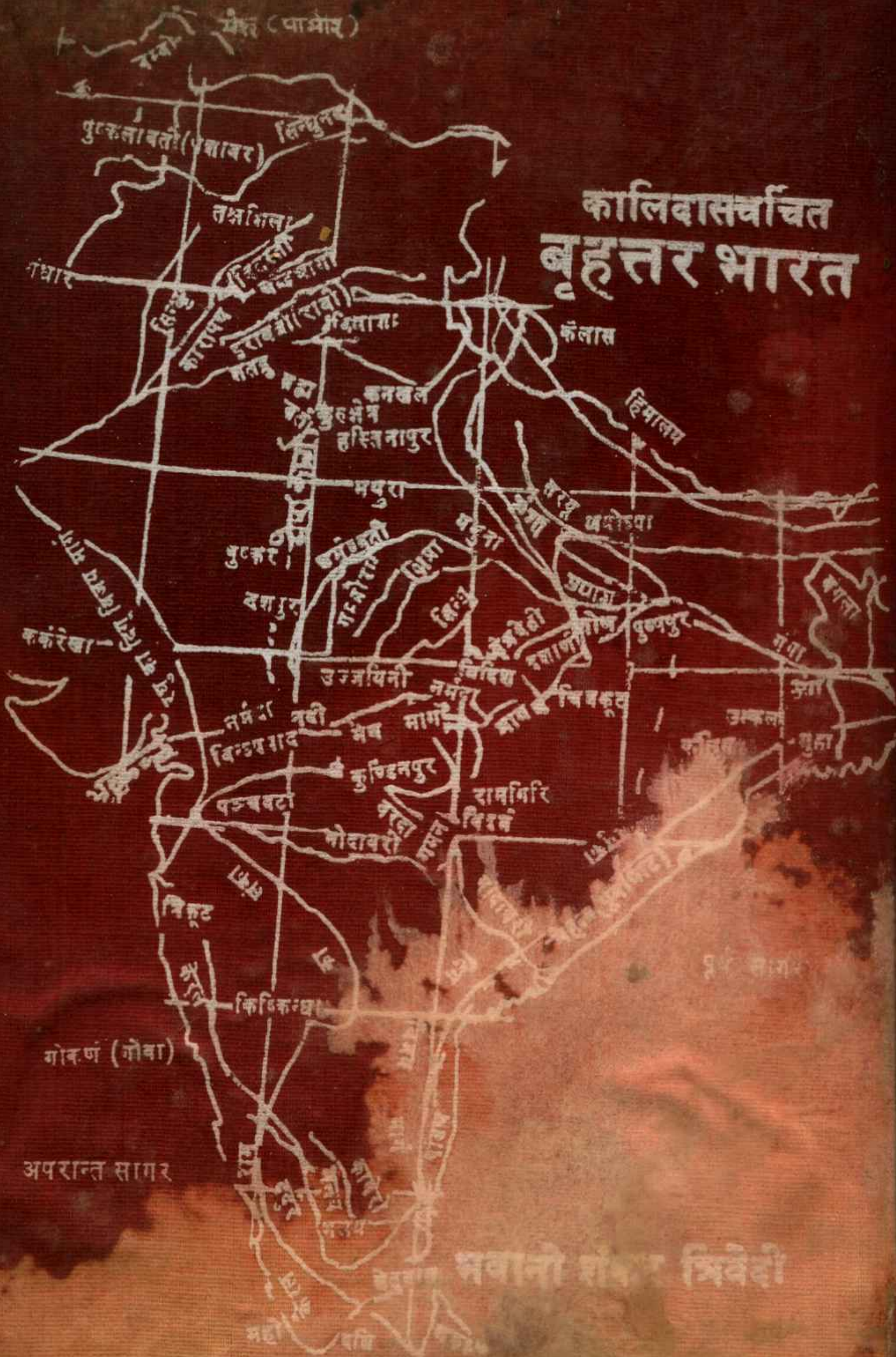
कालिदासवर्णित
बृहत्तर भारत



भवानी शंकर त्रिवेदी

कालिदास-चर्चित बृहत्तर भारत

भवानी शंकर त्रिवेदी

भारतस्य पराभक्तिः रक्षणं वेदसंस्कृतेः ।
राष्ट्रैक्योद्बोधनं ध्येयं कालिदासस्य मन्महे ॥

संस्कृतं संस्कृतिश्चैव रक्षणीये प्रयत्नत:

राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में

कालिदास-चर्चित बृहत्तर भारत

लेखक—
डा० भवानी शंकर त्रिवेदी
एम० ए०, पी-एच० डी

प्रकाशक—
आर्य भारती
जी-१८, दिलशाद कालोनी, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

प्रकाशक—
आर्यभारती
जी-१८, दिलशाद कालोनी
शाहदरा, दिल्ली-३२

प्रथम संस्करण १९८६

मूल्य : १००-०० (एक सौ रुपये केवल)

मुद्रक—
पङ्कज प्रिन्टर्स
मौजपुर, दिल्ली-५३

दो शब्द

करुणावरुणालय आशुतोष भगवान् शंकर की अनुपम अनुकम्पा व समादरणीय डा० मण्डनमिश्र जी के अनन्य आत्मीयभाव के फल स्वरूप श्री लाल बहादुर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ से मेरे कर्मकाण्ड प्रकाश के द्वितीय भाग 'संस्कार प्रकाश' का मुद्रण सम्पन्न होने के कुछ ही दिनों बाद जब मैंने इस ग्रन्थ की प्रति दिखाई तो परमप्रहर्षित उनके मुख से निकल पड़ा, आप खूब लिख रहे हैं। मैंने कहा मैं आज-कल कहां लिख पा रहा हूं, यह सब पहले की ही लिखी लिखायी सामग्री है जो प्रभु की कृपा से अब प्रकाश में आने लगी है। सन् ५८ तक मेरे ५-७ अच्छे ग्रन्थ छप जाने के बाद सन् ८२ तक दैनिक हिन्दुस्तान आदि में यदाकदा प्रकाशित होने वाले लेखों के सिवा मेरी कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हो पायी थी, तथापि साहित्य-साधना तो निरन्तर चलती ही रही। इस अवधि में यूरोप की अंग्रेजी, जर्मन तथा ग्रीक, लेटिन व फारसी आदि के साथ संस्कृत का तुलनात्मक अध्ययन, कर्मकाण्ड सम्बन्धी प्रभूत सामग्री और व्रतपर्वोत्सव प्रकाश की पाण्डुलिपियां तय्यार हो गईं, और 'संस्कृतं यूरोपीया भाषाश्च' ग्रन्थ के प्रकाशन के कुछ ही समय पश्चात् संस्कार प्रकाश भी छप गया। अब यह ग्रन्थ भी पाठकों के सेवा में सहर्ष समर्पित किया जा रहा है। जैसा कि अगले पृष्ठों में स्पष्ट किया गया है, बन्धुवर डा० गणेशदत्त जी शर्मा एम० ए० पी-एच० डी० (प्राचार्य लाजपत राय कालिज, साहिबाबाद) के प्रेरक प्रोत्साहन के फल-स्वरूप ही यह ग्रन्थ निर्मित हो पाया।

इस ग्रन्थ के लेखन व प्रकाशन में पारिवारिक जनों के सिवा अनेक विद्वद् बन्धुओं से यथासमय यथेष्ट साहाय्य मिलता रहा है। डा० सी०वी० पाण्डेय (स० क्यूरेटर राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली), श्री पं० मोतीलाल जी शास्त्री (महामंत्री राजस्थान संस्कृत सम्मेलन, जयपुर), श्री डा० श्रीनिवास जी रथ (संस्कृत विभागाध्यक्ष विक्रम-विश्व विद्यालय उज्जैन) व श्री डा० बलजिन्नाथ जी पंडित (जम्मू) तथा समादरणीय श्री पं० रामनिवास जी हावा अजमेर व विद्यावयोवृद्ध श्री बाबू साहब पं० लक्ष्मी लाल जी जोशी (जयपुर) जैसे विद्वद्वरेण्यों के नाम विशेष रूप से मैं यहाँ लेना चाहूंगा। जो पारिवारिक जन मेरी साहित्य साधना में नाना रूपों में सदा हाथ बटाते रहते हैं उनमें श्री पं० आनन्द शंकर जी व्यास ज्यौतिषाचार्य उज्जैन, श्री पं० कजोड़ी मल जी (इन्दौर) के सुपुत्र व मेरे साढू (सौ० चन्द्रकला के पति) श्री आयुष्मान् विश्वनाथ जी आचार्य (निदेशक संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक एवं सास्कृतिक परियोजना, शाजापुर), भीलवाड़ा मण्डलान्तर्गत ब्रह्मपुरी (मरेवडा) ग्राम वास्तव्य मेरे पूज्य नाना जी गणेश लाल जी जोशी के सुपौत्र एवं श्री मोहनलाल जी के पुत्र डा० हरिप्रसाद जोशी

(प्राध्यापक गवर्नमेंन्ट गर्ल्स कालिज, रतलाम) मेरे एक अन्य साढ़ू श्री पं० वसन्त कुमार जी जोशी (सौ० कोशल्या के पति) उज्जैन, इस ग्रन्थ के लिये उपयोगी विविध सामग्री जुटाने में लगे रहे हैं।

अन्यान्य कृतियों की भांति इस रचना के लिये भी मेरे ज्येष्ठ पुत्र चि० रविशर्मा (एम०ए० अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी) ढूंढ-ढूंढ कर अत्युपयोगी परमावश्यक सहायक ग्रन्थ ही नहीं जुटाते रहे, उन ग्रन्थों में से उपयोगी अंश भी स्वयं पढ़-पढ़ कर बताते रहे हैं, इनकी पत्नी एवं मेरे बालसखा श्री पं० लक्ष्मी नारायण जी शास्त्री की ज्येष्ठ सुपुत्री सौ० ललिता (एम० ए० चित्रकला व हिन्दी) ने बड़े परिश्रम से प्रामाणिक मानचित्र बनाया, मेरे तृतीय पुत्र चि० भारतेन्दु प्रेस से प्रूफ व अन्यान्य सामग्री जुटाने की दौड़-धूप में अहर्निश व्यस्त रहे, और सबसे बड़ा कार्य सम्पन्न कर रहे हैं मेरे छोटे पुत्र चि० आनन्द शर्मा एम० ए०। इन्होंने मेरी अन्यान्य रचनाओं की भांति इस ग्रन्थ की भी अनेकों बार परिवर्तित, परिवर्धित एवं संशोधित पाण्डुलिपि को पौनःपुन्येन लिखने, टंकित करने व प्रूफ पढ़ने जैसे अत्यन्त दुरूह कार्य को बड़े मनोयोग पूर्वक सम्पन्न किया, उन्हीं के सतत श्रम का ही सुपरिणाम यह ग्रन्थ है। वस्तुतः—

गणेशायत आनन्दशर्मा म आत्मजसुधीः।
लिखिताष्टंकिताश्चैव येन मे ग्रन्थराशयः॥

उक्त सब समादरणीय विद्वद्बन्धुओं के प्रति अपना आभार एवं आत्मीयजनों के लिये आशीर्वादात्मक शुभाकांक्षा पूर्वक मैं अपनी यह नवीन कृति गुणग्राहक पाठकों के करकमलों में सहर्ष सादर समर्पित कर रहा हूं।

विदुषामाश्रवः
भवानी शंकर त्रिवेदी

श्री गणेश चतुर्थी महोत्सव सं० २०४३
जी० १८, दिलशाद कालोनी, दिल्ली-३२

प्राक्कथन

डॉ० भवानी शंकर त्रिवेदी ने कालिदास चर्चित बृहत्तर भारत के द्वारा महाकवि कालिदास के नेतृत्व में भारत की अनन्त सुषमा का साक्षात्कार करने का प्रयास किया है। विषय प्रवेश में डॉ० त्रिवेदी ने अपने इसी संकल्प को दुहराते हुए यात्रा की तैय्यारी की है। "बृहत्तर भारत और उसके आस-पास के प्रदेशों की सही जानकारी देने वाले एक सुलझे हुए भूगोल-तत्त्वज्ञ मार्गदर्शक की भांति कवि, सम्बद्ध क्षेत्र की सभी प्रमुख विशेषतायें, दर्शनीय स्थल, सरित-सरोवर-समुद्र, पशुपक्षी, वानस्पतिक उपज, जन-जीवन तथा उसके आचार-विचार आदि का कहीं सूक्ष्म-सांकेतिक तो कहीं विशद वाणी से दिग्दर्शन कराता चलता है।"

डॉ० त्रिवेदी ने अपनी इस यात्रा को आठ अध्यायों में बांट दिया है। भौगोलिक दृष्टिकोण से भारत को पूर्व, दक्षिण, पश्चिमोत्तर और मध्य क्षेत्रों के रूप में चार भागों में विभक्त किया गया है। त्रिवेदीजी ने इस विभाजन के लिए पुराणों के भुवनकोशों को आधार माना है। विद्वान् लेखक ने भू-भागों के वैशिष्ट्य को परखते हुए आकाश मण्डल के रूपायन को भी अलग से देखने का उपक्रम किया है। कालिदास कालीन सामाजिक वृत्त की पहचान इस यात्रा की परिणति बनकर उभरी है।

विशाल भारत का जो मानचित्र कालिदास की कृतियों में अंकित हुआ है, वह निश्चित ही अन्यत्र दुर्लभ है। कालिदास के पास उसके भारत के एक विश्वसनीय चित्र के साथ जीवन-दर्शन की संश्लिष्ट झांकी भी है। कालिदास के सम्मुख धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं के विभिन्न आदर्श और परस्पर विरोधी संघर्ष की कुछ भूमिकायें तो अवश्य रही होंगी, परन्तु उनके साहित्य में ऐसा एक भी विसंवादी स्वर अनुगुञ्जित होता सुनाई नहीं देता।

भारतीय अनुश्रुतियों की परम्परा में कालिदास विक्रम संवत् के प्रवर्तक किसी विक्रमादित्य के साथ माने जाते हैं। पाश्चात्य विवेचकों ने इस अनुश्रुति को चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य से जोड़कर देखने का प्रयास किया है। इतिहास के प्रकाश में ईसवी सन् के प्रारम्भ से ५७ वर्ष पूर्व विक्रम

संवत् का प्रवर्तक कोई विक्रमादित्य कहीं दिखाई नहीं देता। इधर कालिदास के नाटक मालविकाग्निमित्र तथा रघुवंश के अन्तिम सर्ग में शुंग कालीन अग्निमित्र झांकता दिखाई देता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के आभा-मण्डित युग में अग्निमित्र के समसामयिक बिखराव को चित्रित करने का क्या औचित्य हो सकता है? क्या कालिदास गुप्तकाल के स्वर्णिम युग के अपने परिवेश से इतने अछूते रह सकते थे कि अग्निवर्ण ही उनका समसामयिक यथार्थ बनकर रह जाता?

रघु की विजय-यात्रा में कुछ इतिहासविद् समुद्रगुप्त की विजययात्रा की छाया देखते हैं। रघु की सेना को वंक्षु नदी के पास हूणों के पड़ाव दिखाई देते हैं और कालिदास का स्वर हूणों से आतंकित नहीं है। गुप्तयुग के इति-हासकार कालिदास को जिस काल में प्रतिष्ठित करते हैं, वहां यदि हूणों का दवाब भारत को आतंकित करने लगा हो तो उस आतंक से मुक्ति पाकर भारत के आत्म-विश्वास को पुनः उभरने के लिए एक लंबे अंतराल की आवश्यकता है जिस अवधि तक कालिदास की उपस्थिति अविश्वसनीय हो जाती है। दूसरी ओर चीनी हान वंश के राजाओं को निरन्तर परेशान करने वाले हूण जो भूमध्य सागर के तट को छूने लगे थे यदि शुङ्ग वंश और काण्व-वंश के राजाओं के काल में वंक्षु नदी के पास दिखाई दिये हों तो कोई आश्चर्य की बात न होगी। कालिदास की आंखों में हूणों का प्रतिरोध या आतंक कोई समस्या ही नहीं है।

महाकवि के काल के सम्बन्ध में 'इदमित्थम्' के रूप में अभी भी कुछ नहीं कहा जा सकता। वर्तमान लेखक ने विगत वर्षों में महाकवि भास की समसामयिक प्रासंगिकता का अध्ययन करते हुए ऐसे संकेत प्राप्त किये हैं, जिनके अनुसार भास सिकन्दर महान् के आक्रमण, चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य की स्थापना तथा चाणक्य के ऊर्जस्वी नेतृत्व के साक्षी प्रतीत होते हैं। महा-कवि कालिदास ने रघुवंश के प्रारंभ में—"अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्व सूरिभिः"—कहते हुए संभवतः भास का भी स्मरण किया है। कालिदास के रघुवंश की योजना ज्ञात सन्दर्भों में महाकवि भास के प्रतिमानाटक से जितनी निकटता से सम्बद्ध है, उतनी किसी भी अन्य ज्ञात वंशावली से नहीं है। प्रश्न केवल दिलीप, रघु, अज और दशरथ के क्रम का ही नहीं है। कालिदास ने भास के क्रम के साथ साथ चरित्र चित्रण के लिए भी भास की योजना को ही अपनाया है। भास का क्रम और चरित्र चित्रण निम्ना-नुसार है:—

'अयं खलु तावत् सन्निहितसर्वरत्नस्य विश्वजितो यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्ज्वलितधर्मप्रदीपो दिलीपः।

अयं खलु तावत् संवेशनोत्थापनयोरनेकब्राह्मणजनसहस्रप्रयुक्त पुण्याहशब्दरवो रघुः।
अयं खलु तावत् प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तराज्यभारो नित्यावभृथस्नानप्रशान्तरजा अजः।
येन प्राणाश्च राज्यं च स्त्रीशुल्कार्थे विसर्जिताः।
इमां दशरथस्य त्वं............'

यहां यह द्रष्टव्य है कि कालिदास ने दिलीप के लिए निर्दिष्ट विश्वजित यज्ञ को रघु से जोड़ कर प्रथम तीनों नृपतियों को, भास का अनुसरण करते हुए, धर्म, अर्थ और काम का प्रतिनिधित्व सौंप दिया है। मालविकाग्निमित्र के सन्दर्भ से ज्ञात होता है कि भास के नाटक कालिदास के काल में भी प्रसिद्धि के शिखर पर थे। यदि भास मौर्य साम्राज्य की स्थापना के साक्षी रहे हों तो कालिदास उनसे सात या आठ शताब्दियों की दूरी पर प्रतीत नहीं होते।

कालिदास के मेघदूत की विदिशा यदि दिग्दिगन्त प्रसिद्ध राजधानी थी तो वह शुङ्ग काल की विदिशा हो सकती है गुप्त काल की नहीं। गुप्तकाल के नृपति परम-भागवत थे। कालिदास भास के समान राम को अवतारी पुरुष स्वीकार करते हुए भी सर्वत्र शिव-भक्त ही प्रतीत होते हैं। कुमारसम्भव के रचयिता कालिदास को गुप्तकाल तक सुप्रतिष्ठित गणेश की जानकारी का कोई संकेत नहीं मिलता है। कालिदास के दशार्ण और अनूप प्रदेश भी किसी भी ऐतिहासिक सन्दर्भ में गुप्तकाल तक दशार्ण, और 'अनूप' नहीं रह गये थे।

कालिदास के भूगोल के साथ इतिहास के ऐसे अनेक पक्ष हैं जो अभी भी सम्पूर्ण समाधान नहीं पा सके हैं। डॉ० त्रिवेदी ने कालिदास के भारत को इतिहास के उसी परिधि में परखने का प्रयास किया है जो अधिकांश पाश्चात्य विद्वानों की शोध-सम्मत दृष्टि के अनुकूल है और अनेक अग्रणी भारतीय विद्वानों को भी अभीष्ट है। कालिदास के लिये गुप्त-काल की अवधारणा के समर्थक प्रायः सभी विद्वान् अपने दृष्टिकोण को वैज्ञानिक पद्धति के अनुकूल मानते हैं। गुप्तकाल के अभिलेख, स्थापत्य और मूर्तिकला में इन विद्वानों को कालिदास साहित्य के संवादी स्वरों का अनुगुञ्जन भी सुनाई देता है।

डॉ० भवानी शंकर त्रिवेदी कालिदास को राष्ट्रकवि न कह कर 'भारत कवि' कहना पसन्द करते हैं। **डॉ० त्रिवेदी का 'कालिदास चर्चित बृहत्तर भारत' एक लम्बे अर्से तक सुनियोजित गहन अध्ययन और गम्भीर मनन के उपरान्त पाठकों के समक्ष आ रहा है। डा० त्रिवेदी ने अपनी इस**

महायात्रा में कालिदास के साहित्य का प्रायः प्रतिपद विवेचन प्रस्तुत किया हैं।

आज भारत में विघटन की शक्तियों का सामना करना और देश की अखण्डता का संरक्षण सर्वोपरि महत्त्व के प्रश्न हैं। इस महनीय कार्य में जिस अदम्य साहस और शक्तिमत्ता की हमें आवश्यकता है उसका अवलम्ब भी हमें अपने सांस्कृतिक धरोहर से ही प्राप्त हो सकता है। मुझे पूरा विश्वास है कि डॉ० भवानीशंकर त्रिवेदी के साथ 'कालिदास चर्चित बृहत्तर भारत' की यात्रा वर्तमान युवा पीढ़ी को नया आत्मविश्वास प्रदान करेगी। यह आत्म-विश्वास आज के भारत के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कालिदास के भारत के लिये था।

विद्वेषातङ्कविध्वंसप्रतिरोधाय निश्चितम्।
भारतं प्रेरयत्येव कालिदासस्य भारती ॥

श्रीनिवास रथ
आचार्य एवं अध्यक्ष
संस्कृत अध्ययनशाला,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

उज्जयिनी
अनन्त चतुर्दशी,
सम्वत् २०४३

श्री महाकाल भगवान्



अप्यन्यस्मिन् जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
कुर्वन् सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥

—कालिदास (मेघदूत ३४)

श्री १०८ गुरुवर्य अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराज



जन्म : आषाढ़ शुक्ला दशमी सं० १९६० कैलासवास : कार्तिक शु० ९ सं० २०३६

सर्वतन्त्रस्वतन्त्रो यः पदवाक्यप्रमाणवित् ।
सिद्धविद्याधरो योगी शिवः साक्षात् कवीश्वरः ।१।
सर्वोपकारनिरत आचार्योऽमृतवाग्भवः ।
श्रीगुरुं पूज्यपादं तं सादरं प्रणमाम्यहम् ।२।

पूज्यपादगुरुवर्यैं श्रीमदमृतवाग्भवाचार्यैरस्य ग्रन्थस्य कृते

विशेषतो विरचितम् आशीर्वादात्मकम्

कालिदासप्रशस्तिपंचकम्

मन्दाक्रान्तां सुललितपदां चारुवर्णां सुवृत्तां
कृत्वा कान्तां कविवरपदे प्राप कीर्ति समृद्धाम् ।
काव्यश्रेष्ठं भरतभूवि यो पुत्रवान् मेघदूतम्
निर्मायाऽयं ननु विजयते कालिदासः कवीन्द्रः ।१।

कविवरकलितानां मर्मवेत्ता कलानां
जयति कृतिकराणां मण्डनं पण्डितानाम् ।
ललितललितकाव्यैर्भूषयन् देववाणीं
जयति जयति विश्वं कालिदासः कवीन्द्रः ।२।

यो भारतीयजनताव्यवहारजातं
गोग्रामशखिनगरीपशुपक्षिजातम् ।
संवर्णयन् कविदृशा पटुचित्रकारो
ऽपूर्वः स कौ विजयते कविकालिदासः ।३।

संवर्ण्य पर्वतनदीपदवीपुरादि-
स्थानानि भारतभुवं विजयीकरोति ।
आनन्दसागरनिमग्नसमाधिसौख्यं
लोके प्रसारयति कौ कविकालिदासः ।४।

कविः कोऽपि येन प्रसिद्धो जगत्यां
न जातोऽद्ययावत् समानः कवित्वे ।
प्रकृत्याः परेशस्य सूक्ष्मेक्षिकायां
कविर्भारतेऽभूत् स नः कालिदासः ।५।

विषय-सूची

चतुर्थ अध्याय

दक्षिणक्षेत्र

पंचम अध्याय

उदीच्य-पश्चिमोत्तर क्षेत्र

षष्ठ अध्याय

मध्य क्षेत्र—आर्यावर्त

सप्तम-अध्याय

अष्टम-अध्याय

चित्र-सूची

अवतरणिका

सूर्यनारायणव्यासविद्वद्वन्द्यप्रवर्तिते ।
कालिदासोत्सवे भव्ये प्रत्यब्दं समनुष्ठिते ॥१॥

आसमुद्रहिमाद्रीणामावेदशास्त्रवर्त्मनाम् ।
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने शक्ति[1]शालिनाम् ॥२॥

वार्धक्य आत्मज्ञानेन यततां श्रेयसेऽनिशम् ।
विश्वविद्यालयस्थानां सर्वतन्त्रस्वतन्त्रिणाम् ॥३॥

विद्वद्वरेण्यवृन्दानां कवीनां क्रान्तदर्शिनाम् ।
विज्ञानां पत्रकाराणां कालिदासानुरागिणाम् ॥४॥

विद्योत्तमपुरन्ध्रीणां छात्राणां प्रतिभाजुषाम् ।
संस्कृतासक्तस्वान्तानामवन्तीन् समुपेयुषाम् ॥५॥

रथस्य श्रीनिवासस्य स्नेहार्द्रचेतसः कवेः ।
आत्मीयतासुधाक्षिप्रां सानन्दमवगाहताम् ॥६॥

साहचर्ये शुभेऽपूर्वे जनुषः पुण्यसूचके ।[2]
कान्तिमत् स्वर्गखण्डेऽस्मिन् सप्ताहं वसता मुदा ॥७॥

श्रीकमलेशदत्ताद्यैस्तज्ज्ञैश्चर्चाश्च कुर्वता ।
भूमिकैषा मयारब्धा नेत्राब्धिखाक्षिवत्सरे ॥८॥

---

१. शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥
शक्तिः कवित्वबीजरूपः संस्कारविशेषः कश्चित् ।

—काव्यप्रकाशः

२. हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः ।
शरीरभाजां भवदीय दर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥

—माघः

भारतभक्त कालिदास

शैशव में रटे रटाये अमरकोश व अष्टाध्यायी आदि के साथ रघुवंश के माध्यम से कालिदास के साथ मेरा जो परिचय हुआ, वह इधर आधी शताब्दी से भी अधिक की सुदीर्घ अवधि में उत्तरोत्तर प्रगाढ़ व परिपुष्ट होता रहा। साथ ही यह भाव भी बद्धमूल होता गया कि ऊपर से वे भले ही मात्र शृंगारिक कवि प्रतीत हों, किन्तु अपने ध्येय की सशक्त जीवन्त अभिव्यक्ति के लिये ही उन्होंने शृंगार आदि रसों का पुट लगाया है। नायक नायिका की आंखमिचौनी और कृत्रिम प्रणयव्यापारप्रधान मालविकाग्निमित्र के भी अन्त में कुमार वसुमित्र के द्वारा राष्ट्र पर आततायी यवन आक्रान्ता को देश की सीमाओं के पार खदेड़ दिये जाने व विदर्भ में राज्य के लिये परस्पर लड़ रहे दो भाइयों में सन्धि की सूचना के द्वारा कवि परोक्षरूप से भारत भूमि को सदैव विदेशी आक्रमण कारियों से मुक्त कराए रखने व राष्ट्रजनों को छोटे-मोटे स्वार्थों से ऊपर उठाने एवं सदा पारस्परिक संघर्ष से बचते हुए मेल-मिलाप से रहने का सन्देश दे रहा है।

रघुवंश के सप्तम सर्ग में अज और उसके प्रतिद्वन्द्वियों के बीच—

पत्तिः पदाती रथिनं रथेशस्तुरंगसादी तुरगाधिरूढम्।
यन्ता गजस्याभ्यपतद् गजस्थं तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम्॥

रघु— ७-३७

तथा

रथी निषङ्गी कवची धनुष्मान् दृप्तः स राज्यन्यकमेकवीरः।
निवारयामास महावराहः कल्पक्षयोद्वृत्तमिवार्णवाम्भः॥

वही—७-३६

आदि में परस्पर संघर्षरत प्रतिपक्षी सेनाओं का चित्रण तथा कुमारसम्भव में तारक के साथ कुमार अथवा स्कन्द के युद्धों के दृश्यों में परम पराक्रमी वीर स्कन्दगुप्त ने आक्रांता विदेशियों को सीमाओं के पार खदेड़ते हुए जो घमासान युद्ध किए थे, उनके ही आंखों देखे जैसे वर्णन हैं। इसी प्रकार मालविकाग्निमित्र में वर्णित भारतीय वीरों का युद्ध तो प्रत्यक्ष रूप से ऐतिहासिक घटना का सूचक है ही साथ ही यदि कोई उद्बुद्ध पाठक रघुवंश और कुमारसम्भव के युद्ध दृश्यों को भी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयत्न करे तो उसे इस ऐतिहासिक तथ्य को स्वीकार करने में कोई आनाकानी न होगी कि ये युद्ध विदेशियों के साथ गुप्तसम्राटों द्वारा लड़े गए युद्धों के ही आंखों देखे चित्र हैं।

इस प्रकार अपनी मातृभूमि इस भारत को विदेशी आक्रांताओं की गृध्रदृष्टि से सदा बचाए रखने का उदात्त सन्देश देकर ही भारत भूमि के प्रति कवि अपने कर्त्तव्य की इति श्री नहीं समझ लेता। कवि की प्यारी भारत माता मानचित्र में अंकित सागर-वेष्टित, हिमालयावृत भूभाग मात्र ही नहीं है। उसकी भारतमाता जीवन्त है, सजीव है, सचेष्ट है। यहां के कोटि-कोटि जनों का हास, रुदन और शौर्य उसके कण कण से प्रकट हो रहा है। वह मुखर है, सप्राण है। छोटे से छोटे कीट-पतंग और सामान्य वनवासी जनों से लेकर राजा-महाराजा व ऋषि मुनि सभी का जीवन उसी से तो अनुप्राणित है उच्छ्वसित है। कवि वर्षा ऋतु में खेतों खलिहानों को हरी-हरी मखमली दूब पर माणिक्य के समान दमकने वाले एक छोटे से कृमि इन्द्रगोप (वीर बहूटी) को तो भला भूल ही कैसे सकता है, वह तो वर्षा का नगीना है, उसे तो अपने देश की बामी तक से प्यार है और कश्यप ऋषि की जटाओं को उससे घिरा बताता है। अपने देश के हंस, सारस और मोर जैसे सुन्दर पक्षियों के साथ ही उल्लू, गीध और कव्वे जैसे काले-कलूटे कुरूप पक्षियों से भी अनुराग है उसे, क्योंकि वह जानता है कि मेरी प्यारी मातृभूमि के लिए ऐसे पक्षी भी उपकारी ही नहीं आवश्यक भी हैं।

ऐसा वाल्मिकी और व्यास के सिवा अन्य कौन कवि है, जिसने कन्या-कुमारी से कैलास और वंग सागर से पश्चिमोदधि तककी भारतभूमि के छोटे-मोटे सभी नदी, पर्वतों, वन-उपवन-कान्तारों, प्रमुख प्रदेशों, ग्राम-नगरों और उनको परस्पर जोड़ने वाले प्रमुख मार्गों आदि का सरस सुन्दर मनोहारी सही चित्रण किया हो। व्यास औरवाल्मीकिका भारत का चतुर्दिक् वर्णन भी वैसा नहीं है। महाभारत के चारों पाण्डव और सुग्रीव की विभिन्न वानर टोलियां चारों दिशाओं में पहुंचती हैं और वहां की कुछ मोटी-मोटी भौगोलिक सही जानकारी भी उनके माध्यम से कवियों ने हमें दी है। किन्तु कालिदास के जैसी एकरसता और सरसता वहां कहां ? कालिदास कहीं तो रघु की दिग्विजय के व्याज से मात्र ७०-८० श्लोकों में औरअन्यत्रलंका से श्रीरामकी विमानयात्रा के प्रसंग से भी लगभग उतने ही श्लोकों में भारत की चतुर्दिक, सीमाओं के साथ ही साथ उसके मध्यवर्ती क्षेत्र का भी सांगोपांग दर्शन करा देता है। और अपने प्रबुद्ध पाठकों से आग्रह करता है कि वे भी कवि के साथ भारत से ऐक्य-भाव स्थापित करने की दिशा में अग्रसर हों। कवि की दृष्टि में तीर्थयात्रा हमारे जीवन का एक अभिन्न और अपरिहार्य अंग है और होनी चाहिए। मेरे इस कथन का आपको विश्वास न हो तो अपने कथन के समर्थन में यहां भगवान् श्रीराम के समक्ष कवि ने परशुराम के मुख से जो शब्द कहलाए हैं उन्हें उद्धृत

करना चाहूंगा। प्रसङ्ग तो एक ही है, परशुराम जी के कहने से उनके दिए हुए वैष्णव धनुष पर जब श्रीराम ने शरसंधान कर दिखाया तो उन्होंने भार्गव राम से पूछा कि अब बताइए इस से आप की गति भंग कर दूं अथवा स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति कराने वाले आपके अब तक के पुण्यों का क्षय कर दिया जाए और दोनों ही स्थानों पर परशुराम जी ने अपनी गति भंग न करने का निवेदन किया है। वाल्मीकि के परशुराम जी कहते हैं कि अभी मुझे अपने निवास महेन्द्र पर्वत पर पहुंचना है, इसलिए मेरी गति भंग मत कीजिए—

तामिमां मद्गतिं वीर हन्तुं नार्हसि राघव।
मनोजवं गमिष्यामि महेन्द्रं पवतोत्तमम्॥

वा० रामा०, बालकाण्ड ७६-२५

किंतु भारत-भक्त कालिदास को तो यहां के तीर्थ प्रिय हैं। इसलिए वह परशुराम जी से कहलाता है कि इन पैरों से तो मैं अपनी इस प्यारी भारत-भूमि के एक कोने से दूसरे कोने तक फैले तीर्थों की यात्रा किया करता हूं और यदि आप मेरी पद-गति को ही भंग कर देंगे तो मैं तीर्थ-यात्रा कैसे कर पाऊँगा। आप मेरे समग्र पुण्यों को भले ही क्षीण कर दें, किन्तु मेरी तीर्थ-यात्रा करने की शक्ति बनाए रखिए—

तद् गतिं मतिमतांवरेप्सितां पुण्यतीर्थगमनाय रक्ष मे।

रघुवंश—११-८७

अब तो विज्ञ पाठकों को विश्वास हो जाना चाहिए कि कवि ने अपने विविध काव्य और नाटकों में भारत के विविध मनोहारी चित्र अपनी भारत भूमि के प्रति भक्ति को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए ही अंकित किए हैं और कवि पाठकों से भी आग्रह करता है कि वे भी तीर्थ-यात्रा करें और इस प्रकार सही अर्थों में भारत भूमि के भक्त बनें।

वैदिक संस्कृति-संरक्षण

कालिदास का युग (गुप्तकाल) एक ऐसा काल था जबकि एक ओर गुप्त सम्राट् नानाविध यज्ञ-यागों के प्रवर्तन और ब्राह्मणों को अपार स्वर्ण मुद्राओं तथा ग्राम आदि दान में देकर वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धार के भगीरथ प्रयत्न में जुटे हुए थे। निस्सन्देह उनके प्रयत्न फलीभूत भी हो रहे थे, किन्तु मात्र राजशक्ति से कुछ काम बनता नहीं। समाज-निर्माण तो साहित्य से होता है। और साहित्य के द्वारा संस्कृति के संरक्षण का यह बीड़ा उठाया भारत-भक्त कविकुलगुरु कालिदास ने। यज्ञ-याग, वेद और वैदिक धर्म के संरक्षण के

दिव्य सन्देश से कालिदास-साहित्य आद्यन्त मुखरित है। रघुवंश के प्रथम सर्ग में दिखाए गए वसिष्ठ के आश्रम को लीजिए या वाल्मीकि के अथवा अभिज्ञानशाकुन्तल के कण्वाश्रम को लीजिए या मारीचाश्रम को इन सब में प्रत्यक्षत: वेदमन्त्रोद्घोषित और यज्ञधूम सुवासित पावन चित्र दिखाए गए हैं। साथ ही सर्वत्र शिष्यगण वेदाध्ययन में प्रवृत्त हैं।

वर्णाश्रम व्यवस्था वैदिक संस्कृति की एकमात्र विशेषता है और कवि

वार्धक्ये मुनिवृत्तीनाम्

के सन्देश को बार-बार उद्घोषित कर यह स्पष्ट करता है कि बौद्धों ने जिस वर्णाश्रम व्यवस्था को छिन्न भिन्न कर डाला है, उसे पुनः प्रतिष्ठापित करना होगा। कवि चाहता है कि वेद की वाणी फिर से घर-घर में गूंजे—

सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्

यही सन्देश देना चाहता है कवि अपने सम्पूर्ण काव्य और नाटकों के द्वारा। जी हां, तभी तो वह कहता है कि नाटक के द्वारा भी वेद की प्रतिष्ठा होती है।यह भी यज्ञ है—

देवानामिदमामनन्ति मुनयः कान्तं क्रतुं चाक्षुषम्।

यज्ञ-यागादि ऋषि मुनियों का तो कर्तव्य है ही, कवि चाहता है कि उसके युग के समुद्रगुप्तादि सम्राटों की भांति सभी शासक आहिताग्नि हों। प्रत्येक राजकुल में अग्नित्रय की स्थापना की जाए, इसीलिए वह रघु के मुख से कौत्स को कहलाता है कि जब तक मैं आपके लिए यथेष्ट स्वर्ण की व्यवस्था करके लौटूं तब तक आप मेरी यज्ञशाला में स्थापित अग्नित्रय के साथ चौथी अग्नि के रूप में सुशोभित होइए—

स त्वं प्रशस्ते महिते मदीये वसंश्चतुर्थोऽग्निरिवाग्न्यगारे।

रघुवंश—५-२५

एक रघु ही क्यों? कालिदास का प्रत्येक राजा आहिताग्नि है। दुष्यन्त शकुन्तला के साथ आए शार्ङ्गरव और शारद्वत को अपनी यज्ञशाला में ही ठहराता है।

इस प्रकार सिद्ध है कि वैदिक धर्म, संस्कृति और परम्पराओं का पुनरुद्धार और उनके माध्यम से भारत-भूमि के प्रति भक्तिभाव का प्रदर्शन और राष्ट्र की एकता की भावना जगाना ही कालिदास की कृतियों का प्रमुख लक्ष्य है। शृंगारादि रसों के द्वारा अपने इस लक्ष्य को जन-जन तक पहुंचाने का उसने अत्यन्त स्तुत्य प्रयास किया है।

हमारे यहां—

कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे

एक यही काव्य का परम प्रयोजन या चरम ध्येय बताया गया है, और कालिदास के काव्यों का वह कान्तासम्मित उपदेश है—भारतभक्ति, वैदिक परम्पराओं के प्रति अनन्य अनुरक्ति अथ च सम्पूर्ण भारतवासियों के प्रति एकात्मभाव।

कालिदास-काल-स्थान-निर्धारण

क्या कालिदास ने हिमालय देखा था ?

कविकुलगुरु महाकवि कालिदास वास्तविक अर्थ में भारत-कवि थे। कुछ मनीषी उन्हें राष्ट्रकवि की गौरव-मण्डित उपाधि से विभूषित कर स्वयं सम्मानित होते हैं। किन्तु मेरी स्वल्प बुद्धि में 'राष्ट्रकवि' में वह बात कहां जो 'भारतकवि' में है। कालिदास को भारत से प्यार है, भारत की मिट्टी से—उसके कण-कण से अनुराग है और है उसे भारत के वन, पर्वतों, नदी, पोखरों व गिरि गह्वरों और खेत खलिहानों के प्रति असीम अनुपम श्रद्धा और भक्ति। और भारत के नदी पर्वतों में सर्वोच्च-सर्वश्रेष्ठ और पावनतम हैं—नगाधिराज हिमालय व पतितपावनी गंगा ये दोनों मिलकर भारत को भारत बनाते हैं।

इधर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त—जिन्हें हम लोग प्यार और आदर से 'दद्दा' कहा करते थे—'द्वापर' में कहते हैं—

कंकर में भी शंकर हैं
गिरि है गोवर्धन तो

और दूसरे किसी के लिये हो या न हो कालिदास के लिये तो भारत का एक एक कङ्कर साक्षात् शंकर ही है। फिर उस नगाधिराज हिमालय का तो कहना ही क्या, जिसका प्रत्येक शिखर कैलास है, और हिमशुभ्र कैलास के रूप में साक्षात् भगवान् शंकर का राशि-राशिभूत अट्टहास ही इस धराधाम को समुज्ज्वल एवं पावन बना रहा है—

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंधेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्याःतिथिः स्याः।
शृंगोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खम्
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः॥

यहां **'शृङ्गोच्छ्रायैः'** इस बहुवचन से स्पष्ट है कि किसी एक पर्वत का अकेला एक शिखर नहीं अपितु हिमालय का प्रत्येक हिमधवल अत्युच्च शिखर कवि के लिये भगवान् शंकर का अट्टहासमय कैलास शिखर है। इसी सन्दर्भ में—

'हिमशिखरों की आकृति शिवलिंग की तरह हो जाती है। इसीलिये हिमालय में कैलास और शिवलिंगों का प्राचुर्य है।'[1]

श्रीविष्णु प्रभाकर द्वारा व्यक्त यह तथ्य सार्थक सिद्ध होता है।

हां तो यह सर्वविदित है कि कवि को हिमालय, उसके उच्चशिखर, उसकी वनराजियां, पादपपंक्तियां, जीवजन्तु उसके जल-स्रोत और गिरिगह्वर ही क्यों वहां के देवगण या गणदेव रूपी निवासी सभी कुछ प्रिय हैं और इतने प्रिय हैं कि वह उनके नानाविध और नानाकोणों से सजीव चलचित्र अंकित करने में आत्मविभोर हो जाता है। रघुवंश, कुमारसंभव और मेघदूत इन तीनों काव्यों तथा अभिज्ञानशाकुन्तल और विक्रमोवर्शीय इन दोनों परमोत्कृष्ट नाटकों में अवसर मिलते ही हिमालय के नानाविध भौगोलिक तथ्यों के परिचायक चित्र अपने पाठकों के ज्ञानचक्षुओं के समक्ष उपस्थित करने को वह आतुर हो उठता है।

भौगोलिक तथ्य

क्योंकि प्रस्तुत ग्रन्थ 'कालिदास-चर्चित बृहत्तर भारत' यहाँ के भौगोलिक तथ्यों को प्रमुखतया उद्घाटित करने के उद्देश्य से लिखा गया है, अतः हिमालय की चर्चा में भी पहले तत्सम्बद्ध भौगोलिक तत्त्वों की चर्चा समीचीन रहेगी। इस दृष्टि से विचार करते हुए प्रत्येक जिज्ञासु पाठक आश्चर्याभिभूत हो उठता है कि यातायात के साधनों या मानचित्रों अथवा सम्बद्ध यात्रा-वर्णनों अथवा स्वतन्त्र भौगोलिक विवरणों आदि के अभाव में भी कालिदास ने हिमालय की प्रकृति के जो चित्र अंकित किये हैं, वे सर्वांश में न भी सही अधिकांश में वर्तमान वैज्ञानिक युग में प्रदर्शित भौगोलिक तत्त्वों के सर्वथा अनुकूल हैं। जैसे कि—

१. हमारे यहां के महाभारत आदि ग्रन्थों में हिमालय की जो बहिर्गिरि उपगिरि और अन्तर्गिरि नामक तीन शृंखलाएं बतायी हैं, उन्हें अपने प्रत्यक्ष ज्ञान और सम्बद्ध भौगोलिक विवेचन के आधार पर भी निम्न तीन भागों

---

१. जमना गंगा के नेहर में पृ० १३७

में बाँट देना समीचीन प्रतीत होता है—

(क) वृक्षश्रेणी—दो ढाई हजार फुट से लेकर बारह हजार तक।

(ख) दूर्वाश्रेणी—१२-१४,१५ हजार तक।

(ग) हिमश्रेणी—उससे ऊपर २९ हजार फुट तक।

इनमें से प्रत्येक की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार बताई जा सकती हैं—

१. वृक्षों की श्रेणी की इस धार में दो ढाई हजार फुट से नीचे तक प्रायः मैदानी और कुछ पहाड़ी आम, पीपल और अच्छू जैसी कटीली झाड़ियां आदि मिलती हैं। ढाई तीन हजार फुट से ऊपर 'सरल' जाति के चीड़ जैसे वृक्ष मिलने लगते हैं। ६-७ हजार फुट की ऊंचाई से देवदार के गगन चुम्बी वृक्षों के दर्शन होने लगते हैं और उससे भी ऊपर चले जायं तो ११-१२ हजार फुट की ऊंचाई पर मिलता है भोजपत्र। इस प्रकार कह सकते हैं, कि नीचे से हिमालय पर आरोहण करने वाले यात्री को क्रमशः चीड़ (सरल), देवदार और भोजपत्र के वृक्षों के दर्शन होते हैं, इसके विपरीत कोई तिब्बत की ओर से हिमालय में अवरोहण करना चाहेगा तो उसको जो वृक्ष सर्व-प्रथम मिलेंगे, वे होंगे भोजपत्र, और उसके बाद उसे देवदार तथा चीड़ के जंगल मिलेंगे। बीच-बीच में वेणु-कुंजों की रमणीयता उसे अपनी ओर आकृष्ट करती रहेगी।

२. **दूर्वा श्रेणी**—वृक्ष श्रेणी के बाद हिमालय में आपको ऐसी पहाड़ी ढलानें मिलने लगती हैं जहाँ कोई वृक्ष नहीं उग सकता, वहाँ मिलती हैं मख-मली घास व रंग बिरंगे फूलों के गलीचों से शोभायमान पहाड़ी ढलाने।

३. और इस दूर्वा श्रेणी या फूलों की घाटियों को भी जब पार कर जाएँ तो हम हिमालय की उस शृंखला में जा पहुंचते हैं, जहां पहाड़ बिलकुल नंगे है, वहां वृक्ष तो क्या दूब भी कठिनाई से ही दिखाई देती है। ये पर्वत-शृंखलाएं प्रायः सर्दी भर ६ मास तक या उससे भी अधिक समय तक हिमाच्छादित रहती हैं। बाद में जब वहां से मई जून में धीरे-धीरे बर्फ पिघलने लगती है तो उनके नीचे से हिम-धवल चट्टानों के दर्शन होने लगते हैं।

काश्मीर में अमरनाथ की यात्रा के समय हिमालय के इन तीनों रूपों के साहचर्य में आने के दुर्लभ अवसरों की मधुर स्मृति लेखक के स्मृतिपटल पर आज भी यथापूर्व अंकित है। अमरनाथ के मार्ग में पिस्सूघाटी में पहुंचते ही भोजपत्र के विशालवृक्षों की उपस्थिति मानो यात्रियों को पहले से ही बता देती है कि बस अब इसके आगे कहीं कोई वृक्ष दिखाई नहीं देगा। किन्तु ऊपर

शेषनाग झील के तटों पर पहुंचते ही जिस नन्दनवन कल्प फूलों की घाटी के दर्शन होते हैं, उसे पाकर यात्री आनन्दमग्न हो उठता है। लगता है महाकवि बाण का अच्छोदसरोवरकहीं यह शेषनाग हो तो नहीं। किन्तु ऊपर अमरनाथ की गुफा तक पहुंचते-पहुंते रह जाते हैं, वे नंगे पर्वत, जिनके पत्थर तो क्या मिट्टी भी निरन्तर हिमाच्छादित रहने के कारण हिमशुभ्र हो जाती है। इधर अपनी गंगोत्तरी और जमुनोत्तरो की यात्रा के प्रसंग में विष्णु प्रभाकर जी ने देवदार और भोजपत्र के अनेक मनमोहक चित्र अंकित किए हैं। जैसे कि—

देवदार की एक झलक

'एक ओर है वनप्रान्तर देवदार के गगनचुम्बी कंज…कैसा है यह देवदार का शान्त, भव्य ऊपर को उठता नुकीली अंगुलियों वाला गर्वोन्नत वृक्ष मानों देवमन्दिर का कलश हो'।[1]

यहीं भोजपत्रों के बारे में लिखा है—'गंगोत्तरी से ऊपर गोमुख के पास पहुंचते-पहुंचते मार्ग में बांगला वास (बांगला-वृक्षविशेष) की सुषमा का एक चित्र यह है—'इस प्राकृतिक प्रदेश में जड़ी बूटियों की बहुलता है। भोजवृक्षों का तो जैसे यहां साम्राज्य है। वैसे चोड़ भी हैं, वन पीपल भी दिखाई देता है, पर भोजवृक्षों का वैभव निराला है। श्वेत पीत आभा वाले इस वृक्ष के उपयोग भी अनेक हैं।'…बाईं ओर थी भागीरथी की वेगवती प्रचण्डधारा जिसकी प्रचण्डध्वनि वायुमण्डल में गुंजित हो रही थी।…सोचने लगे भोज-वृक्ष की यह सुकुमार त्वचा भीषण प्रकृति की रुद्रता कैसे सह लेती है।… भोजवृक्ष के ऊपर वन के ऊपर २२२१८ फुट ऊंचा भृगुपथ है।[2]

यहां लेखक ने भोजपत्र की विशेषता की तो चर्चा की, किन्तु इसमें एक अन्य महत्त्वपूर्ण वैशिष्टय जिसकी चर्चा मैंने आगे भोजवृक्ष वर्णन के प्रसंग में पृष्ठ १३६ पर की है, का उल्लेख नहीं किया।

यह तो हुई हिमालय की वृक्ष श्रेणी की दस-से-तेरह हजार फुट की ऊंचाइ में मिलने वाले भोजपत्रों की बात, इसके कुछ ही नीचे सात से दस हजार फुट तक की ऊंचाई पर मिलने वाले देवदार के वृक्षों के नीचे रघु की सेनाएं आईं तो कवि ने कहा—

गजवर्ष्म किरातेभ्यः शशंसुर्देवदारवः।

---

१. गंगा जमना के नेहर में पृ० ४६

२. वही पृ० १३५-३७

और देवदारुओं के साथ और उनके निचली स्थिति तीन हजार से सात-आठ हजार तक मिलने वाले चीड़ तक पहुंचाते हुए कवि ने कहा—

सरलासक्तमातंगग्रैवेयस्फुरितत्विषः।

रघुवंश—४-७५

इस प्रसंग को पढ़ते हुए लगता है कि जैसे कालिदास स्वयं रघु की सेनाओं के साथ मध्य एशिया की औक्सस घाटी से तिब्बत से हिमालय पर चढ़कर, गंगोत्तरी के निकटस्थ मार्ग से नीचे उतरे थे। इसीलिए वे वहां की स्थानीय परिस्थितियों का ऐसा प्रत्यक्षवत् चित्र अंकित कर पाए। इतना ही क्यों, वहीं जहां चीड़ आदि के वृक्ष मिलते हैं, अखरोट के पेड़ भी बहुतायत से पाए जाते हैं। कवि ने—

तद्गजालानतां प्राप्तैरक्षोटैः सार्धमानताः।

रघुवंश—४-७६

के द्वारा इसी तथ्य को व्यक्त किया है।

भागीरथी का नामोल्लेख भी मिलता है—

भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः।

कुमारसम्भव—१-१५

इसी प्रकार—

कपोलकण्डुः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम्।

कुमारसम्भव—१-६

तथा—

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुंजरबिन्दुशोणाः।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनङ्गलेखक्रिययोपयोगम्॥

कुमारसम्भव—१-७

इसी प्रकार मेघदूत के भी—

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा

पूर्वमेघ—५३

आदि अनेक प्रसंगों में भूर्ज, देवदार व सरल वृक्षों की कवि ने सही ढंग से चर्चा की है।

यह भृगुपथ

गंगोत्तरी से १८ मील और ऊपर चढ़ने पर यात्री भागीरथी के मूल उद्गम स्थल गौमुख पर पहुंच जाता है। यहां से जिन प्रमुख तीन हिमशिखरों

की झांकी देखकर वह आत्मविभोर हो उठता है उनमें से एक का नाम है भृगुपथ। इस प्रकार गंगोत्तरी से तिब्बत आने-जाने वाले यात्री को भृगुपथ के निकट नैलंग घाटी के रन्ध्र या दर्रे से होकर धराली गांव से गुजरना पड़ता है। इस भृगुपथ मार्ग को कवि ने स्पष्ट शब्दों में— **भुगुपतियशोवर्त्म**। बताया है। जैसे कि—

हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत् क्रौञ्चरन्ध्रम्।

पूर्वमेघ-५७

ये हिमालय की गुफाएं—

निर्ह्लादो ते मुरुज इव चेत् कंदरेषु ध्वनिः स्यात्
संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः॥

तथा—

गुहाशयानां सिंहानां परिवृत्यावलोकितम्।

और—

वनेचराणां वनितासखानां दरीगृहोत्संगनिषक्तभासः।

रघुवंश

इत्यादि पद्यों में हिमालय की गुफाओं की विविधता और उनके नानाविध उपयोगों की चर्चा भी कवि ने की है। इसी प्रकार कवि यह भी कहता है कि हिमालय के लोग जब कभी वर्षा से घबरा जाते हैं, तो वे ऊपर उन स्थलों पर चले जाया करते हैं, जहां अभी धूप चमक रही होती है—

उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृंगाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः।

(कुमारसम्भव—१-५)

यहां वास्तव में कवि ने बड़ा ही स्वाभाविक चित्र अंकित किया है।

हिमालय के जीव—

हिमालय के जीव-जन्तुओं में कस्तूरी मृग तथा चंवरी गाय अपना विशेष स्थान रखते हैं। इनकी भी चर्चा कवि ने यथास्थान की है।

(देखिए आगे पृष्ठ—१४५)

मेघदूत के—

तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णाम्।

इत्यादि पूर्वमेघ के ५०वें श्लोक से अंतिम श्लोक तक हिमालय, कैलास और उसकी गोद में बसी हुई अलकापुरी तथा गंगा के एक से एक मनोहर तथा

स्वाभाविक चित्र अंकित हुए हैं।

हिमालय कवि को इतना प्रिय है कि कुमारसंभव का तो आरम्भ ही—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।

के द्वारा करता है और अगले १७वें श्लोक में फिर से कहता है कि प्रजापति ने स्वयं उसे शैलाधिपत्य प्रदान किया है। इसी प्रकार कुमारसम्भव के अन्य अनेक सर्गों में भी यथास्थान हिमालय के चित्र अंकित करता हुआ कवि अघाता नहीं।

इस सबसे तो लगता है कि कवि ने हिमालय को केवल देखा ही नहीं अपितु हिमालय तथा विशेषतः उत्तराखण्ड और उसके भी भागीरथी के उद्गम स्रोत गौमुख तथा गंगोत्तरी व युमनोत्तरी में वह खूब घूमा-फिरा भी है, इसी आधार पर संस्कृत के कुछ विद्वानों ने भी लिख दिया है कि मूलतः कालिदास उत्तराखण्ड-गढ़वाल—के निवासी थे, वे बाद में उज्जैन जा बसे?

किन्तु—

सन् १९८२ में उज्जैन में सम्पन्न हुए कालिदास-समारोह की रजत-जयन्ती महोत्सव के अवसर पर मैंने एक शोधपत्र पढ़ा था, जिसका शीर्षक था—

क्या कालिदास ने हिमालय देखा था?

शोध-पत्र वाचन तो निमित्त था वस्तुतः इस विषय पर यह मेरा भाषण था। वहां मैंने बताया कि—

'प्रभु की कृपा से मुझे काश्मीर में १७००० फुट ऊँचे अमरनाथ तीर्थ से लेकर उत्तराखण्ड को बद्री-केदार-शृंखला के अत्युन्नत गिरिशिखर जिसका नाम ही अपनी ऊँचाई के कारण तुंगनाथ है, तक की यात्रा का सौभाग्य प्राप्त है। इस प्रत्यक्ष स्वानुभव के कारण भी मेरी यह अकाट्य धारणा बन पाई है कि परिभ्रमण तो दूर कालिदास ने तो हिमालय देखा तक नहीं था।'

मेरे भाषण के बाद अनेक मर्मज्ञ विद्वानों ने प्रश्नों की झड़ियां लगा दीं। उन सबका समाधान भी मैंने किया था। उन सब प्रश्नों का सार यह था कि कालिदास ने हिमालय के जीव-जन्तुओं, देवदार आदि वृक्षों और गंगा आदि नदियों का जो सही चित्र अंकित किया है, उसका उत्तर आपके पास क्या है?

जैसा कि मैंने स्वयं पहले कहा है कि ऊपर के वर्णन के आधार से तो

आपाततः ऐसा ही प्रतीत होता है कि कालिदास हिमालय से सुपरिचित हैं। किन्तु कुछ गंभीरता और सूक्ष्मता से विचार करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि कालिदास ने हिमालय देखा तक नहीं था और उनकी सुनी-सुनायी या पढ़ी-पढ़ायी जानकारी भी अस्पष्ट या वेग Vauge है। यह मैंने वहां जिस आधार पर तब प्रतिपादित किया, मैं उसे ही यहां संक्षेप में उद्धृत कर रहा हूं—

१. उत्तराखण्ड (बदरी, केदार, गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी) की यात्रा कर आने वाला प्रत्येक व्यक्ति यह भलीभांति जानता है कि उत्तराखण्ड में गंगा नाम वाली कोई नदी है ही नहीं। वहां बदरीनाथ के नीचे अपने उद्दाम वेग से हाथियों को भी बहा ले जाने वाली जो नदी बहती है, वह है अलकनन्दा—

स्रोतस्युद्दामदिग्गजे।

केदारनाथ से आती है मन्दाकिनी। रुद्रप्रयाग में इन दोनों का संगम होता है। उधर गंगोत्तरी से आती है भागीरथी। देवप्रयाग में अलकनन्दा और भागीरथी का संगम होता है। देवप्रयाग से नीचे आने पर यह नदी गंगा के नाम से भी अभिहित होती है और भागीरथी भी कही जाती है। ऋषिकेश से कुछ ऊपर और देवप्रयाग से नीचे इसका गंगा नाम प्रचलित होने लगता है।

किंतु कालिदास को इन नदियों में से किसी का 'नाम भी ज्ञात नहीं।' जब वह इन तीन मुख्य नदियों को ही नहीं जानता, तो गोमुख और गंगोत्तरी के निकट भागीरथी में आ मिलने वाली जाह्नवी का उसे ज्ञान कैसे हो सकता है। 'कुछ दूर आगे बढ़ने पर भीषण नाद सुनाई देने लगता है। देखता हूं 'बाईं ओर के भूधराकार पर्वत के वक्ष को चीरती हुई उन्मोदनी सी एक नदी भागीरथी में आकर मिल गई है। नीलगंगा, जाढ़ गंगा तथा भोटियागंगा भी इसके नाम हैं।······वस्तुतः जैसे राजर्षि भगीरथ ने भागीरथी का पता लगाया, उसी प्रकार महर्षि जन्हु ने नील गंगा का पता लगाया होगा। इसी का नाम जाह्नवी हुआ और गंगा-के अनेक नामों में से यह एक प्रसिद्ध हो गया। यह स्थान एक साथ ही भव्य और भयावह है। इस अद्भुत संगम में जाह्नवी' के नीलवर्ण और भागीरथी के दूधिया जल को स्पष्ट ही देखा जा सकता है।'

विष्णु प्रयाग के पास अलकनन्दा में आ मिलने वाली विष्णुगंगा भी इस क्षेत्र की अन्यतम नदी है। उसे तो भला कालिदास जानेंगे ही कैसे।

जो महानुभाव कालिदास को उत्तराखण्ड-निवासी बता कर स्वयं को

१. गंगा जमुना के नेहर में—विष्णु प्रभाकर—१९६४संस्करण

२. हिमालय यात्रा—काका कालेकर

गौरवान्वित करने क लिए मिथ्यावाद प्रचारित किया करते हैं, क्या वे यह बता सकेंगे कि कवि ने ऊत्तराखण्ड निवासी हीते हुए भी वहां की इन चारों प्रमुख नदियों का नामोल्लेख तक भी क्यों नहीं किया। जहां कहीं वह भागीरथी या मंदाकिनी का नाम लेता भी है, वह गंगा के पर्याय के रूप में ही ऐसा करता है, उसे इनकी पृथक् सत्त का आभास तक नहीं। एक सांस में कवि--

भागीरथीसीकरनिर्झराणां

कहता है, तो दूसरी ही सांस में वह—

गंगासीकरिणो मार्गे

कह जाता है।

इसका स्पष्ट आशय है कि वह यह जानता है कि हिमालय में गंगा नदी बहती है, जिसे भागीरथी आदि अन्य नामों से भो संस्कृत में अभिहित किया गया है। और कवि यह कहकर छुट्टी पा गया कि गंगा हिमालय से निकलकर सर्वप्रथम कनखल के पास मैदानों में प्रवेश करती है—

जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तीम्।

कुमारसंभव में कवि ने गंगा का स्तुतिगान करते हुए उसको संस्कृत साहित्य में प्रचलित गंगा, जाह्नवी, भागीरथी आदि सभी नामों से स्मरण किया है (देखिए पृष्ठ—१२७)।

यह तो हुआ उत्तराखण्ड की भागीरथी, जाह्नवी,अलकनन्दा आदि नदियों के संबन्ध में कवि का अज्ञान।

हिमालय के वृक्ष—

नदियों के बाद हिमालय और विशेषतः उत्तराखण्ड-यमुनोत्तरी, गंगो-त्तरी आदि प्रदेशों का एक अन्य प्रमुख वैशिष्टच है, वहां के भोजपत्र और देवदार आदि वृक्ष। निस्सन्देह कवि को यह ज्ञात है कि सरल जाति के चीड़ आदि वृक्षों से कोई द्रव निकलता है (देखिए पृष्ठ—१२८) फिर भी यह दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है कि कवि ने हिमालय के इन वृक्षों को कभी देखा भी नहीं। क्योंकि—

१. प्रथम तो कवि यह नहीं जानता कि देवदार हिमालय में सात-आठ हजार फुट की ऊँचाई पर ही उगा करते हैं, उसके नीचे और तलहटी में तो कदापि नहीं। हिमालय संबंधी इस भौगोलिक तथ्य का ज्ञान न होने के कारण ही वह अयोध्या के निकट कहीं हिमालय की उपत्यका में स्थित वसिष्ठाश्रम के पास देवदार का वर्णन करता है—

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुम्।

२. कवि ने यदि देवदार जैसे अभ्रंलिह भव्य वृक्ष की झलक पा ली होती तो वह उसकी दिव्य छवि को अंकित किए बिना रह ही नहीं सकता था। कोई भी कवि देवदार को देखते ही मंत्र-मुग्ध रह जाएगा और यथाशक्ति उसकी एक झलक अपने पाठकों को अवश्य दिखाना चाहेगा। उदाहरण के लिए—

'कैसा है देवदार का यह शान्त, भव्य, ऊपर को उठता नुकीली अंगुलियों वाला गर्वोन्नत वृक्ष मानो देव-मन्दिर का कलश हो।"[१]

श्री विष्णु प्रभाकर ने इस एक ही पंक्ति में अपने पाठकों के सामने देवदार का सही रूप ला खड़ा किया और कैसा काव्यात्मक भी है यह।

३. यही नहीं कि कवि ने देवदार का कहीं कोई चित्र अंकित नहीं किया, देवदार के विषय में भूले-भटके जो एकाध बात कह दी, वह भी ऐसी है जिससे देवदार के विषय में कवि का अज्ञान ही मुखरित हुआ है। कवि ने साधारणत: मैदानों के वट, उदुम्बर आदि ऐसे महावृक्ष ही देखे हैं, जिनके पत्तों के तोड़ने पर दूध टपकने लगता है। इसी आधार पर वह अपने यक्ष के मुख से कहलाता है—

हे प्रिये, देवदारु, वृक्षों के पत्तों को तोड़कर उससे टपकते हुए दूध से सुगंधित हिमालय की जो शीतल पवन दक्षिण की ओर आती है, उसका आलिंगन पाकर मैं इसलिए प्रसन्न होता हूँ कि शायद ये तुम्हारे शरीर को छूकर आ रही हों —

भित्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ।

(मेघदूत, उत्तरमेघ—४४)

(देखिए पृष्ठ—१३५)

यहाँ कवि कहता है कि जैसे वायु या झंझावात के झौंकों से वट आदि के पत्तों के टूट जाने पर दूध टपकने लगता है, वैसे ही हिमालय की इस वायु के झौंको ने देवदार के किसलय (लंबे चौड़े पत्तों) को तोड़ डाला और उनसे दूध टपकने लगा, उससे वहाँ की वायु सुगंधित हो गई।

यहां किसी पाठक को यह भ्रम न हो जाए कि कवि ने जैसे—

कपोलकण्डुः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम् ।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभीकरोति ।।

(कुमारसंभव—१/६)

में वर्णित सरलद्रुम के तने से स्रुत क्षीर की बात कही है, उसी तथ्य को यहां भो उजागर किया है, क्योंकि यहाँ तो कवि ने साफ शब्दों में देवदारु के किसलय पुट (चौड़े पत्ते) के टूटने से टपके हुए दूध की बात कही है न कि हाथी आदि किसी जीव के माथे की रगड़ के कारण उसके तने से निकले हुए दूध की। कालिदास को यह ज्ञात ही नहीं है कि सरल जाति के इन वृक्षों के (किसलय पुट) नहीं होते, उनके तो सूई के जैसे पतले और नोकीले पत्ते होते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि नदियों के समान ही हिमालय की वनस्पतियों का ज्ञान भी कवि का सुना सुनाया हुआ ही है। इन वृक्षों को देखने का सौभाग्य कवि को कभी मिला नहीं।

ये पशु पक्षी

१. हिमालय की नदियों और वनस्पतियों के कालिदास द्वारा-अंकित चित्रण से उनका स्वानुभव प्रकट नहीं होता। और जब हम हिमालय के उन पशु-पक्षियों को लेते हैं, जिनका उल्लेख कालिदास ने किया है, तब भी हम उसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। यह ठीक है कि कवि ने हिमालय के कस्तूरी मृग की चर्चा की है, किन्तु उससे यह नहीं लगता कि उन्होंने इस जीव को कभी देखा होगा। यह तथ्य सुविदित है कि कस्तूरी मृग की नाभि से कस्तूरी उत्पन्न होती है और वह जहाँ बैठता है, वे शिलाएं भी सुगन्धित हो जाती हैं, जैसा कि कवि ने कहा है—

दृशदो वासितोत्संगाः निषण्णमृगनाभिभिः।

(रघुवंश—४-७४)

किन्तु यह तो सामान्य ज्ञान की मोटी सी बात है। इससे न तो कस्तूरी मृग के आकार-प्रकार, रूप-रंग का ही ज्ञान होता है और न किसी अन्य वैशिष्ठ्य का ही। जैसा कि आगे पृष्ठ १४५ पर स्पष्ट किया गया है, कस्तूरी मृग के वयस्क होने पर उसकी नाभि में कस्तूरी बनने लगती है, उन दिनों उसका मल-मूत्र भी सुगन्धित हो जाता है। इसलिए कस्तूरीमृग के बैठने से नहीं अपितु उसके मल-मूत्र के कारण स्थानों का सुगन्धित हो जाना कोई बड़ी बात नहीं। दूसरी बात यह कि कस्तूरी नर पशु की नाभि से ही उत्पन्न होती है, मादा पशु की नाभि से नहीं। साथ ही यह भी कि यह हरिण है ही नहीं। हमारे यहां परम्परा में ही इसे कस्तूरी मृग कहा जाने लगा है।

शेष रही बात चमरी गाय की, सो यह तो सब जानते हैं कि चंवर में हिमालय के किसी पशु के पूंछ के बाल ही होते हैं। अतः कवि के द्वारा

हिमालय में चमरी की चर्चा भी उसके तत्संबन्धी ज्ञान की परिचायक नहीं कही जा सकती।

हिमालय में हाथी

कुमारसंभव में कवि कहता है कि हिमालय में जहां चारों ओर बर्फ जमी रहती है, सिंहों के हाथियों को मारकर कहीं दूर निकल जाने पर उनके पंजों में लगा खून तो बर्फ के पिघलने के साथ बह गया, फिर भी हाथियों के गण्डस्थलों को चीर डालने से उनके पंजों में जो गजमुक्ता फँसे रह गए, उनके जहां तहां बिखरते जाने से सिंहों के शिकारी किरातों को उनके जाने का मार्ग मिल ही जाता है। कवि कहता है कि—

पदं तुषारस्रुतिधौतरक्तं यस्मिन्नदृष्ट्वापि हतद्विपानाम्।
विन्दन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः॥

(कुमारसंभव—१-६)

आपाततः कवि का उक्त चित्रण बड़ा मनोहर लगता है, किन्तु हिमालय-ज्ञान की दृष्टि से देखने पर यहाँ भी पाठक को निराशा ही हाथ लगती है। क्योंकि—

(क) यहां कवि ने कहा है कि हिमालय की हिमानियों के पास विचरते हाथियों के गण्डस्थलों को सिंहों ने विदीर्ण कर दिया। कैसी अटपटी और असंभव बात कही है कवि ने यहां! हाथियों को कवि ने विन्ध्य और मलय की उपत्यकाओं में जहांतहां दो-तीन हजार फुट की ऊँचाई तक भी विचरते देखा है। इसी आधार पर उसने कह दिया कि हिमानियों के पास भी हाथी विचरते हैं और शेर उन्हें मार डालते हैं। इतना ही क्यों कवि जैसा कि ऊपर बताया गया हिमालय के देवदार सरल (चीड़ और ओक) जैसे वृक्षों के तनों से हाथियों को अपने मस्तक खुजलाते भी दिखाता है। स्मरण रहे हिमानी प्रदेशों की तो बात ही क्या सात-आठ हजार फुट की ऊँचाई पर भी जहां देवदार मिलते हैं, हाथी नहीं होते।

मैदानी प्रकृति में हिमालय का वर्णन

भारत में गंगा-यमुना के मैदान अथवा दक्षिण पठार की जैसी प्राकृतिक परिस्थितियां हैं और यहां जो जीव-जन्तु, पशु-पक्षी तथा वृक्ष-लताएं मिलती हैं, वे हिमालय के सात-आठ हजार फुट ऊंचे या उससे ऊपर के भागों में नहीं मिल सकते। किन्तु कवि का इस मोटे भौगोलिक तथ्य से भी परिचय नहीं है, इसीलिए वह कहीं तो हिमालय के अत्युच्च स्थान अलका में भी अशोक आदि

वृक्षों को दिखाता है—

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः । (उत्तरमेघ—१५)

तो कहीं लोध के वृक्षों की चर्चा करता है और कहीं कदम्ब खिले हुए दिखाता है। (यह कदम्ब भी प्रायः शीतोष्ण वायु में ही उगता है।) जैसे कवि कहता है—

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ।
चूडापाशे नवकुरुबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥
(मेघदूत-उत्तरमेघ-२)

उत्तरा खंड जाने वाला वाला प्रत्येक व्यक्ति बदरीनाथ, यमुनोत्तरी व गंगोत्तरी-गोमुख के पास के तप्त कुंडों के बारे में खूब जानता है। किन्तु कालिदास को इन अतिविशिष्ट तप्त कुण्डों का भला कैसे ज्ञान होता, जब कि भागीरथी और अलकनंदा आदि नदियों का हो उसे कुछ पता नहीं है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि—

कालिदास उत्तराखण्ड की (१) भागीरथी व अलकनन्दा आदि नदियों का नाम तक नहीं जानता, वह तो यही जानता है कि 'गंगा' हिमालय से बहती है।

कवि ने मोर आदि पक्षियों और रक्ताशोक तथा कदम्ब जैसे वृक्षों का भी हिमालय के अत्युच्च क्षेत्र में वर्णन किया है, ये जीव और वृक्ष मैदान में ही मिलते हैं, हिमालय में नहीं।

उत्तराखण्ड या गढ़वाल की चर्चा मैंने यहां यथेष्ठ रूप में कर दी है। कुछ विद्वानों ने उन्हें काश्मीर का भी सिद्ध करने का प्रयास किया है। काश्मीर के ख्यातनामा विद्वान् आदरणीय बन्धुवर डा० बलजिन्नाथजी पण्डित का जो लेख यहाँ दिया जा रहा है, उससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि काश्मीर से भी कालिदास कोई नाता न था।

कालिदास का देखाभाला क्षेत्र

माहिष्मती और ओंकारेश्वर के निकटवर्ती सहस्रधारा के आसपास छोटी-बड़ी चट्टानों के बीच में शतधा विभक्त नर्मदा की मनोहारिणी धाराओं का—

रेवां द्रक्षस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम् ।
भक्तिच्छछेदैरिव विरचितां भूमिमंगे गजस्य ॥

आदि पद्य में नर्मदा नदी के माहेश्वर क्षेत्र तथा उसके आसपास के क्षेत्र का यथार्थ दृष्ट चित्र तो कवि ने अंकित किया ही है, साथ ही यह भी बता दिया है कि यह दृश्य विन्ध्यपाद (विन्ध्याचल की ऊपरी घाटियों) में तुम्हें देखने को मिलेगा। क्योंकि दक्षिणी विन्ध्यपाद में स्थित रामगिरी (रामटेक) से तो यक्ष ने मेघ को भेजा ही है, अतः सिद्ध होता है कि सहस्रधारा का यह दृश्य कवि ने स्वयं देखा है। आम्रकूट याभेड़ाघाट का संगमरमरी ऊँचे किनारों के बीच प्रवाहित नर्मदा का दृश्य कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि वहां नर्मदा एक बंधी हुई धारा से बहती है न कि काली-काली चट्टानों के बीच छितराई हुई। 'आम्र-कूट' भी अमरकंटक नहीं अपितु पचमढ़ी है, क्योंकि वह रामगिरि से विदिशा के मार्ग पर बहुत पूर्व में हट कर है, जबकि कवि स्पष्ट कहता है कि यहां से कुछ पश्चिम में तुम्हें यह दृश्य देखने को मिलेगा। उधर उत्तर में कवि ने विदिशा की नीचगिरि की गुफाओं तथा उसके चरणों में प्रवाहित वेत्रवती का भी आंखों देखा वर्णन किया है। अतः माहिष्मती से विदिशा तक का उज्जयिनी के आस-पास का कवि का देखाभाला क्षेत्र है। पश्चिम में वह दशपुर तक गया था या नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि दशपुर का नाम लेते हुए भी उसने मात्र वहाँ की सुन्दरियों के लोला-पांगों का ही वर्णन किया है।

कवि ने मालविकाग्निमित्र और इन्दुमती स्वयंवर में तो विदर्भ का वर्णन किया ही है, अपने यक्ष को भी वह नागपुर के समीपस्थ रामगिरि से ही भेजता है और वहां से लेकर माहिष्मती होते हुए विदिशा तक की सही भौगो-लिक परिस्थिति और पर्यावरण का चित्र अंकित करता है, इससे लगता है कि यातायात के साधनों के सुलभ न होने पर भी वह माहिष्मती से आगे विदर्भ तक भी अवश्य गया था। इसी प्रकार प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम की श्याम-श्वेत शवलित जलराशि का चित्रण भी प्रत्यक्ष दृष्ट है। अतः कह सकते हैं कि कवि ने विदर्भ से लेकर प्रयाग तक की यात्रा अवश्य की होगी, किन्तु कवि के इस कथन से कि गोवर्धन में बड़ी सुन्दर गुफाएं हैं, लगता है कि कवि ने गोवर्धन नहीं देखा और गोवर्धन नहीं देखा तो वह मथुरा भी नहीं पहुचा यह स्वतः सिद्ध है। इसी आधार पर यह दृढ़ता पूर्वक कहा जा सकता है कि कि अधिक से अधिक दक्षिण में विदर्भ से लेकर उत्तर में प्रयाग और पश्चिम में दशपुर तक का क्षेत्र ही कवि का अपना देखाभाला है।

कालिदास का मेघ-मार्ग

कालिदास का यक्ष रामगिरि(रामटेक) से मेघ को अलका भेजते समय यह मार्ग बताता है—उसे सर्वप्रथम आम्रकूट, यह सार्थक संज्ञा है, क्योंकि

कवि स्वयं उसे पके हुए आमों से भरे जंगलों से ढका हुआ बताता है और पचमढ़ी तथा उसके आसपास महादेवपहाड़ी का क्षेत्र आज भी आम्रबहुल है, पहुंचने को कहता है। फिर कुछ पश्चिम की ओर सहस्रधारा का दृश्य देखते हुए विन्ध्य घाटी के पार भी मार्ग में आने वाली छोटी मोटी पहाड़ियों को लांघते हुए बड़ी तेजी से उत्तर की ओर बढ़ते हुए सीधे विदिशा पहुंच जाने का आदेश देता है—

व्रज द्रुतगतिर्भूय एवोत्तरेण।

यहां कवि का 'व्रज द्रुतगतिः' विशेषण विशेष ध्यान देने योग्य है। क्योंकि रामगिरि से मेघ को विदा करते समय कहा है—

मार्गं तावच्छृणु

खिन्नः खिन्नः शिखरिसु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र।

यहां कवि ने एक महत्त्वपूर्ण भौगोलिक तथ्य यह प्रतिपादित किया है कि मेघ प्रायः मार्ग में आने वाले ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों पर ही बरस जाया करते हैं और इस प्रकार वे क्षीण व जल के अभाव में हलके हो जाया करते हैं। साथ ही यह भी कि कहीं पहाड़ों में बहते हुए झरनों का जल पीकर (उठती हुई भाप से) वह पुनः पुष्ट हो जाते हैं—

क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य।

इस प्रकार रामगिरि से माहिष्मती तक पहाड़ों को पार करते हुए आना कठिन होता है, इसलिए इस क्षेत्र को धीरे-धीरे पार करके आना होता है। किन्तु यहां से विदिशा तक का मार्ग ऊबड़-खाबड़ होते हुए भी वैसा पर्वत-संकुल नहीं है। अतः कवि का द्रुतगति कहना सर्वथा साभिप्राय है। आगे और भी शीघ्र चला जा सकता है। कवि ने—

द्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः।

कहकर इसी तथ्य को व्यक्त किया है।

इस प्रकार मेघ को कवि ने रामगिरि से विदिशा तक पहुंचा दिया। यहां तक मार्ग में आम और जामुनों का रसास्वादन भी भरपूर कराया और अब यहां से भी आगे अलका की ओर अग्रसर होने के लिए मेघ को उत्तर की ओर ही बढ़ना चाहिए। किन्तु कालिदास को इससे कुछ प्रयोजन नहीं कि उसका मेघ अलका पहुंचता है कि नहीं, वह उसकी अपनी नगरी उज्जयिनी तक अवश्य पहुंच जाए, उसका मुख्य उद्देश्य यही है। इसीलिए यक्ष मेघ को यह स्पष्ट आदेश देता है कि विदिशा से उत्तर की ओर जाने के लिए रास्ता भले ही टेढ़ा पड़े, फिर भी उज्जयिनी पहुंचे बिना तुम आगे मत बढ़ना—

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशाम्
सौधोत्संगप्रणयविमुखो मास्म भूरुज्जयिन्याः ॥

किन्तु विदर्भ से विदिशा तक का मार्ग तो पर्वत-शृंखलाओं, सरित-सरिताओं, स्रोतों तथा आम और जामुन जैसे रसीले फलों से लदे तथा सरल-अर्जुन आदि वृक्षों से तथा सहस्रधारा जैसे दृश्यों से मनोहारी है, किन्तु आगे का मार्ग सीधा सपाट बिल्कुल मैदानी है। इस मार्ग में कुछ भो तो वर्णनीय विशेषता नहीं है। परन्तु कवि की यह रमणीय जन्मभूमि तो है और यहां निर्विन्ध्या (नेवज), सिन्धु (छोटी-बड़ी सिन्ध या काली सिन्ध) जैसी नदियां तो हैं ही और फिर उज्जयिनी का तो कहना ही क्या। वह तो धरती पर उतरा हुआ स्वर्ग का ही टुकड़ा है। यहां से आगे थोड़ी ही दूर बह रही है 'गंभीरा' (इसका नाम ही गंभीर है जल नहीं, हां यह बहुत ऊँचे किनारों के नीचे बह रही है इसीलिए इसका यह नाम है। वास्तव में यह नदी तो क्या मालवी भाषा का 'खाल' मात्र है। किन्तु कवि को प्रिय है, इसीलिए इसका ऐसा हृदयहारी चित्रण किया है, यहां से आगे चर्मण्वती को पार करा कर कवि ने मेघ को दशपुर और वहां से सीधे कुरुक्षेत्र व कनखल होते हुए हिमालय पार कैलास की गोद में बसी अलका तक पहुंचा दिया।

स्पष्ट है कि उज्जैन या अधिक से अधिक दशपुर से आगे के हिमालय तक के मार्ग को कालिदास को कुछ भी जानकारी नहीं है। इसोलिए वह वहां से आगे मेघ को सीधे उड़ा ले जाता है।

क्या कालिदास पूर्वगुप्त-युग के हैं ?

इस प्रकार यह सुनिर्धारित हो जाने के पश्चात् कि कालिदास आद्यन्त उज्जयिनी-अवन्तिका-क्षेत्र के ही हैं, यह प्रश्न शेष रह जाता है कि वे हुए कब थे। और इसके उत्तरमें ई० पू० पहली सदी से लेकर ईसा की छठी सदो तक की ७०० वर्षों की लम्बी अवधि में उनका स्थिति-काल निर्धारित किया जाता है। किन्तु मेरा अपने समग्र जीवन और विशेषतः इधर के ३० वर्षों के निरन्तर कालिदास-साहित्य के अध्ययन मनन के बाद यह सुनिश्चित मत बना है कि कविकुलगुरु कालिदास निश्चित ही गुप्त-युग के कवि हैं। वे सुदीर्घजीवी थे, अतः निश्चित ही सम्राट् समुद्रगुप्त से लेकर स्कन्दगुप्त तक का शासन काल उन्होंने देखा था। यह कोई बड़ी बात नहीं है, क्योंकि इधर हम हिन्दी के विख्यात कवि अमीर खुसरो को भी देखते हैं कि उन्होंने पांच बादशाहियाँ अपनी आँखों के सामने बनती-बिगड़ती देखी थीं।

यूं तो कालिदास के गुप्तकालीन होने के सम्बन्ध में विद्वानों ने अनेक अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत किए हैं, किन्तु मैं यहाँ सर्वप्रथम एक ऐसा प्रमाण प्रस्तुत करने जा रहा हूं, जिसका उत्तर किसी के पास नहीं है। वह यह है—

१. कालिदास ने मेघदूत में स्पष्ट रूप से विदिशा के साथ बहने वाली वेत्रवती (बेतवा) नदी के तट पर बने शैलाश्मों या गिरि-गुफाओं की चर्चा की है—

उद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभियौंवनानि।

मेघदूत-पूर्वमेघ-२४,२५

ये गुफाएँ गुप्त-काल में बनी हैं। इनके अन्दर लगे हुए शिलालेखों में इनके निर्माता गुप्त सम्राटों व उनके सामंतों और सेनापतियों के नामों के साथ गुप्त संवत् भी स्पष्ट रूप से दिए गए हैं।

पूर्वपक्ष का कहना है कि इन गुफाओं में एक के द्वार पर गणेश-प्रतिमा उत्कीर्ण है, जब कि कालिदास गणेश को जानता भी नहीं। ठीक तो है 'सति कुड्ये चित्रम्' के अनुसार जब शुंगकाल में ये शिलावेश्म थे ही नहीं तो कवि ने इनका वर्णन कैसे कर दिया। रही बात कलिदास के गणेश को न जानने की, सो इतिहास की विविध साक्षियों और प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि गुप्तयुग में एक 'गणदेवता' के रूप में 'गणेश' की मान्यता आरम्भ हुई। इसी-लिए सर्वप्रथम गुफा के द्वार के बाहर उनकी प्रतिमा अकित हुई। क्रमशः वह गणदेव ही हमारे गणेश बन गए। और यह भी सर्वविदित है कि पुराणों को अधुनिक रूप भी गुप्त युग में ही दिया गया है।

२. इसके अतिरिक्त एक अन्य अकाट्य प्रमाण यह है—दशपुर निश्चित रूप से गुप्तकाल में बसा था। वत्सभट्टि के गद्य-पद्यमय शिलालेख में सम्राट कुमारगुप्त का स्पष्ट उल्लेख है (देखिए आगे के पृष्ठ)। इधर कालिदास दशपुर का मनोहारी चित्र अंकित कर रहे हैं। गुप्तयुग से पूर्व दशपुर बसा ही नहीं था तो कालिदास ने उसका वर्णन कैसे कर दिया।

३. चाहे समुद्रगुप्त हो या चन्द्रगुप्त अथवा कुमारगुप्त हो या स्कन्दगुप्त सभी के नाम गुप्तांत हैं और इधर कवि ने इन चार-पाँच सम्राटों का युग देखा था। और उनके शौर्य, वीरता, दान-दाक्षिण्य आदि गुणों से अत्यधिक प्रभावित था, तथापि वह किसी एक का स्पष्ट नामोल्लेख न कर अपने दोनों काव्यों तथा तीनों नाटकों में 'गुप्त या गोप्ता' का ससम्मान स्मरण करता है। यहाँ तक कि अग्निमित्र के लिए भी गोप्ता विशेषण लगा देता है, 'गोप्तरि नाग्नि-मित्रे'। आश्चर्य की बात यह है कि कालिदास के सिवा संस्कृत के अन्य किसी

भी ग्रन्थ में किसी भी शासक के लिए गुप्त या गोप्ता का प्रयोग नही मिलता। और इधर कालिदास रघुवंश में ही बार-बार इस पदवी का विभिन्न सम्राटों के लिए प्रयोग करता दिखाई देता है यह गुप्त सम्राटों का ही सूचक है, हमारे श्रीगुरुदेव (अमृतवाग्भवाचार्य जी) यह बार-बार कहा करते थे।

४. गुप्त सम्राटों की ढेरों स्वर्ण मुद्राएं उपलब्ध हुई हैं, जिनमें से अधिकांश यज्ञ, अश्व, स्तूप और स्रुव आदि यज्ञपात्रों से अंकित हैं (देखें अन्यत्र)। इन स्वर्ण मुद्राओं की एक अन्यतम विशेषता यह है कि अधिकांश स्वर्णमुद्राएं ऐसी हैं जो ब्राह्मणों को यज्ञों में दक्षिणा देने के लिए ढालो गई थीं। दूसरे शब्दों में कह सकते है कि गुप्तयुग में ब्राह्मणों के लिए स्वर्णवृष्टि हो रही थी। रघुवंश में वर्णित स्वर्णवृष्टि के द्वारा कवि ने निश्चित ही अपने युग की उस स्वर्ण समृद्धि का ही प्रतिपादन किया है।

५. पतञ्जलि के महाभाष्य के 'यवनोऽरुणन्माध्यमिकाम्' कथन से स्पष्ट है कि शुंगयुग और उसके बाद भी लम्बे समय तक चित्तौड़ के पास बसी माध्यमिका एक समृद्ध नगरी थी, किन्तु कालिदास माध्यमिका को नहीं जानता, क्योंकि गुप्तयुग तक यह उजड़ ही नहीं चुकी थी लोग इसका नाम भी भूल गये थे। इसके विपरीत इसके पास ही दशपुर गुप्तयुग में बस गया था।

६. और ये हूण

गुप्तयुग में यूरोप से लेकर भारत तक के भूभाग को आक्रान्त कर देने वाले बर्बर हूणों की पश्चिमी शाखा ने सारे यूरोप को रौंद डाला था। उस समय इनकी पूर्वी शाखा वंक्षु के तट पर जमी हुई थी। इन्होंने आगे बढ़ते हुए पहले ईरान को रौंद डाला, किन्तु वीर स्कन्दगुप्त ने इन से लोहा लिया और इन्हें खदेड़ दिया। यद्यपि भारत में ऐतिहासिक सामग्री के अन्य स्रोत अनुपलब्ध हैं, तथापि अभिलेखों और सम्राटों की विशेषतः गुप्त सम्राटों की मुद्राओं के रूप में भी अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य सुरक्षित रह गए हैं। स्कन्दगुप्त के भीतरी शिलालेख की निम्न पंक्तियां स्पष्ट घोषित करती हैं कि स्कन्दगुप्त ने हूणों को युद्ध भूमि से खदेड़ दिया था—

हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्या धरा कम्पिता

और इधर कालिदास रघु को सेनाओं को हूणों के प्रारम्भिक जमाव के ठोक स्थान वंक्षु पर पहुंचा कर कहते हैं—

तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।

क्या इससे भी और बढ़कर साक्ष्य चाहिए कि कालिदास गुप्तयुग में ही हुए और रघु की हूणविजय के रूप में उन्होंने स्पष्ट रूप से हूणों पर स्कन्दगुप्त की विजय की ही चर्चा की है। जब हूण गुप्तों के समकालीन है और स्कन्द

गुप्त ने उन्हें युद्ध में खदेड़ा था, यह इतिहास-सिद्ध है, तो गुप्तयुग से पहले होने वाले कालिदास ने हूण युद्ध का वर्णन कैसे कर दिया, क्या कोई बता सकता है?

७. सिंहनिहन्ता

इस शब्द के स्मृतिपथ में आते ही कालिदास के प्रत्येक पाठक का ध्यान अनायास ही—

'सिंहशावक दन्तांस्ते गणयिष्यामि'

कहते हुए सिंहशावक से खेलने वाले भरत की ओर चला जाना स्वाभाविक है। किन्तु यह भी कवि की अपनी कल्पना नहीं है। हम देखते हैं कि सम्राट् समुद्रगुप्त व स्कन्दगुप्त आदि की अनेक 'व्याघ्रनिहन्ता और सिंहनिहन्ता' प्रकार को स्वर्णमुद्राएं मिली हैं, जिनमें ये सम्राट् सिंह से लड़ते और उन्हें मारते दिखाए गये हैं। कालिदास ने भरत के रूप में उसी चित्र को अंकित किया है और 'रघु को भी इसीलिये स्पष्ट शब्दों में 'सिंहोरुसत्व' कहा है। इन सब प्रमाणों से इसमें कुछ सन्देह नहीं रह जाता कि कविकुलगुरु कालिदास गुप्तयुग में ही हुए थे न उससे पहले न बाद में।

८. अप्रतिरथ

अभिज्ञानशाकुन्तल के भरतवाक्य से पूर्व पद्य का प्रथम पद है—

पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधामप्रतिरथः।

और अनेक सुधिजनों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि कालिदास ने यह पद सम्राट् सुवर्णगुप्त की स्वर्णमुद्रा से लिया है। दो स्वर्णमुद्राओं पर इसके किञ्चित्परिवर्तित निम्न दो पाठ अंकित हैं—

(१) **अतिरथो विजित्य क्षितिमवनीशो दिवं जायति।**

(२) **अतिरथो विजित्य क्षितिं सुचरितैर्दिवं जयति।**

इसके अतिरिक्त एक स्वर्णमुद्रा पर अंकित—

समरशतविततविजयो जितरिपुरजितो दिवं जयति।

का '**समरशतविजयी**' पाठ भी कलिदास की कृतियों में कहीं आया है, ऐसा मुझे याद आता है।

इन तथा इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर दिए गए ऐसे ही अन्य अनेक अकाट्य प्रमाणों के आधार पर यह भलो-भांति सिद्ध कर दिया गया है कि कालिदास गुप्तयुग के ही कवि थे। कवि ने समुद्रगुप्त के अंतिम दिनों से लेकर चन्द्रगुप्त व उसके पुत्र कुमारगुप्त तथा पौत्र स्कन्दगुप्त के सत्तारूढ़ होने तक

का समय देखा था यह सुनिश्चित है। इसके विपरीत मात्र यह कह कर कि कालिदास ने जिस विक्रमादित्य का नामोल्लेख किया है, वह विक्रम संवत् का प्रवर्तक कोई विक्रमादित्य नामक राजा है, विक्रमादित्योपाधिधारी चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त आदि गुप्त सम्राट् नहीं, तथा गुप्तसम्राट् (परम भागवत) वैष्णव थे, जबकि कालिदास शैव, उन्हें पूर्वगुप्तयुग का सिद्ध नहीं किया जा सकता।

कालिदासत्रयी—

इन तथा अन्य अनेक ऐसे ही अकाट्य युक्ति प्रमाण तथा तर्कों के आधार पर जब कालिदास गुप्तकालीन सिद्ध हो गए तो महाकवि कालिदास को ईसा पूर्व के मानने वाले कुछ विद्वानों ने यह कहना आरम्भ किया कि कालिदास तीन हैं। किन्तु वास्तव में काव्य और नाटक कर्ता कालिदास एक ही हैं, इस सम्बन्ध में विद्वद्वरेण्य रेवाप्रसाद जी का निम्न निष्कर्ष सर्वथा प्रामाणिक है—

'नाटकेष्वस्यकर्तृत्वे सन्दिहानाः कितर्का एव। शब्दाः, वाक्यानि, अभिप्रायाः, कविकर्म, प्रतिभा, वक्तव्यवस्तु चेति सर्वमपि यदा रघुवंशादिवच्छाकुन्तलादारभ्य मालविकाग्निमित्रं यावदप्यभिन्नं तदा को नु सचेतास्तेषां कर्तृत्वे भेदमभिवीक्षेत। (कालिदास ग्रन्थावली भूमिका पृष्ठ ४५)

गुप्तसम्राट् ब्राह्मण थे

इसके साथ ही यह भी सुनिश्चित है कि गुप्तसम्राट् धारण गोत्र के ब्राह्मण थे, उन्हें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तक बताने वाले प्रयत्न निस्सार हैं, यह उदय नारायण राय ने अपनी पुस्तक गुप्त सम्राट् और उनका काल के पृष्ठ ४७ से ६६ तक सप्रमाण सिद्ध किया है।

इस प्रकार यह सुनिर्धारित है कि महाकवि कालिदास उज्जयिनी में हो जन्मे, पले-पोसे और बड़े हुए तथा वहीं उन्होंने साहित्य का निर्माण किया। साथ ही यह भी कि उज्जैन से उत्तर में वे मथुरा और प्रयाग से आगे वे गए ही नहीं, हिमालय तो बहुत दूर की बात है।[1]

और यह भी कि कालिदास स्पष्ट रूप से गुप्तयुग के ही कवि है।

यह ग्रन्थ कैसे निर्मित हुआ ?

आज से आठ दस वर्ष पूर्व मेरे पास संस्कृत व यूरोपियन भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन, संस्कारों के वैज्ञानिक विवेचन एवं कालिदास-सम्बन्धी

लिखित व टंकित प्रभूत सामग्री को देखकर मेरठ के बंधुवर डा० गणेश दत्तजी शर्मा ने कहा 'यदि इनमें से किसी एक विषय की कुछ सामग्री व्यवस्थित कर दी जाय तो उस पर पी० एच०डी० की उपाधि अनायास हो मिल सकती है।' और उन्होंने मेरठ विश्वविद्यालय में मेरा पंजीकरण भी करवा दिया, तथा उसके बाद कुछ सामग्री 'कालिदास के काव्यों में निर्दिष्ट भौगोलिक तत्त्व' के नाम से शोध-प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत कर दी गयी। यथा समय पी०एच०डी० की उपाधि भी उस पर प्राप्त हो गई।

उसी सामग्री को इधर पांच छह वर्ष में नए सिरे से सजा संवार तथा घिस माजकर तथा पल्लवित एवं पुष्पित कर वर्तमान अभिनव रमणीय रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

इधर प्रभु कृपा से तुलनात्माक भाषा विज्ञान विषयक जिस सामग्री की चर्चा हुई है, वह भी 'संस्कृतं यूरोपीयाभाषाश्च' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो गई और उसे राजस्थान संस्कृत साहित्य अकादमी का 'पंच-सहस्ररूप्यकात्मक' माघ पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार संस्कार-सम्बन्धी सामग्री भी श्रीलालबहादुर शस्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली से 'संस्कार प्रकाश' के नाम से प्रकाशित हो गई है।



---

१. इस दृष्टि से मोहन राकेश का 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक भ्रामक और बेतुका है। इसमें कैसी विचित्र कल्पना की गई है कि कालिदास के समय में ही उसकी पुस्तकों की प्रतिलिपियां बिकने लगी थी और सुदूर गढ़वाल में स्थित उसकी प्रेयसी वहाँ उन्हें खरीद कर पढ़ा करती थीं। तथा मातृगुप्तोपाधिधारी कालिदास उज्जैन से गढ़वाल होकर काश्मीर पहुँचे थे। कहाँ तो हमारा कालिदास जो विदिशा से उज्जयिनी होकर उत्तर में जाने के लिए बहुत थोड़ा सा रास्ता टेढ़ा पड़ता है, इसकी भी चर्चा 'वक्रःपन्था यदपि भवतः' के द्वारा करना आवश्यक समझता है और कहाँ यह 'आषाढ़ का एक दिन' जिसमें मातृगुप्त को उज्जैन से गढ़वाल होते हुए काश्मीर पहुंचता दिखाया गया है। विद्वद्गण आपस में मिलते समय पारस्परिक चर्चाओं में उसके प्रति अपना रोष व्यक्त करके हो अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझ लेते हैं। अस्तु

यहाँ मैं यह भी सूचित कर देना चाहता हूँ कि आज से तीस वर्ष पूर्व सन् १९५६ में पूज्य पं सूर्यनारायण जी व्यास की देखरेख में एक फिल्म बनी थी 'कालिदास', उसकी तथा इस 'आषाढ़ के एक दिन' नाटक की कहानी मिलती जुलती है।

महाकवि कालिदास

लेखक— डा० बलजिन्नाथ पण्डित
शोध-निदेशक, शैवदर्शन-बृहत् कोष परियोजना,
श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू ।

काश्मीरा(कुलग्रामा) भिजन शैवागम मर्मज्ञ साहित्य दर्शनादि शास्त्र-निष्णात हिमाचल विश्वविद्यालय शिमला के भूतपूर्व संस्कृत रीडर पण्डितजी का यह लेख कालिदास और उनकी अलौकिक काव्य-रचना के संबंध में निश्चित ही सर्वथा मौलिक एवं विद्वज्जन स्वीकार्य धारणाएं जगाएगा ।

—सम्पादक

व्यक्तित्व

संसार में सहस्रों कवि प्रकट हुए, परन्तु कालिदास का दूसरा जोड़ा कहीं भो उपलब्ध नहीं हुआ । काव्य-नाट्य के क्षेत्र में कालिदास की ऐसी अनुपम सफलता का क्या कारण रहा, इस बात पर निश्चय पूर्वक कोई कुछ नहीं कह सका । ऐसी सफलता के दो अलौकिक कारण माने जा सकते हैं, एक है, जगदम्बा द्वारा शक्ति के सारस्वत स्वरूप की उपसना का फल और दूसरा है, परमेश्वर शिव का निष्कारणतीव्र अनुग्रह-शक्तिपात। जगदम्बा के वाग्बीज की उपासना के फल के विषय में श्री धर्माचार्य की पञ्चस्तवी में इस तरह से कहा गया है—

दृष्ट्वा सम्भ्रमकारि वस्तु सहसा "ऐ ऐ" इति व्याहृतं
येनाकूतवशादपीह वरदे बिन्दुं विनाप्यक्षरम् ।
तस्यापि ध्रुवमव देवि तरसा जाते तवानुग्रहे
वाचः सूक्तिसुधारसद्रवमुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात् ।।

(पं० स्त० १—३)

देवी के व्यक्त सारस्वत आकार की उपासना के फल के विषय में भी वहीं कहा गया है—

यः स्फाटिकाक्षगुणपुस्तककुण्डिकाढ्यां
व्याख्यासमुद्यतकरां शरदिन्दुशुभ्राम् ।
पद्मासनां च हृदये भवतीमुपास्ते
मातः स विश्वकवितार्किकचक्रवर्ती ।। (तदेव ४-१४)

शिव के निष्कारण अनुग्रह-शक्तिपात के विषय में मालिनीतन्त्र में उसके पांच लक्षणों में से एक लक्षण यह बताया गया है—

कवित्वं पञ्चमं ज्ञेयं सालङ्कारं मनोरमम् ।

(मा० वि० तं० २-१६)

परन्तु इन दो कारणों से जो अन्य-अन्य फल साधक को मिलते हैं, वे कालिदास को प्राप्त थे या नहीं थे, इस बात के अनुकूल या प्रतिकूल प्रमाण उसकी कृतियों में मिलते नहीं। अतः इन में से किसी के भी अस्तित्व के विषय में निश्चय पूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता।

कालिदास की जैसी अनुपम प्रतिभा का एक और कारण भी हो सकता है और वह है भूतपूर्व जीवन का गहरा संस्कार। विद्या और कला के ऐसे अनुपम निर्माता महापुरुष प्रायः विद्याधर-लोक के निवासी देव गण हुआ करते हैं। हमें सौभाग्य से एक ऐसे महानुभाव से घना सम्पर्क रहा है, जो कभी विद्याधर लोक में निवास करते थे और अपने गुरु के प्रति जरा भर अवहेलना के कारण चार बार इस मानव-लोक में जन्म पाकर अब शाम्भवी योगसाधना के बल से सिद्धों के लोकों को सिधार गए हैं। उन्हें लम्बे चौड़े काव्य लिखने में प्रायः प्रवृत्ति नहीं हुई। परन्तु जब कभी लिखते थे तो ऐसा प्रतीत होता था कि रचना मानव की न होकर किसी देवता की है। शास्त्र-रचना में उनकी बुद्धि उन-उन गहराइयों तक प्रवेश कर जाती थी जिन का स्पर्श मात्र कोई इने गिने सिद्धजन ही कर सके हैं। वे महानुभाव थे—हमारे पूज्यवर गुरुदेव आचार्य श्रीअमृतवाग्भव जी। उनके द्वारा विरचित आत्मविलास, श्री विंशतिका-शास्त्र और सिद्ध-महारहस्य आदि प्रकाशित हो चुके हैं। पाठक महानुभाव दार्शनिक दृष्टि को गहराई को पराकाष्ठा को उन ग्रन्थों में पा सकते हैं। ऐसी गहराइयों तक हमारे विचार में वे अंशतः विद्याधर संस्कारों से ही जाया करते थे और अंशतः शाम्भवी योग-साधना के प्रभाव से भी।

तो हमारे विचार में महाकवि कालिदास भी कभी विद्याधर लोक में निवास कर चुकने के अनन्तर किसी प्रमाद के कारण प्राप्त हुए शाप से ही इस मानव लोक में उतर कर जन्मे थे। भारत वर्ष की भूमि का बड़ा सौभाग्य था कि ऐसे विद्याधर ने भूलोक में उतर कर इसी पुण्यभूमि में जन्म लिया। इस स्थूल सृष्टि में जब प्राणी स्थूल देह को लेकर के माता के गर्भ में परिपक्व बन कर जन्म लेता है तो पुराने समस्त जीवनों की सभी घटनाओं को प्रायः सर्वथा भूल जाया करता है, विशेषतः दो तीन वर्ष की आयु तक पहुंचने पर। परन्तु पुराने जन्म की प्रवृत्तियों और योग्यताओं के तथा स्वभाव के संस्कार

उसके भीतर बने ही रहते हैं, यद्यपि वह स्वयं भी उन्हें स्पष्टतता जान नहीं पाता है। ठीक यही बात कालिदास की थी। तभी तो अपने विषय में उन बातों को न जानते हुए भी उनके अज्ञात संस्कारों से कालिदास के अवचेतन चित्त में कोई अनोखी प्रेरणा हुई जिससे प्रेरित होते हुए उन्होंने मेघदूत की रचना की। उस रचना में वर्णित विषय के दूसरे पहलू को पूरा करते हुए उन्होंने घटखर्पर काव्य रचा, जिससे विरहवेदना के नायकनिष्ठ और नायिकानिष्ठ दोनों ही पहलू पूरी तरह से चमक उठे। अवचेतन चित्त की ऐसी स्थिति के विषय में अभिज्ञानशाकुन्तलम् के पञ्चम अङ्क में उन्होंने स्वयं कहा भी है—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥

(अभि० शा० ५-२)

ठीक उसी तरह से विद्याधर लोक की तथा उधर की अपनी प्रेयसी विद्याधरी की अज्ञात स्मृति से अन्तः प्रेरित होकर कालिदास ने मेघदूत और घटखर्पर इन दो खण्ड काव्यों की रचना की।

आचार्य आनन्दवर्धन ने यमक, १ श्लेष, चित्र आदि अलङ्कारों के विषय में कहा है कि उनका प्रयोग अधिक नहीं करना चाहिए, विशेष करके शृङ्गार आदि कोमल रसों वाले काव्यों में; क्योंकि उनके प्रयोग से अर्थ-बोध में बाधा आने से रसास्वाद की सतत प्रवहण-शील चमत्कृति की परम्परा में विच्छेद हो जाता है। परन्तु कालिदास एक ऐसा अनुपम कवि है कि उसके घटखर्पर काव्य में आद्योपान्त सभी पद्यों में यमकअलङ्कार भी है और फिर भी उसमें रसविच्छेद नहीं होता है। तभी तो आ० अभिनवगुप्त ने कहा है कि दोष ही सदा दोष नहीं होते और गुण ही सदा गुण नहीं होते। औचित्य की दृष्टि से कभी दोष भी गुण बन जाते हैं और गुण भी दोष बन जाते हैं :—

यदुक्तं मयैव गौरव विचारे
न वै दोषा-दोषा न च खलु गुणा एव च गुणा
निबन्धस्वातन्त्र्यं सपदि गुणदोषान् विभजते।
इयं सा वैदग्धी प्रकृतिमधुरा तस्य सुकवे-
र्यदत्रोत्पादादप्यतिसुभगभावः परिणतः ॥

(घ० ख० वृ० पृ० २१)

अलङ्कार शास्त्र के इस सिद्धान्त को आचार्य मम्मट ने भी प्रतिपादित

किया है। घटखर्पर काव्य में महाकवि ने ऐसे-ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है कि शब्दश्लेष का तथा यमकों का प्रयोग करते हुए भी श्लोक रचना ऐसी बनी है कि न ही अर्थ बोध में कोई क्लिष्टता आई है और न ही रसविच्छेद कहीं होता है। तभी तो अपनी ऐसी काव्य-रचना की योग्यता पर अपूर्व सन्तोष का अनुभव करते हुए काव्य के अन्तिम पद्य में उन्होंने इस तरह से कहा है—

भावानुरक्तललनासुरतैः सपेय-
मादाय चाम्बु तृषितः करकोषपेयम्।
जीयेय येन कविना यमकैः परेण
तस्मै वहेयमुदकं घटखर्परेण॥ (घ० ख० २६)

इस पद्य के अन्तिम समस्त पद के ही कारण सारे काव्य का नाम ही "घटखर्पर काव्य" पड़ा, जैसे शिशुपालवध काव्य का दूसरा नाम पड़ा है घण्टामाघ और जैसे किरातार्जुनीय को आतपत्र-भारवि भी कहा जाता है। कालिदास ने इस छोटे से काव्य को जो नाम स्वयं दिया था, उसे अब कोई जानता ही नहीं। महाकवि श्री कालिदास को जहां कहीं भी अवसर आता है, वहां वे किन्नर, किम्पुरुष आदि देवयोनियों का वर्णन करते हैं। उससे भी देवलोक के साथ उनका कोई आन्तरिक सम्बन्ध प्रकट होता है। अतः पूर्व जीवन में वे विद्याधर थे और शाप के कारण मानव लोक में उतरे थे।

विशेष महत्त्व

काव्य के कलेवर और कला-पक्ष के तीन मुख्य अंग होते हैं। वे हैं कथा-वस्तु, अलङ्कार-प्रयोग और स्फुट रसाभिव्यञ्जकता। इन तीनों में ही काव्य सर्वथा समुचित ढंग से सुन्दर होना चाहिए। फिर इन तीनों के सौन्दर्य का समुचित अनुपात ही काव्य के महत्त्व को बढ़ाता है। तभी तो अलङ्कार शास्त्र के एक निर्माता कह गए हैं—

न चातिरसतो वस्तु दूरं विच्छिन्नतां नयेत्।
रसं वा न तिरोदध्याद्वस्त्वलङ्काररक्षकैः॥

कालिदास की कविता में काव्य के इन तीनों ही अङ्गों के सौन्दर्य का अनुपात इतना रोचक है कि उसकी कविता की रमणीयता अभी तक अनुपम ही बनी रही है। काव्य सौन्दर्य की कई एक अन्य-अन्य बातों में कवि भारवि, श्री हर्ष, माघ आदि बहुत आगे बढ़ गए, परन्तु सौन्दर्य के अनुपात के अनुपम औचित्य में कालिदास सदा के लिए अद्वितीय ही बने रहे। फिर कालिदास ने

शृङ्गार जैसे रस के सभी पक्षों को नायक और नायिका, दोनों ही की स्थिति में पूरी तरह चमका दिया। मेघदूत विरही नायक की स्थिति का चित्रण करता है और घटखर्पर विरहिणी नायिका की। रघुवंश में नायक विलाप करता है और कुमारसम्भव में रति-विलाप का खूब विस्तार है। परस्पर विपरीत भावों को भी कालिदास पराकाष्ठा तक पहुंचा गये हैं। कुमारसम्भव के तृतीय और पञ्चम सर्गों में योग का वर्णन सर्वथा अनुपम है और वहीं अष्टम सर्ग में भोग का, वहां सम्भोग शृङ्गार रस की पराकाष्ठा है और तृतीय सर्ग के मध्यभाग में शृङ्गार रसाभास भी अतीव रोचक और चित्ताकर्षक बना है। फिर कालिदास की एक सब से बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने काव्य-रचना किन्हीं धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि समस्याओं को लेकर के नहीं की। ऐसी समस्याओं का महत्त्व देश-काल-परिस्थिति आदि के अनुसार बदलता रहता है। जब हम बालक थे तो मैथिली शरण गुप्त बहुत लोकप्रिय कवि थे, क्योंकि भारत की स्वतन्त्रता के लगातार आन्दोलनों के युग में वे राष्ट्रवाद की कविता लिखते थे। आज कल का युग खाने पीने का, भोग का अर्थ-वृद्धि आदि का युग है। अत: आजकल उस समय के राष्ट्रकवि को कवियों के भीतर गिना ही नहीं जाता। कालिदास ने ऐसी सामयिक समस्याओं को छोड़ कर मानव-जीवन की सदातन समस्याओं को कविता का विषय बनाया। मानव-जीवन में पुरुष-स्त्री का परस्पर प्रेम सदा चलता ही रहता है। माता पिता के और लड़का-लड़की के परस्पर स्नेह की समस्याएं मानव को कभी छोड़ती नहीं। मानव सभी देशों और सभी युगों में मानव ही है। अत: मानव-जीवन के कोमल भावों को कविता का विषय बनाकर रखने के कारण कालिदास सभी देशों और सभी युगों के कवि हैं। इन अनेकों विशेषताओं के कारण कालिदास सर्वत्र सर्वदा लोकप्रिय बने रहे और बने रहेंगे।

दर्शन विचार

कालिदास को अनेकों विद्वान् प्रत्यभिज्ञा दर्शन का अनुयायी ठहराते हैं। इस में कोई सन्देह नहीं कि कालिदास धार्मिक और दार्शनिक दृष्टि में शैव थे। परन्तु जिस युग में कालिदास भारत में सशरीर विद्यमान थे, उस युग में प्रत्यभिज्ञा दर्शन के वाङ्मय का आविर्भाव और विकास अभी हुआ ही नहीं था। हां प्रत्यभिज्ञा दर्शन के कुछ एक मुख्य मूल सिद्धान्तों और शाम्भवी आदि योग मुद्राओं के अभ्यास का थोड़ा-थोड़ा प्रसार कुछ इने गिने सिद्धों और योगियों की परम्पराओं में उपदेशात्मकतया सदा चलता ही रहा; सिन्धु सभ्यता के प्रागैतिहासिक युग से ही चलता रहा। उपनिषदों में, भगवद्गीता

में याज्ञवल्क्यस्मृति में और वाक्यपदीय में तथा महाभारत में, शिवाद्वैत सिद्धान्त का और शैव योग का उल्लेख कहीं-कहीं आया है। पाशुपत सन्तों में शैव योग का प्रचार चलता रहा। हो सकता है कि कालिदास को भी किसी योगी के सम्पर्क से शिवाद्वैत की दीक्षा मिली हो। परन्तु इस बात में कोई भी संशय नहीं कि उनकी दार्शनिक विचारधारा स्पष्टतया शिव-महा-पुराण की है, प्रत्यभिज्ञा दर्शन की नहीं है; चाहे उन दोनों में अंशतः साम्य भी थोड़ा-थोड़ा हो। तो हमारे विचार में कालिदास शैव दर्शन की उस धारा से प्रभावित थे, जिसका पूरा विकास पश्चात् अर्वाचीन काल में श्रीकण्ठशिवाचार्य ने किया, उसे शिवाद्वैत-दर्शन भी कहा जाता है और अभेद परिणाम वाद भी। जब कि कश्मीर का प्रत्यभिज्ञा दर्शन पराद्वैत सिद्धान्त या स्वातन्त्र्यसिद्धान्त कहलाता है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन का एक मात्र अंश, जो स्पष्टतया कालिदास की रचना में मिलता है, वह है कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग में वर्णित शाम्भवी मुद्रा, जो भारत भर में अनादि काल से गुरु-शिष्य परम्पराओं में चलती आ रही है। मेघदूत में कालिदास ने शिवोपासना का चरम फल सर्वथा अभेद की स्थिति को न कहते हुए शिव के साथ सालोक्य की स्थिति को ही कहा है—

यस्मिन् दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः
सङ्कल्पन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ॥

(मे० दू०—१-५५)

दुष्यन्त और शकुन्तला की परस्पर प्रत्यभिज्ञा तथा जीव की शिवात्मकतया स्वात्मप्रत्यभिज्ञा में परस्पर बहुत बड़ा अन्तर है। ऐसी स्थिति में प्रत्यभिज्ञा शब्द का प्रयोग का आधार घूणाक्षरन्याय भी हो सकता है। कालिदास की रचनाओं में शैव दर्शन के वे ही स्थूल विचार मिलते हैं, जो शिवमहा पुराण में दिए गए हैं। प्रत्यभिज्ञा दर्शन का कोई भी सूक्ष्म विचार वहां मिलता नहीं, क्योंकि उस दर्शन का स्फुट आविर्भाव आठवीं शताब्दी में हुआ और पूरा विकास नवीं शताब्दी में। तमिल देश का शैव सिद्धान्त और कन्नड देश का वीर शैव दोनों ही कालिदास की अपेक्षा बहुत अर्वाचीन हैं। एक मात्र पाशुपत शैव दर्शन ही बहुत प्राचीन है। परन्तु उसका चरम विकास कापालिकपन्थ के रूप में हुआ और कापालिक सिद्धान्तों के दर्शन कालिदास की रचनाओं में नहीं होते। तो एक मात्र शिव महापुराण ही कालिदास की दार्शनिक दृष्टि का आधार शेष रह जाता है।

जन्म-स्थान

हिमालय का यथार्थ वर्णन वही कर सकता है, जो वहां रहा हो। कालिदास ने कुमारसम्भव में जो हिमालय का वर्णन किया है, विशेष करके—

आमेखलं सञ्चरतां घनानां
छायामधः सानुगतां निषेव्य। (कु सं० १-६)

इस वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि वे हिमालय में रहे हैं। तो इस आधार पर कई एक पुराने शोध विद्वानों ने उन्हें कश्मीर निवासी ठहराया है। मेघदूत में वे मेघ को गढ़वाल प्रान्त का मार्ग बताते हैं। उससे कई एक विद्वान् उन्हें गढ़वाली मानते हैं। फिर उन्होंने उज्जैन के आसपास के मालव देश के अनेकों स्थानों, पर्वतों, मन्दिरों और नदियों का जो वर्णन विस्तार पूर्वक किया है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे उसी देश के निवासी थे। इस तरह से इस विषय पर बहुत मतभेद है।

कश्मीर देश तो उनकी जन्मभूमि नहीं है। इस विषय में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए :—

(१) कालिदास ने अपने किसी भी ग्रन्थ में कश्मीर देश का, श्रीनगरी का, वितस्ता नदी का नामोल्लेख तक नहीं किया है।

(२) रघु के दिग्विजय के प्रकरण में तथा इन्दुमती के स्वयंवर के प्रकरण में महाकवि को अच्छा अवसर मिला था कि उनका भी विस्तृत वर्णन करते, परन्तु जराभर भी किया नहीं।

(३) यदि वे कश्मीर निवासी होते हुए भी कश्मीर से बहुत दूर उज्जैन में रहते हुए अपने काव्यों की रचना कर रहे होते तो स्वदेशविरह के कारण अवश्य ही कश्मीर का वर्णन उन्होंने किया होता। उदाहरणार्थ बिल्हण कवि को लीजिए।

(४) यदि कश्मीर निवासी होते हुए उन्होंने वहीं काव्य रचना की होती तो तब भी अवसर आने पर वे कश्मीर का वर्णन करने में उदासीन कभी नहीं रहते। उदाहरणार्थ श्रीकण्ठचरित के निर्माता मंख कवि को लीजिए।

(५) फिर यदि उन्होंने कश्मीर देश का विशेष भ्रमण भी किया होता तो भी वे कहीं न कहीं कश्मीर देश के सौन्दर्य का वर्णन तो कर ही गए होते। परन्तु उन्होंने किया नहीं।

(६) यदि वे कश्मीरी होते तो मेघ को कैलास की ओर न ले जाकर कश्मीर की ओर ले चलते। यक्ष के स्थान पर किसी ऐसे देवता को चुनते जो कश्मीर के पर्वतों से सम्बद्ध होता।

(७) फिर यदि उन्होंने कश्मीर का भ्रमण कहीं किया होता तो अक्षोट वृक्षों का वर्णन गान्धार देश में न करते हुए कश्मीर देश में करते।

(८) कालिदास ने रघुवंश में कुङ्कुम का वर्णन हिन्दु कुश के परे वंक्षु-(Oxus) के तट पर किया है; वितस्ता के तट पर नहीं। यदि फिर हम "वंक्षुतीरविचेष्टनैः" ऐसा पाठ न मानते हुए "सिन्धु-तीरविचेष्टनैः" ऐसा पाठ मानें तो फिर भी वह वर्णन या तो लद्दाख का हो सकता है या सीमा प्रान्त और पश्चिमी पंजाब के सन्धिस्थल का अथवा सिन्ध प्रान्त का हो सकता है, कश्मीर का नहीं।

(९) फिर कोई महानुभाव कालिदास को प्रत्यभिज्ञा दर्शन का अनुयायी मानते हुए उन्हें कश्मीर निवासी ठहराते हैं। इस विषय में ऊपर बताया गया कि कालिदास के युग में प्रत्यभिज्ञा-दर्शन का आविर्भाव हुआ ही नहीं था। यदि प्रचार था भी कहीं तो इने गिने साधकों में था, जनता में नहीं था, विद्याकेन्द्रों में नहीं था और पण्डित समाज में नहीं था। अतः यह तर्क भी टिकने वाला तर्क नहीं।

(१०) महाकवि ने भारत भर के प्रान्त-प्रान्त का वर्णन किया है; एक मात्र कश्मीर का नहीं किया है। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि सम्भवतः उन्होंने अपने काव्यों के लेखन काल तक कभी भी कश्मीर देश के प्राकृतिक सौन्दर्य का दर्शन ही नहीं किया था।

हिमालय का वर्णन ऐसा कवि भी कर सकता है जिसने हिमालय का भ्रमण न भी किया हो। अत एव इस बात में कोई संशय नहीं कि वे मध्य भारत में उज्जैन के आस-पास के ही निवासी थे। तभी तो उस प्रदेश का वर्णन बहुत विस्तार से उन्होंने किया है।

काल

कालिदास किस युग के कवि थे इस विषय में दो तीन मत विशेष महत्त्व क हैं—एक मत यह है कि वे सातवाहन वंश के महेन्द्रादित्य के सभा

कवि थे। सातवाहन शैव थे और कालिदास भी शैव थे। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में जान बूझ कर "महेन्द्र" इस नाम का प्रयोग कई बार किया है। इस मत के प्रधान पोषक श्री काले हैं और उनके विचार में कालिदास ई० पू० प्रथम शताव्दी के कवि हैं। वे उस युग के कवि हैं, जिस युग में पुष्यमित्र, अग्निमित्र और वसुमित्र भूतपूर्व इतिहास के व्यक्ति थे, परन्तु जब उनकी कीर्ति इतनी ख्यात हो चुकी थी कि नाटक के पात्र बन सकें।

दूसरे मत के परिपोषक श्री भगवद्दत्त थे, जिन्हें कहीं से समुद्रगुप्त रचित "कृष्णचरित" नामक काव्य की पाण्डुलिपि मिली थी। उस काव्य के आधार पर उन्होने यह सिद्ध करने का यत्न किया था कि शूद्रक विक्रमादित्य ही संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य हैं और उन्हीं के सभाकवि कालिदास थे। ऐसा प्रतिपादन उन्होने स्वातन्त्र्य युग से पहले लाहौर में किया था। स्वतन्त्रता के आने पर वे कहां गए, उनके कृष्ण चरित का क्या हुआ, और उनके विचारों की जांच कहां तक की गई, इस विषय में कुछ भी विदित नहीं हुआ। (वे दिल्ली में थे और मुझसे अनेक विषयों पर उनकी चर्चा होती रहती थी।—सम्पादक)

तीसरा मत जिन विद्वानों का है, उनके विचार में कालिदास समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के सभा-कवि थे। रघु के दिग्विजय का वर्णन समुद्रगुप्त के दिग्विजय के अनुसार किया गया है। विक्रमादित्य के नाम को अमर बनाने के लिए एक नाटक का नाम विक्रमोर्वशीयं रखा गया, जिसे उर्वशी पुरुरवसम् रखा जा सकता था। कुमार गुप्त के जन्म के उपलक्ष्य में एक महाकाव्य का नाम ही कुमारसम्भवम् रखा गया। फिर कालिदास की रचनाओ में समाज का जो वैभवशाली चित्र मिलता है, वह गुप्तों का ही युग हो सकता है। अत: कालिदास का समय चतुर्थ शताब्दी माना जाना चाहिए। बहुत से विद्वान् इसी मत को पुष्ट करते हैं।

अन्त में एक बात मैं और कहना चाहता हूं, वह यह है कि घटखर्पर काव्य की अभी तक अवहेलना होती रही। यमक-बहुल होने के कारण उसे विद्वद्गण कालिदास की रचनाओ में गिनते ही नहीं। परन्तु मेरे विचार में एक मात्र कालिदास की ही कला में इतना चातुर्य हो सकता है कि यमक मयी रचना में भी अनुच्छिन्न सरसता वनी रह सकती है और यमकों के कारण अभिव्यक्ति शाव्द-सौन्दर्य से रस के चमत्कार में वृद्धि आ सकती है। और कोई कवि ऐसी रचना का निर्माण नहीं कर सकता। फिर आ० अभिनवगुप्त ने भी कहा है —

अत्र कर्ता महाकविः कालिदास इत्यनुश्रुतमस्माभिः।

(घ० ख० वृ० प्र—२०)

कालिदा

बृहत्तर

द्वीपान्तर से गान्ध

द्वीपा

इन्द्रद्युम्न (अन्डेमान) से

मेरु (पामीर)
वंक्षु
सिन्धुनद
पुष्कलावती (पेशावर)
तक्षशिला
वितस्ती
चन्द्रभागा
इरावती (रावी)
विपाशा
शतद्रु
कनखल
कुरुक्षेत्र
हस्तिनापुर
मथुरा
पुष्कर
दशपुर
चर्मण्वती
यमुना
सरयू
अयोध्या
काशी
कैलास
गंगा
पुष्पपुर
ब्रह्मपुत्र
कामरूप
वंग
उत्कल
कलिंग
सुह्म
उज्जयिनी
चित्रकूट
नर्मदा नदी
माहिष्मती
कुण्डिनपुर
रामगिरि
विदर्भ
पञ्चवटी
गोदावरी
त्रिकूट
किष्किन्धा
गोआ
कावेरी
सेतुबन्ध (रामेश्वर)
महेन्द्र (पूर्वीघाट)
पूर्वसागर
द्वीपान्तर
अन्देमान
विजय
पांड्य
36°
32°
28°
24
20
16
12
10
64°
68°
72°
76°
80°
88°
92°
96°
100



नाना वागर्थसम्पृक्तां वागर्थवरदां शिवाम् ।
वेदविज्ञानसंधात्रीं भारतीं मातरं नुमः ॥

विषय-प्रवेश

"भूगोल" शब्द से (क) "भौतिक-भूगोल" तथा (ख) "मानव-भूगोल" संज्ञक भूगोल की दोनों विधाओं से सम्बद्ध तत्त्वों का ग्रहण किया जाता है।

(क) भूमण्डल, महाद्वीप, द्वीप, देश-प्रदेश, जनपद, पर्वत, सरित्-सरोवर-समुद्र, वन-वनस्पति, जीव-जन्तु एवं जलवायु और आकाशमण्डल आदि "भौतिक-भूगोल" के प्रतिपाद्य विषय हैं।

(ख) जन-जीवन, ग्राम, नगर, वन-उपवन आदि मानवीय-निर्माण एवं भौतिक-भूगोल के सरित्-समुद्रादि तत्त्वों का मानव के द्वारा अपने हित में नानाविध उपयोग "मानव-भूगोल" का विषय है[1]।

कविकुलगुरु कालिदास को अपने समकालीन बृहत्तर भारत के उक्त दोनों विधाओं से सम्बद्ध प्रमुख भौगोलिक तत्त्वों और तथ्यों के निरीक्षण एवं वर्णन की अद्भुत क्षमता प्राप्त थी। उत्तर में सुमेरु (पामीर) से लेकर दक्षिण में द्वीपान्तर या इन्डोनेशिया तक व्याप्त कवि की सम-सामयिक "सप्त-द्वीपा वसुमती" के हृदयहार भारतवर्ष के उक्त दोनों प्रकार के भौगोलिक वैशिष्ट्यों का जिज्ञासु पाठक कवि के साथ अपनी भौगोलिक यात्रा बड़े मजे से आरम्भ कर सकता है। बृहत्तर भारत और उसके आस-पास के प्रदेशों की सही जानकारी देने वाले एक सुलझे हुए भूगोल तत्त्वज्ञ मार्गदर्शक की भांति कवि सम्बद्ध क्षेत्र की सभी प्रमुख विशेषताएँ, दर्शनीय स्थल, सरित-सरोवर-समुद्र, पशु-पक्षी वानस्पतिक उपज, जन-जीवन तथा उसके आचार-विचार आदि का कहीं सूक्ष्म-सांकेतिक तो कहीं विशद वाणी से दिग्दर्शन कराता चलता है।

भारत के पूर्व की ओर अपने साथ ले जाता हुआ महाकवि पाठक को गंगासागर का दृश्य दिखाकर उस क्षेत्र के यातायात के प्रमुख साधन-नौका की भी चर्चा करता है[2]। दक्षिण में वह पान, सुपारी, इलायची, लोंग और कालीमिर्च के वनों और उपवनों में ले जाकर अपने पाठक के अन्तर्तम को

---

१. मानव-भूगोल की केन्द्रीय विचारधारा भौगोलिक वातावरण तथा मनुष्य के बीच समन्वय स्थापित करने की है।

—मानव भूगोल, डा० श्रीनाथ मेहरोत्रा प्रस्तावना, पृष्ठ—१

२. देखिए आगामी पृष्ठ।

चन्दन से चर्चित एवं केवड़े की सुरभित पराग से सुवासित कर देता है[१]। उधर पश्चिमोत्तर में गांधार से भी आगे पारसीक तथा कम्बोज क्षेत्र में प्रवाहित वंक्षु नदी के तट तक पहुंचा कर कवि वहां के प्रसिद्ध अंगूरों के लता-मण्डपों, केशर की क्यारियों तथा अखरोट जैसे मेवे के वृक्षों से भरे जंगलों की झाँकी दिखाता है[२]। यदि दक्षिण में कवि पाठक के मनश्चक्षुओं के समक्ष कावेरी-समुद्र-संगम-स्थल मन्नार की खाड़ी की मौक्तिक-सम्पदा से समृद्ध महोदधि के सजीव चित्र उपस्थित करता है[३] तो उत्तर में वह कस्तूरी मृग, गवय और चमरी मृग जैसे हिमालय के जीवों को भूर्ज और देवदारु वृक्षों के तले विचरते दिखाता है[४]।

अद्‌भुत, मनोहर और रोमांचक होते हुए भी महाकवि के साथ बृहत्तर भारत की यह यात्रा सर्वथा स्वाभाविक ही लगती है। कवि के साथ इस भौगोलिक यात्रा में चल पड़ने पर पाठक कभी अपने गौरवपूर्ण महान् अतीत की स्मृतियों में खो जाता है, तो कभी अतीतानागत तथा वर्तमान की सीमाओं को लांघकर शाश्वत में विचरने लगता है।

उज्जैन के महाकालेश्वर मन्दिर की सान्ध्य-आरती की भव्य झांकी दिखाने वाले —

अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य काले[५]।

आदि श्लोक को पढ़ते-पढ़ते सहृदय कहीं दूर अतीत में पहुंच जाता है, या अतीत ही उसके लिए वर्तमान बनकर कहता है कि कालिदास के समय में भी सन्ध्या-आरती के समय उज्जैन के महाकाल मन्दिर में झांझ, ढोल, नगारे और मन्त्रों के स्तुतिपाठ से वातावरण वैसे ही मुखरित हुआ करता था और समय से पहले ही पहुंच जाने वाले दर्शनार्थी वैसे ही आरती का समय होने तक वहीं जमे रहते थे।

कहीं—"प्रस्तुत" तथा विशद रूप में और कहीं "अप्रस्तुत" रूप में निर्दिष्ट या मात्र संकेतित दोनों विधाओं में भौगोलिक तत्त्व बड़े ही सटीक और हृदयग्राही हैं।

प्लक्ष अपने प्रकार का एक ही भारतीय वृक्ष है। तने के ऊपर से फूटने वाली जटा-जाल से घिरी इसकी चतुर्मुखी प्रमुख शाखाएँ अपने वैशिष्टय के कारण दर्शक का ध्यान तत्काल अपनी और आकृष्ट कर लेती हैं। कालिदास ने —

---

१. १ से ४ देखिये आगामी पृष्ठ

५. मेघदूत, पूर्वमेघ—३८

प्लक्षान्प्ररोहजटिलानिव मन्त्रिवृद्धान्[1]।

में अप्रस्तुत रूप से प्लक्ष का चित्र खींच दिया है। यहाँ बताया गया है कि श्री राम के विरह में चौदह वर्ष तक दाढ़ी न बनवाने के कारण बढ़ी हुई लम्बी दाढ़ियों वाले मन्त्रिवृद्ध श्री राम को ऐसे लगे जैसे प्ररोहजटिल प्लक्ष ही उनके सामने खड़े हों।

जटाएँ वट-वृक्ष से भी निकलती हैं, किन्तु प्लक्ष और वट में बहुत अन्तर है। वट की शाखाओं के बीच में से बहुत लम्बी जटाएँ निकला करती हैं, जबकि प्लक्ष की ये जटाएँ इसके तने के ऊपर ठीक शाखाओं के फूटने के स्थान से निकलती हैं। (किन्तु श्री सीताराम चतुर्वेदी की कालिदास-ग्रन्थावलि में प्लक्ष का अर्थ वट दिया गया है[2]।)

नदियों के संगमों से सम्बद्ध भौगोलिक तथ्यों के कालिदास ने कई चित्र खींचे हैं। गंगायमुना-संगम का बड़े विस्तार से प्रस्तुत रूप में वर्णन किया है[3]। इसके विपरीत पुष्पपुर के पास गंगा-शोण संगम का कवि अप्रस्तुत रूप में मात्र संकेत कर देता है—

प्रत्यग्रहीत्पार्थिववाहिनीं तां
भागीरथीं शोण इवोत्तरंगः[4]।

में कवि ने बताया है कि जैसे बरसात में उफनता शोण-नद आड़े आकर गंगा के प्रवाह को भी रोक लेता है, वैसे ही अज ने प्रतिपक्षियों की सेनाओं को आगे बढ़ने से रोक दिया।

"प्रस्तुत" और "अप्रस्तुत" सूक्ष्म संकेतित और विशद व्यापक बिम्बग्राही व संश्लिष्ट-चित्रात्मक आदि अनेक काव्य-शैलियों में व्यक्त नानाविध भौगोलिक तत्त्वों की पच्चीकारी से कालिदास अपने इन वैभवशाली काव्यप्रासादों को सजाते और संवारते चलते हैं।

---

१. रघुवंश, १३-७१

२. कालिदास-ग्रंथावली, पृष्ठ—१४५।

तीन वर्ष पूर्व उज्जैन में कालिदास समारोह के अवसर पर जब मैंने पण्डितजी का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया तो उन्होंने बाद में अपने निवास स्थान वेदपाठी भवन, मुजफ्फरपुर से अपने पत्र में लिखा—प्लक्ष का अर्थ पिलखन या पाकर ही है, किन्तु साथ ही उन्होंने आप्टे कोश में प्लक्ष का अर्थ वट वृक्ष दिया है, यह भी मुझे सूचित किया।

३. रघुवंश, १३-५४ से ५८

४. वही, ७-३६

भौगोलिक वर्णन की रुक्षता हटाकर कवि ने भूगोल के प्रत्येक तत्त्व को रसस्निग्ध बना दिया है।

विषय विभाग

कालिदास-द्वारा काव्यात्मक शैलियों में व्यक्त क्षेत्र-विशेष के भौगोलिक तत्त्वों का विवेचनात्मक ब्योरा देने के उद्देश्य से तात्कालिक भूसन्निवेश में प्रदर्शित बृहत्तर भारत के मानचित्र को पुराणों के **भुवनकोशों** में प्रतिपादित विभाजन के आधार पर प्रस्तुत ग्रन्थ में निम्न चार प्रमुख भागों में विभक्त कर दिया गया है :—

प्राग्देश — १. पूर्वक्षेत्र—मगध से वंग एवं कलिंग से कामरूप तक।
२. दक्षिण क्षेत्र—लंका से ऋक्ष पर्वत श्रेणी तथा पूर्वसागर से अपरान्त तक।

उदीच्य देश--३. पश्चिमोत्तर क्षेत्र—ब्रह्मावर्त से वंक्षु नदी तक तथा हिमालय की उपत्यका से सुमेरु तक।

मध्य देश— ४. मध्य क्षेत्र— विन्ध्य से हिमालय तथा मगध से ब्रह्मावर्त तक।

इन जनपदीय क्षेत्रों के भौगोलिक तत्त्वों को प्रस्तुत ग्रन्थ के नौ अध्यायों तथा प्रत्येक अध्याय के नौ उपविभागों में दर्शाया गया है।

प्रस्तुत प्रथम अध्याय में विषय-प्रवेश, द्वितीय में सप्तद्वीपा वसुमती, उसमें भारत की स्थिति तथा क्षेत्रीय विभाजन, तृतीय में पूर्वक्षेत्र, चतुर्थ में दक्षिणक्षेत्र, पंचम में पश्चिमोत्तर-क्षेत्र एवं षष्ठ अध्याय में मध्यक्षेत्र के जनपदों से सम्बद्ध भौगोलिक तत्त्वों का सोदाहरण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सप्तम अध्याय में भारतवर्ष के आकाशमण्डल से सम्बद्ध भौगोलिक तत्त्व समाहृत है। अष्टम अध्याय में कालिदास कालीन सामाजिक राजनैतिक धार्मिक आदि परिस्थितियों का सिंहावलोकन किया गया है। नवम अध्याय उपसंहारात्मक है।

उपविभाग

विभिन्न अध्यायों में समाविष्ट प्रत्येक क्षेत्र से सम्बद्ध सामग्री को निम्न नौ शीर्षकों के अन्तर्गत संजोया गया है :—

१. भौगोलिक वैशिष्टय। २. क्षेत्र की बड़ी इकाई-जनपद। ३. छोटी इकाई-नगर, उपवन, तीर्थ, तपोवन एवं आश्रम। ४. पर्वत। ५. सरित्-सरोवर-समुद्र। ६ वन, वृक्ष, कृषि-उपज एवं खनिज। ७. जीव-जन्तु।

८. जन-जीवन। ९. निष्कर्ष।

विषय के विवेचन को व्यवस्थित रूप देने की दृष्टि से निम्न क्रम अपनाया गया है :—

१. पहले विवेच्य भौगोलिक तत्त्वों का सामान्य विवरण दिया गया है।

२ तत्पश्चात् इसके बारे में कालिदास द्वारा निर्दिष्ट सामग्री जुटायी गयी है ।

३. संस्कृत साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध प्रमाणों से कालिदासोक्त भौगोलिक वर्णनों का समर्थन भी किया गया है।

४. कालिदास के उद्धरण विवेच्य विषय के साथ ही दिए गए हैं, किन्तु अन्य ग्रन्थों के उद्धरण पाद टिप्पणी में और कहीं-कहीं मूल के साथ भी निर्दिष्ट हैं।

—०—

वेद भगवान् का आदेश अपनी मातृभूमि भारत को पहचानें

* गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु।

** यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि ॥

*** विमृग्वरीं पृथिविमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम्।

—अथर्ववेद पृथ्वी सूक्त

१. हे भारतभूमि जिन पर सदा बर्फ जमी रहती है तेरे ये हिमवान् और विन्ध्य आदि दूसरे गिरि पर्वत तथा वन हमारे लिये स्योन-सुखदायक बने रहें।

२. जिसमें वनस्पतियां और वृक्ष लताएं आदि सदा लहलहाते रहते हैं, उस सब का धारण-पालन पोषण करने वाली भारत भूमि की हम वन्दना करते हैं।

३. जिसके स्वरूप को सम्यक्तया जान लेने से जिसकी वृद्धि-उन्नति होती है, उस भारतभूमि को हम भली भाँति जानें पहचाने।

—०—

द्वितीय अध्याय

कालिदास-निर्दिष्ट सप्तद्वीपा वसुमती तथा बृहत्तर भारत

आरूढमद्रीनुदधीन्वितीर्णम्
भुजंगमानां वसतिं प्रविष्टम् ।
ऊर्ध्वं गतं यस्य न चानुबन्धि
यशः परिच्छेत्तुमियत्तयालम् ।।

—रघुवंश, ६-७७

कालिदास-निर्दिष्ट सप्तद्वीपा वसुमती तथा बृहत्तर भारत

कालिदास-प्रतिपादित जिस बृहत्तर भारत के भौगोलिक तत्त्वों का विवेचन यहाँ किया जा रहा है, उसके स्वरूप-वैशिष्ट्य एवं क्षेत्रीय विभाजन से सम्बद्ध सामग्री वेद, पुराण, रामायण, महाभारत तथा काव्य साहित्य से लेकर अभिलेखों तक में समाहित है।

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो,
यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्,
सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु[1]॥

अथर्ववेद के इस मन्त्र में सरित्-समुद्रात्मक "भौतिक" तथा उनके जल से कृषकों के द्वारा अन्नोत्पादन रूप "मानवीय" भूगोल के उभयविध तत्त्व एक साथ जुटाते हुए कहा गया है—"जिस पर समुद्र-नद-नदियां और जलाशयों से उपलब्ध जल से कृषकगण अनेक प्रकार की खेतियां करते हैं और नानाविध धान्य आदि उगाते हैं, जिस पर यह प्राणी-जगत् चल फिर रहा है, वह मातृभूमि या भारतभूमि हमें उत्तम खान-पान देती रहे।

महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में कहा है कि चक्रवर्ती भरत ने अपने जल और स्थल दोनों पर समान रूप से चलने वाले रथ[2] से इस भूमण्डल पर विद्यमान चारों ओर से समुद्रों से घिरे सातों द्वीपों पर विजय प्राप्त कर ली :—

रथेनानुद्घातस्तिमितगतिना तीर्णजलधिः
पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधामप्रतिरथः।[3]

सप्तद्वीप

एशिया, अफ्रीका और यूरोप के अधिकांश भूभाग को अपने में समेट लेने वाले उस समय तक ज्ञात इन सात द्वीपों का विवरण देते हुए पुराण-

---

१. अथर्ववेद, १२-१-१-३

२. वसिष्टमन्त्रोक्षणजात्प्रभावादुदन्चदाकाशमहीधरेषु।
मरुत्सखस्येव बलाहकस्य गतिर्विजघ्ने नहि तद्रथस्य॥ —रघुवंश ५-२७

३. अभिज्ञानशाकुन्तल, ७-३३

प्रतिपादित भुवन कोषों में बताया गया है कि जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलि तथा कुशद्वीप तथा क्रौंच और शाकद्वीप नामक छह द्वीपों के बाद इन सबसे ऊपर या धुर उत्तर में है पुष्करद्वीप[1]।

सप्तार्णव

कालिदास ने अपने सप्तद्वीप-सम्बन्धी उक्त उल्लेख के साथ ही यह भी कहा है कि ये सात द्वीप समुद्रों के द्वारा एक दूसरे से अलग कर दिए गए हैं, इसलिए इन समुद्रों को तैर कर या लांध कर ही इन सातों द्वीपों तक पहुंचा जा सकता है। सप्तद्वीपा वसुमती के साथ ही कवि ने यह भी कहा है—

तीर्णजलधिः

स्वभावतः ये समुद्र भी सात ही हैं। अन्यत्र स्वयं कवि ने इन समुद्रों की सात संख्या बताते हुए भगवान् विष्णु को "सप्तार्णवजलेशायी" बताया है :—

सप्तार्णवजलेशयम्[2]

पुराणों में इन सातों समुद्रों के नाम ये बताए गए हैं—

१. लवण, २. इक्षु, ३. सुरा ४. घृत, ५. दधि, ६. क्षीर और ७. जलसमुद्र[3]।

इन नामों से किसी को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि पुराणकार इस भूमण्डल पर सचमुच किन्हीं दूध, दही, घृत और सुरा से भरे समुद्रों की बात कर रहा है, इसीलिए यह सर्वथा मिथ्या या गप्प मात्र है। इसके विपरीत समुद्रों के ये नाम उनके जल के रंग-रूप और स्वाद के सूचक हैं। पुराणकार महर्षि वेदव्यास ने भू-मण्डल के उक्त सातों द्वीपों को इन समुद्रों से सटा दिखा कर उनकी भौगोलिक स्थिति सुस्पष्ट कर दी है। जैसे कि-शराब के जैसे लाल रंग वाले समुद्र को सुरा समुद्र कहा गया है। निश्चित ही यह आज

---

१. जम्बूद्वीपः प्रधानोऽयं प्लक्षः शाल्मलिरेव च।
कुशः क्रौंचश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमः।
एते सप्त महाद्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः।
—कूर्मपुराण, ४५-२, ५

२. रघुवंश, १०-२१

३. लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलाब्धिभिः।
—मार्क० पु०, ५४-७

का लाल सागर है, जिसका जल शराब के जैसी लालिमा लिए हुए है। इसके बांए तट पर बसा हुआ 'कुश' द्वीप आज का उत्तरी अफ्रीका का वह क्षेत्र है, जिसमें एबेसी निया-घाना आदि देश हैं। ईसा-पूर्व चौथी-पाँचवीं शताब्दी के ईरानी सम्राट् दारयबहु (धारयद्वसु) के शिलालेखों मे उत्तरी अफ्रीका को "कुश" देश ही कहा गया है[1]।

इसी प्रकार पौराणिक क्षीरसागर आज का "केस्पियन" समुद्र है। निश्चित ही केस्पियन सागर के उत्तर में स्थित रूस और यूरोप का भू-भाग ही पुराणों का 'पुष्कर' द्वीप है।

आधुनिक अफगानिस्तान वैदिक अवगान या गांधार के सीस्तान (शकस्थान) जनपद से लेकर पश्चिमोत्तरवर्ती मध्यएशिया का सारा क्षेत्र पुराणों में "शाक द्वीप" के नाम से अभिहित है।

सम्पूर्ण एशिया महाद्वीप का एक संयुक्त नाम है "जम्बूद्वीप"।

सुमेरु (पामीर का पठार) और उसके चारों ओर के चार वर्ष

कालिदास ने जम्बुद्वीप के मध्यवर्ती "सुमेरु" की भौगोलिक स्थिति स्पष्टता के साथ प्रदर्शित की है। कवि कहता है कि भगवान् शंकर विवाह के बाद एक मास तक हिमालय में रहे, तदनन्तर पार्वतीजी को अपने साथ लेकर विहार करने के लिए चल पड़े। पहले वे हिमालय से सीधे "सुमेरु" पर पहुंचे थे—

मेरुमेत्य मरुदाशुगोक्षकः।[2]

सुमेरु पर्वत से वापिस लौटते हुए मार्ग में वे कुछ समय के लिए "मंदराचल पर्वत" पर ठहर गए—

मन्दरस्य कटकेषु चावसत्।[3]

तत्पश्चात् शिवपार्वती कैलाश पर्वत पर आ गए—

एकपिंगलगिरौ जगद्गुरुर्निर्विवेश।[4]

इस प्रकार कालिदास ने बता दिया कि हिमालय और उससे सटा हुआ भारतवर्ष सुमेरु के दक्षिण में है।

सुमेरु के पूर्व में 'भद्राश्व' वर्ष (चीन) पश्चिम में केतुमालवर्ष (मध्य-

---

१. देखें परिशिष्ट।
२. कुमारसंभव, ८-२२।
(मेरु और सुमेरु एक ही हैं, देखें पृष्ठ १५)
३. वही, ८-२३
४. वही, ८-२३

एशिया) तथा उत्तर में उत्तरकुरु वर्ष को स्थिति भी पुराणों में अनेकत्र प्रदर्शित है।

'वर्ष' किसे कहते हैं—

समान वर्षा-क्षेत्र में आने वाले भूखण्डों को "वर्ष"[१] कहा गया है।

सुमेरु के चारों ओर स्थित (वर्षों के) पर्वतों तथा उनसे निकलने वाली नदियों के नाम भी पुराणों में दिए गए हैं, ताकि उनको पहचानने में कहीं कोई दुविधा न रहे। केतुमाल वर्ष या शाकद्वीप को वंक्षु नदी से सिंचित प्रदेश कहा गया है।[२] महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश महाकाव्य में रघु की पश्चिमोत्तर दिग्विजय से सम्बद्ध—

विनीताध्वश्रमास्तस्य वंक्षुतीरविचेष्टनैः।
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धाल्लग्नकुंकुमकेसरान्॥
तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्॥[३]

आदि श्लोकों में पारसीक तथा कम्बोज देशों के प्रसंग में वहां बहने वाली वंक्षु नदी, उसके आस-पास केसर की क्यारियां तथा हूणों और शकों की बस्तियां दिखाकर सुमेरु के पश्चिम में स्थित केतुमाल वर्ष या मध्य एशिया की भौगोलिक स्थिति का सही-सही दिग्दर्शन कराया है।

इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तल के—

चीनांशुकमिव केतोः[४]

में चीनांशुक (चीनी रेशम) के संकेत से भद्राश्व या चीनदेश का उल्लेख किया गया है।

भारतवर्ष-चतुर्दिक सीमाएँ—

इस प्रकार कालिदास द्वारा निर्दिष्ट भौगोलिक सामग्री के आधार पर भूमण्डल पर सप्तार्णवों से सटे सप्तद्वीपों में से अन्यतम जम्बूद्वीप-एशिया तथा उसके मध्यवर्ती सुमेरुपर्वत के साथ ही उसके दक्षिण में भारतवर्ष, पश्चिम

---

१. मार्कण्डेय पुराण एक अध्ययन, ले० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृष्ठ-१२७

२. **केतुमालमतो वर्षं निबोध मम पश्चिमम्।**
ये पिबन्ति महानद्यो वंक्षुं श्यामां स्वकम्बलाम्॥
मा० पु० ५६-१२ व १५

३. रघुवंश, ४-८७-८८

४. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-३२

में केतुमाल, उत्तर में उत्तरकुरु तथा पूर्व में भद्राश्ववर्ष नामक चारों वर्षों की भौगोलिक स्थिति निर्धारित हो जाने के बाद अब भारतवर्ष के भू-सन्निवेश का भौगोलिक विवेचन समीचीन होगा—

"अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ।"[1]

श्रीमद्भागवत का यह श्लोक बताता है कि पूर्वोक्त सात समुद्रों से घिरे सभी द्वीपों तथा वर्षों में भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है।

पुराणों के भुवनकोशों में निर्दिष्ट 'कार्मुक' संस्थान के अनुसार दक्षिणोत्तर में कन्याकुमारी से हिमालय तक विस्तृत[2] भारतवर्ष का स्वरूप उस धनुष के समान है जिसकी प्रत्यंचा सुमेरु के दक्षिण में स्थित हिमालय है[3]।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश के प्रारम्भ में ही दक्षिणोदधि से नाक (सुमेरु)तक भारत की सीमाओं का परिचायक एक सूत्र पकड़ाते हुए कहा है—

आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ।[4]

इसी प्रकार कवि ने कुमारसंभव के प्रथम श्लोक—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा-
हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य-
स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ।।[5]

---

१. श्रीमद्भागवत, ५-६-१३

२. आयतस्तु कुमारीतो गंगायाः प्रवहावधिः । —मत्स्यपुराण ११३-१०

३. एतत्तु भारतं वर्षं चतुःसंस्थानसंस्थितम् ।
दक्षिणापरतो ह्यस्य पूर्वेण च महोदधिः ।।
हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथा गुणः । —वही ।

४. रघुवंश १-५
यहाँ 'नाक' का अर्थ सुमेरु कैसे किया गया ? इस प्रश्न के उत्तर में मेरा निवेदन है —'**स्वरव्ययं स्वर्गनाकस्त्रिदिवस्त्रिदशालयः ।**' —अमरकोष
इस प्रसिद्ध श्लोक में 'नाक' का पर्यायवाचक 'त्रिदशालयः' भी स्पष्टरूप से दिया गया है। और 'अमरा-निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः' में त्रिदश और सुर ये दोनों पर्यायवाचक माने गए हैं और—'मेरुः सुमेरुः हेमाद्रिर्रत्नसानुः सुरालयः ।' में स्पष्टरूप से सुमेरु को सुरालय-त्रिदशालय-या स्वर्ग बताया गया है। क्या अब भी त्रि-दशालय और सुरालय या स्वर्ग और सुमेरु के समीकरण में कोई शंका रह जाती है।
? प्रश्न चिन्ह तो मेरु का अर्थ सुमेरु करने पर भी लगाया गया है।
इसका समाधान भी अमरकाश के उक्त प्रमाण से ही हो जाता है।

५. कुमारसंभव, १-१

के द्वारा भी पूर्व सागर से अपरान्त तक विस्तीर्ण हिमालय को पृथ्वी अर्थात् भारत भूमि के उत्तर में दिखाकर इसकी चतुर्दिक्-सीमाएं निर्धारित कर दी हैं।[1]

महरोली के सुप्रसिद्ध लौह-स्तम्भ पर उत्कीर्ण गुप्तसम्राट् चन्द्रगुप्त की प्रशस्ति में भी भारतभूमि को वंग तथा दक्षिणोदधि से बाल्हीक तक दर्शाते हुए कालिदास-निर्दिष्ट भारतवर्ष की चतुर्दिक सीमाओं के समर्थन में कहा गया है कि—

अपने से लड़ने आए वंग आदि जनपदों के शत्रु राजाओं के दलों को परास्त कर देने की जिसकी कीर्ति-गाथा खड्ग के द्वारा उसकी भुजा पर अंकित हो गई। तथा जिसने (देश के पश्चिमोत्तर में प्रवाहित) सिंधु नदी की सात धाराओं और उसकी सहायक छः नदियों के पार जाकर वहां से बाल्हीक (बलख के यूनानी प्रदेश) तक के शत्रुओं को खदेड़ दिया और जिसके पराक्रम की पराग से सुवासित तटवर्ती पवन के झोंकों से दक्षिणोदधि आज भी सुरभित है।[2]

दशपुर (मन्दसौर) के वत्सभट्टि-रचित सूर्यमन्दिर-अभिलेख में भी— **"चारों समुद्रों की वेलायें जिसकी लहराती हुइ मेखलाएं हैं, सुमेरु और कैलाश जिस मातृभूमि के विशाल पयोधर हैं, वनों और उपवनों में खिलते हुए पुष्प जिसकी मृदुमन्द मुस्कुराहट हैं, उस भारतभूमि पर जिस समय सम्राट् कुमारगुप्त शासन कर रहे थे।"[3]** कहकर भारत की कालिदासोक्त सीमाओं का समर्थन किया गया है।

---

१. यहां यह शंका व्यक्त की गई है कि—यह कैसे सिद्ध होता है कि कवि हिमालय को भारत के उत्तर में स्थित बताना चाहता है।
इसके लिए मेरा निवेदन है कि सामान्यतया सभी संस्कृत-कवियों और विशेषतः कालिदास की यह प्रवृत्ति दिखाई देती है कि वे अपने देश को भारत या आर्यावर्त या ऐसे ही किसी अन्य नाम से अभिहित न कर पृथ्वी और उसके पर्याय-वाचक नामों से ही सम्बोधित करते हैं। प्रसंग आने पर भी कवि ने कहीं भारत नाम नहीं लिया।

२. यस्योद्वर्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून्समेत्यागतान्
वंगेष्वाहववर्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्तिर्भुजे।
तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाल्हिका
यस्याद्याप्याधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दक्षिणः॥

३. चतुःसमुद्रान्तविलोलमेखलां, सुमेरुकैलासबृहत्पयोधराम्।
वनान्तवान्तस्फुटपुष्पहासिनीं, कुमारगुप्ते पृथिवीं प्रशासति॥
—दशपुरपट्टवायश्रेण्याः अभिलेखः, (वि० सं० ५२६,) श्लोक-२३

हमारे यहाँ 'समुद्रवसना पर्वतस्तनमण्डिता' भारत-माता को प्रातः प्रणाम करने का विधान कर भारत की "समुद्रपर्वतात्मक" भौगोलिक सीमाओं की एकात्मता का प्रतिदिन स्मरण किया जाता है।

द्वीपान्तर

कवि ने कहा है कि "द्वीपान्तर" से लाये गए 'लौंग' (जैसे गर्म मसालों) से लदे जहाज उन दिनों कलिंग के पत्तनों पर उतरा करते थे, जिनके कारण सारा समुद्र तट सुवासित रहता था। कवि के—

द्वीपान्तरानीतलवंगपुष्पैः[1]

कथन से ज्ञात होता है कि 'द्वीपान्तर' के नाम से प्रसिद्ध सुदूर दक्षिण पूर्व में जावा, सुमात्रा, बोर्नियो और बाली तक फैले द्वीप समूह भारत के ही द्वीप कहलाते थे। इन द्वीपों के लिए प्रयुक्त ग्रीक नाम "इन्दोनेशिया"—हिन्द द्वीप-समूह, अपने आप में इन द्वीपों की भारतीयता का पूरा इतिहास समेटे हुए है। पुराणों में अनेकत्र चर्चित इन्द्रद्वीप या इन्द्रद्युम्न (अन्देमान), नागद्वीप (निकोबार), ताम्रपर्णी (सिंहल), लका, वरुणद्वीप (बोर्नियो) और कसेरुद्वीप मलय-मलेशिया नामक आठों द्वीपान्तरों में कालिदास के समय (गुप्तयुग) तक हिन्दूधर्म, संस्कृति और संस्कृत भाषा घर कर चुकी थी। इन्दोनेशिया तथा मलेशिया व थाई देश आदि में आज भी प्रयुक्त संस्कृतनिष्ठ भाषाएं तथा बोरोबदुर व अंगकोरथाम के विशाल मन्दिर इन 'द्वीपान्तरों' की भारतीयता के परिचायक हैं।

भारतवर्ष का प्रादेशिक विभाजन

पुराण-परम्परा तथा कालिदास की कृतियों के माध्यम से इस प्रकार भारतभूमि की पूर्वी, पश्चिमी तथा उत्तरी व दक्षिणी सीमाएं निर्धारित हो जाने के पश्चात् उसके आन्तरिक प्रमुख क्षेत्रीय भौगोलिक विभाजन का विवेचन समीचीन होगा।

प्राच्य और उदीच्य क्षेत्र

प्राचीन भुवनकोषों तथा दूसरे ग्रन्थों में आजकल की भांति भारतवर्ष को विंध्य के द्वारा एक दूसरे से अलग किए गए "दक्षिण भारत" और 'उत्तर भारत' नामक दो पृथक् भूखण्डों में विभक्त न दिखाकर "प्राच्य" और

---

१. रघुवंश, ६-५७

"उदीच्य" संज्ञक दो क्षेत्रों में विभाजित किया गया था। 'प्राच्य' इस पारिभाषिक संज्ञा में पूर्वी तथा दक्षिणी तथा "उदीच्य" में पश्चिमोत्तरी क्षेत्र समाविष्ट था[1]। इस विभाजन का कोई भौतिक-पर्वत या नदी आदि-आधार न था, अपितु खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा और विभाषाओं से सम्बद्ध सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के आधार पर ही यह वर्गीकरण किया गया था। पाणिनि ने—

"प्राचां ग्रामनगराणाम्"[2] तथा "प्राचां नगरान्ते"[3]

जैसे सूत्रों के द्वारा "प्राच्य" क्षेत्र के उल्लेख के साथ ही—

उदीच्यग्रामाच्च बह्वृचोऽन्तोदात्तात्"[4]

जैसे अनेक सूत्रों में प्राच्यऔर "उदीच्य" (पश्चिमोत्तरी) क्षेत्र में प्रयुक्त नानाविध विभाषाओं का निरूपण किया है। अमरकोष में पाणिनि द्वारा समर्थित "प्राच्य" दक्षिणपूर्वी तथा "उदीच्य" पश्चिमोत्तरी इन दोनों पारिभाषिक शब्दों को अपनाया लिया गया।

मध्य देश

अमरकोष में कहा गया है कि आर्यावर्त के मध्यवर्ती क्षेत्र को मध्यदेश[5] कहा जाता है। आज का मध्य प्रदेश तो मालवभूमि, बुन्देलखण्ड और छत्तीसगढ़ के आसपास तक के क्षेत्रों में ही सिकुड़ कर रह गया, किन्तु प्राचीनकाल में प्रयाग से सरस्वती के विनशन (अम्बाला कुरुक्षेत्र) तथा विंध्य से हिमालय तक फैला हुआ विशाल क्षेत्र "मध्यदेश" कहलाता था।[6]

पुराण-प्रतिपादित भुवनकोषों के अनुरूप कालिदास ने भी अपने काव्यों में इण्डोनेशिया से वंक्षु तक के बृहत्तर भारत तथा भारतवर्ष के प्राच्य, उदीच्य और मध्यदेश इन तीन क्षेत्रीय विभागों से सम्बद्ध भौगोलिक तत्त्वों व तथ्यों की यथाप्रसंग चर्चा की है।

---

१. देशः प्राग्दक्षिणः प्राच्य उदीच्यः पश्चिमोत्तरः।
—अमरकोष, २-१-७

२. अष्टाध्यायी, ७-३-१४ ३. वही, ७-३-२४

४. वही, ४-२-१०९

५. मध्यदेशस्तु मध्यमः। अमरकोष, २-१-७

६. हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥
मनुस्मृति, २-२१

तृतीय अध्याय

कालिदास-चर्चित भारतवर्ष का पूर्वी क्षेत्र

मगधसुह्मविदेहांगा वंगाश्च कामरूपकाः ।
उत्कलाश्च कलिंगाश्च कालिदासेन चर्चितः ।।

कालिदास-चर्चित भारत का पूर्वी क्षेत्र

मगध से वंग तथा कलिंग से कामरूप तक विस्तीर्ण भारत के पूर्वक्षेत्र-वर्ती प्रमुख आठ जनपदों को हमने पहले के पृष्ठ पर दिए गए 'मगधोत्कला' आदि श्लोक में एक साथ दर्शाया है।

मुख्यतः गंगा और ब्रह्मपुत्र के निचले मैदानों में आने वाला यह क्षेत्र एक ऐसा सपाट उर्वर भूभाग है, जहां नदियों का जाल बिछा हुआ है। इसके पूर्व-दक्षिण में पूर्व सागर (बंगाल की खाड़ी) और महेंद्र (पूर्वी-घाट) पर्वत-शृङ्खला एवं उत्तर तथा पूर्वोत्तर में हिमालय की पूर्वी शृङ्खला विद्यमान है। गंगा, ब्रह्मपुत्र, शोण और कपिशा तथा अन्य अनेक छोटो-बड़ी नदियों से सिंचित इस क्षेत्र के पूर्वी छोर पर गंगा अपना डेल्टा बनाती हुई समुद्र के साथ मिलती है।

मत्स्य, मार्कण्डेय तथा कूर्म पुराण में पूर्व क्षेत्र के—

अंग, वंग, मद्गुरुक तथा हिमालय के 'अन्तर्गिरि' और 'बहिर्गिरि' के पूर्वी सीमान्त पर आने वाले अनेक जनपद, सुह्म देश तथा उत्तरी क्षेत्र प्रविजय, भार्गव, गेयमाल, प्राग्ज्योतिष, पुण्ड्र, विदेह, ताम्रलिप्तिक, शाल्व, मगध, और गोनर्द।

ये प्राच्य जनपद माने गऐ हैं[1]।

महाभारत में कालिदास-निर्दिष्ट सात प्राच्य जनपदों में से मगध, ताम्रलिप्त, सुह्म, कलिंग और वंग इन चार का एक पद्यार्ध में एकत्र तथा अंग और कामरूप का पृथक् उल्लेख हुआ है[2]। महाभारत तथा पुराण-प्रति-पादित "पुण्ड्र" वंग का उत्तरी क्षेत्र ही है। अतः कालिदास के वंग में ही पुण्ड्र भी समाविष्ट है।

---

१. अंगा वंगा मद्गुरुका अन्तर्गिरिबहिर्गिरी।
सुह्मोत्तराः प्रविजयाः भार्गवा गेयमालवाः॥
प्राग्ज्योतिषाश्च पुण्ड्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः।
शाल्वमगधगोनर्दाः प्राच्या जनपदाः स्मृताः॥

२. वंगाः कलिंगा मगधास्ताम्रलिप्ताः सुपुण्ड्रकाः। —महा० सभा, ५२-१८
अंगा वंगाश्च पुण्ड्राश्च। वही, ५२.१६
तैरेव सहितः सर्वैः प्राग्ज्योतिषमुपाद्रवत्। वही, २६-७
स किरातैश्च चीनैश्च वृतः प्राग्ज्योतिषोऽभवत्। वही २६-९

कालिदास-र्चाचत पूर्वी-क्षेत्र के जनपद

मगध

मध्य क्षेत्र की पूर्वी सीमा प्रयाग-काशी के साथ सटे हुए भारत के पूर्वी क्षेत्र में प्रवेश करने पर सर्वप्रथम मगध (बिहार) आता है। अतः पूर्व क्षेत्र के भौगोलिक विवेचन का प्रारम्भ मगध जनपद से ही किया जा रहा है। अपने व्यापक अर्थ में मगध शब्द वर्तमान पूर्वी बिहार के लिए प्रयुक्त होता था। विदेह और अंग आदि कई छोटे जनपद भी इसमें सम्मिलित थे। किन्तु जहां अंग और विदेह आदि जनपदों का पृथक् उल्लेख किया गया हो, वहां गंगा के दक्षिण में स्थित पटना ओर गया जिलों के क्षेत्र दक्षिण बिहार को ही मगध जनपद माना जाता था। मगध पश्चिम में काशी और कोशल, पूर्व में अंग, दक्षिण में उत्कल और उत्तर में विदेह जनपदों से घिरा था। मगध जनपद से प्रवाहित होती हुई शोण नदी पुष्पपुर (पटना) के पास गंगा में जा मिलती है।

कालिदास ने मगध जनपद के गौरवशाली ऐतिहासिक एवं भौगोलिक तथ्य को ध्यान में रखते हुए मगध जनपद की चर्चा के प्रसंग में कहा है कि इन्दुमती के स्वयंवर में सुनन्दा सर्वप्रथम उसे मगध के महाराज के सम्मुख ले गई—

प्राक्संनिकर्षं मगधेश्वरस्य नीत्वा कुमारीमवदत्सुनन्दा।[1]

इसी प्रसंग में—

असौ शरण्यः शरणोन्मुखानामगाधसत्वो मगधप्रतिष्ठः।[2]

में भी मगध का परमोत्कर्ष व्यंजित हुआ है।

मगध की चर्चा सर्वप्रथम अथर्ववेद में आयी है[3]। वाल्मीकि रामायण में मगध की चर्चा करते हुए कहा गया है कि इस क्षेत्र में सुमागधी नदी बहती है[4]। महाभारत में मगध और उसकी राजधानी गिरिव्रज का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि भीम के साथ श्रीकृष्ण और अर्जुन जरासंध का वध करने

१. रघुवंश, ६-२०
२. वही, ६-२६
३. गंधारिभ्यो मूंजवद्भ्यो मगधेभ्यः प्रेष्यन्।
जनमिव शेवधिं तवमानं परिदद्मसि। अथर्ववेद, ५-२२-१४
४. सुमागधी नदी रम्या मागधान्विश्रुता ययौ।
पंचानां शैलमुख्यानां मध्ये मालेव शोभते॥
वा० रामा०, बाल काण्ड ३२-८ व ६

के लिए गिरिव्रज पहुंचे थे[१]। मौर्य-सम्राट, चन्द्रगुप्त के समय में मगध और उसकी राजधानी पुष्पपुर को सम्पूर्ण भारत वर्ष की राजधानी होने का जो गौरव प्राप्त हुआ, वह गुप्त युग तक बराबर बना रहा।

विदेह

मगध के पूर्व में उससे सटा हुआ छोटा-सा जनपद 'विदेह' उत्तर बिहार के तिरहुत प्रमण्डल में वज्जिदेश (वैशाली) के उत्तर पूर्व अथवा पूर्वोत्तर में था। विदेह की गणना तात्कालिक वज्जि, विदेह, मल्ल, शाक्य, कल्याण तथा मौर्य गणराज्य नामक छह गणराज्यों में की जाती थी। कालान्तर में वज्जि और विदेह मिलकर एक ही संयुक्त 'वज्जिविदेह' गण बन गये थे। मिथिलापुरी विदेह गण और उसके जनपद की राजधानी थी। इसे 'विदेह-नगरी' भी कहा जाता था। कालिदास ने कहा है कि —

तौ विदेहनगरीनिवासिनां गां गताविव दिवः पुनर्वसू।
मन्यते स्म, पिबतां विलोचनैः पक्ष्मपातमपि वंचनां मनः[२]॥

वे दोनों राजकुमार (राम और लक्ष्मण) ऐसे सुन्दर लग रहे थे मानो दो पुनर्वसु नक्षत्र ही पृथ्वी पर उतर आए हों। विदेह नगरी के निवासी ऐसे मगन होकर अपनी आंखों से उनका रूप पी रहे थे कि पलकों का गिरना भी उन्हें अखर रहा था।

कवि ने सीता को 'वैदेही' नाम से अभिहित कर विदेह जनपद की ओर संकेत किया है—

वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम्।[३]

अंग

मगध और बंग के बीच पड़ने वाला आज का भागलपुर तथा मुंगेर के आसपास का क्षेत्र ही प्राचीन अंग है। चम्पानगरी इसकी प्राचीन राजधानी थी। इन्दुमती-स्वयंवर के प्रसंग में मगध नरेश की चर्चा के तत्काल बाद अंग-नरेश के वर्णन द्वारा कालिदास ने यह दिखाया है कि मगध और अंग दोनों पड़ोसी राज्य थे। यही कारण है कि इनके राजा स्वयंवर में साथ-साथ बैठाये गए थे।

---

१. गोरथं गिरिमासाद्य ददृशुर्मागधं पुरम्।
महा० सभा०, २०-३०
२. रघुवंश, ११-३३
३. रघुवंश, १३-२७

कवि ने —

जगाद चैनामयमंगनाथः ।[1]

और :—

अथांगराजादवतार्य चक्षुर्याहीति ।[2]

इन दो श्लोकों में अंग जनपद की चर्चा की है। महाभारत में अंग जनपद का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि दुर्योधन ने कर्ण को अंग देश का राज्य दिया था[3]। बौद्धकालीन सोलह महाजनपदों में अंग की भी गणना की जाती थी। ये महाजनपद थे—काशि, कोशल, अंग, मगध, वत्स, कुरु, चेदी, मत्स्य, शूरसेन, पांचाल, अश्मक् (अस्साक), अवन्ति, गन्धार और कम्बोज तथा वज्जी व मल्ल (गणराज्य)।[4]

अंग जनपद वस्तुतः मगध का ही भाग रहा है। दुर्योधन के कहने से मगधराज जरासंध ने कर्ण को इस क्षेत्र का राजा बना दिया था। राजनैतिक दृष्टि से अंग भले ही मगध का अंग रहा हो, किन्तु मगध के साथ अंग का पृथक् उल्लेख अथर्ववेद के पूर्वोक्त मन्त्र में भी मिलता है।

सुह्म

महाभारत में (क) पूर्वसागर तटवर्ती तथा (ख) पश्चिमोत्तर में वंक्षु नदी के किनारे पर स्थित इन दो सुह्म प्रदेशों की चर्चा है।

(क) इनमें से प्रथम वर्धमान के दक्षिण में स्थित राढ़ देश ही प्राचीन सुह्म है। प्रसिद्ध बन्दरगाह ताम्रलिप्ति सुह्म की राजधानी थी। इस प्रकार वर्धमान के दक्षिण, कपिशा नदी के उत्तर तथा हुगली गंगा की एक शाखा के पश्चिम में स्थित बंगाल का दक्षिण पश्चिमी क्षेत्र ही प्राचीन सुह्म जनपद है। वर्तमान मेदिनीपुर जिला इसी क्षेत्र में है।

कालिदास ने रघु की दिग्विजय के प्रसंग में अयोध्या से पूर्वी क्षेत्र की ओर अग्रसर होती हुई रघु की सेना को मार्ग में आने वाले जनपदों को लांघते हुए जो सीधा समुद्र तटवर्ती 'सुह्म' जनपद में पहुंचा दिया, उसका कारण यह है कि सुह्म तक का सम्पूर्ण क्षेत्र तो पहले से ही रघुवंशी राजाओं या यूं कहें

---

१. रघुवंश, ६-७

२. वही, ६-३०

३. प्रीत्या ददौ स कर्णाय मालनीं नगरीमथ।
अंगेषु नरशार्दूल स राजासीत् सपत्नजित्॥
—महा० शांति० ५-६ व ७

४. प्राचीन-भारतवर्ष, अध्याय-४

कि कवि के समसामयिक चन्द्रगुप्त व समुद्रगुप्त आदि गुप्त सम्राटों के शासन में था। अतः इस क्षेत्र में आने वाले मगध, विदेह और अंग आदि की चर्चा न कर कवि ने रघु की सेना को सीधे सुह्म (दक्षिण-पश्चिमी बंगाल) में पहुंचाते हुए कहा कि सुह्म जनपद के लोगों ने रघु के आगे वैतसी—बेंत के जैसी (नम्रता की) वृत्ति स्वीकार कर अपने आप को बचा लिया :—

आत्मा संरक्षितः सुह्मैर्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम्।[1]

इसी प्रकार महाभारत में भीम की पूर्व-दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में सुह्म के साथ-साथ उसकी राजधानी ताम्रलिप्ति का भी उल्लेख स्पष्ट रूप में हुआ है। पतंजलि ने वंग और सुह्म का एक साथ उल्लेख किया है।[2] बृहत् संहिता में सुह्म को कलिंग और वंग का मध्यवर्ती जनपद बताया गया है।

इस प्रकार महाभारत, पतंजलि[3] और बृहत्संहिता द्वारा निर्दिष्ट सुह्म की भौगोलिक स्थिति, कालिदास द्वारा प्रतिपादित सुह्म-सम्बन्धी उक्त भौगोलिक तथ्य के सर्वथा अनुरूप है।

(२) सुह्म का उल्लेख महाभारत में उत्तर की दिग्विजय के प्रसंग में चोल (वंक्षु-ओक्सस-के दक्षिण स्थित चोल या चोलिस्तान) के साथ हुआ है।[4] कालिदास चर्चित सुह्म प्रथम है।

वंग (बंगाल)

अपने व्यापक अर्थ में भारत-विभाजन से पहले का पूरा बंगाल "वंग" माना जाता था। इसका दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्र सुह्म जनपद तथा उत्तरी जनपद "पुण्ड्र" भी वंग में ही समाविष्ट थे। "अंगवंगकलिंगेषु" जैसे श्लोकों में वंग शब्द इसी व्यापक अर्थ का द्योतक है। अतः कह सकते हैं कि जहां पुण्ड्र और सुह्म का पृथक् निर्देश नहीं है, वहां आज के पूर्वी बंगाल (बंगलादेश) तथा पश्चिमी बंगाल को मिलाकर बने हुए सम्पूर्ण बंगाल का नाम वंग है, और जहां सुह्म और पुण्ड्र का पृथक् उल्लेख किया गया है, वहां उस क्षेत्र के अतिरिक्त सम्पूर्ण बंगाल की "वंग" संज्ञा अभिप्रेत है।

---

१. रघुवंश, ४-५

२. ताम्रलिप्तिं च राजानं कर्कटाधिपतिं तथा।
सुह्मानामधिपं चैव ये च सागरवासिनः॥
—महा० सभा० ३०-२४ व २५

३. अष्टाध्यायी, १-२-५१ का व्याख्यान

४. ततः सुह्मांश्च चोलांश्च किरीटी पाण्डवर्षभः।
सहितः सर्वसैन्येन प्रामथत्कुरुनन्दन॥ महा० भा० सभा० २७, २१

प्राचीन परम्पराओं में वंग के सीमित रूप की जो सीमाएँ निर्धारित की गई हैं, तदनुसार इसके दक्षिण में पूर्वसागर, पश्चिम में सुह्म तथा उत्तर में दिनाजपुर व पूर्व में कामरूप के क्षेत्र थे।

वंगदेश के प्रमुख वैशिष्ट्य की चर्चा करते हुए कालिदास ने कहा है कि वंग देश में यातायात का प्रमुख साधन नौका थी। साथ ही यह भी कि वंग-राजाओं के पास एक सशक्त नौसेना थी। कवि ने—

वंगानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान् ।[1]

कहकर यह तथ्य व्यक्त किया है कि महाराज रघु ने सुह्म से आगे बढ़ कर वंग देश के उन राजाओं को पराजित किया जिनके पास बहुत बड़ी नौसेना थी। साथ ही कवि ने एक अन्य भौगोलिक तथ्य यह प्रतिपादित किया है कि रघु की सेनाओं को गंगा के उस डेल्टे में अनेक रूपों में विभक्त गंगा की बीसियों धाराओं को पार करना पड़ा था। और उसी डेल्टाई क्षेत्र में रघु ने अपने जय स्तम्भ भी गाड़े थे—

निचखान जयस्तम्भान् गंगास्रोतोऽन्तरेषु यः ।[2]

कालिदास की इस उक्ति में यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि कवि ने "जयस्तम्भान्" इस बहुवचन के प्रयोग के द्वारा गुप्त-सम्राटों के समय में स्थान-स्थान पर स्थापित नानाविध प्रस्तर तथा लोहनिर्मित जयस्तम्भों तथा कीर्ति-स्तम्भों की ही प्रकारान्तर से या स्पष्ट रूप में चर्चा की है।

कामरूप

पूर्वोत्तर में वंग के साथ सटा हुआ कामरूप-असम हिमालय में बसा भारत का उत्तर-पूर्वी सीमान्त प्रदेश है। प्राग्ज्योतिषपुर असम की राजधानी थी। लौहित्य या ब्रह्मपुत्र कामरूप के बीचोबीच बहता है। कालिदास ने—

तमीशः कामरूपाणामत्याखण्डलविक्रमम् ।
भेजे भिन्नकटैर्नागैरन्यानुपरुरोध यैः ॥[3]

तथा—

कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम् ।
रत्नपुष्पोपहारेण च्छायामानर्च पादयोः ॥[4]

इन दो श्लोकों में कामरूप की भौगोलिक स्थिति का यथार्थ निरूपण

१. रघुवंश, ४-३६
२. वही, ४-३६
३. रघुवंश, ४-८३   ४. वही, ४-८४

किया है। अन्यत्र कवि ने कहा है कि कामरूप के राजा के विदर्भ-नरेश के साथ पारिवारिक सम्बन्ध थे। कामरूप-नरेश इन्दुमती के स्वयंवर में कन्या पक्ष की ओर से सम्मिलित हुए थे। कामरूपेश्वर अज का हाथ पकड़कर उन्हें विदर्भराज के अन्त:पुर में ले गए थे:—

ततोऽवतीर्याशु करेणुकायाः स कामरूपेश्वरदत्तहस्तः।[1]

कामरूप में कालागरु (अगर) के वृक्ष विशेष रूप से पाए जाते थे। यहां के घने जंगलों में हाथी स्वच्छंद विचरते थे। कवि ने कामरूप के प्रसंग में इन दोनों की चर्चा की है।

'कामरूप' और 'प्राग्ज्योतिष' ये दोनों पर्यायवाचक हैं। महाभारत में "प्राग्ज्योतिष" का कामरूप के पर्याय के रूप में अनेकत्र उल्लेख हुआ है।[2]

उत्कल और कलिंग (उड़ीसा)

वंग (बंगाल) के पूर्वोत्तर में 'कामरूप' है तो दक्षिण में 'उत्कल'। वास्तव में जैसे उत्तर कोशल और दक्षिण कोशल दोनों मिलकर 'कोशल' कहलाते हैं, वैसे ही उत्कल और कलिंग ये दोन[1] उड़ीसा महाजनपद के उत्तरी और दक्षिणी विभाग हैं। महाभारत में उड़ीसा का प्राचीन नाम "उड्" या "उडू" उपलब्ध है।[3] "उड़ीसा" इसी प्राचीन 'उड्' से विकसित है।

उत्कल

स्वयं अपना इतिहास बता देने वाला यह उत्कल शब्द वस्तुतः "उत्कलिंग" का घिसा हुआ रूप है। कपिशा (कसाह) और वैतरणी के बीच में स्थित उत्कल में मेदिनीपुर के दक्षिण भाग से लेकर जमशेदपुर रांची का दक्षिण पूर्वी भाग और मयूरभंज तथा बालसौर जिले सम्मिलित थे। कालिदास ने कहा है कि बंगाल से दक्षिण की ओर अग्रसर होने पर रघु की सेनाओं को कपिशा पर हाथियों का पुल बनाकर उसे पार करना पड़ा था, और यह भी कि उत्कलवासियों ने नीचे दक्षिण की ओर जाने के लिए रघु की सेनाओं का मार्गदर्शन भी किया था—

स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरदसेतुभिः।
उत्कलादर्शितपथः कलिंगाभिमुखो ययौ॥[3]

---

१. रघुवंश, ७-१७
२. महा० सभा० ३४-६
३. रघुवंश, ४-३८

कलिंग

उत्तर में वैतरणी से लेकर दक्षिण में गोदावरी या विजगापट्टम् तक फैले हुए कलिंग में आज के उड़ीसा राज्य के पुरी और गंजाम जिले तथा उसके आस-पास का क्षेत्र सम्मिलित था। इसके उत्तर में उत्कल और दक्षिण में आंध्र राज्य हैं। महाभारत वनपर्व (अध्याय १४) में कलिंग की स्थिति वैतरणी और गोदावरी के बीच बताई गयी है।[1] कूर्मपुराण और वायुपुराण में भी कलिंग का उल्लेख मिलता है।[2] महेन्द्रपर्वत-शृंखला-पूर्वीघाट में बसे हुए उड़ीसा के पूर्वी तट के साथ-साथ पूर्वसागर (बंगाल की खाड़ी) का जल लहरा रहा है और यह सम्पूर्ण प्रदेश पान-सुपारी ताड़ और नारियल जैसी वानस्पतिक सम्पदा से भरपूर है। कालिदास ने—

उत्कलदर्शितपथः कलिंगाभिमुखो ययौ।[3]

(उत्कलवासियों के द्वारा रास्ता दिखाने पर रघु की सेनाएँ कलिंग की ओर बढ़ गईं।)

तथा—

प्रतिजग्राह कालिंगस्तमस्त्रैर्गजसाधनः।[4]

इन दोनों श्लोकों में कलिंग की चर्चा की है। और यह बताया गया है कि आज की भांति उन दिनों भी कामरूप की तरह यह कलिंग (उड़ीसा) प्रदेश भी गजसंकुल था।

अथांगदाश्लिष्टभुजं भुजिष्या हेमांगदं नाम कलिंगनाथम्।[5]

में कलिंग-नरेश की चर्चा करने के बाद कवि ने कलिंग की स्थानीय भौगोलिक स्थिति स्पष्ट करते हुए यह भी बता दिया कि कलिंग जनपद महेन्द्र पर्वत के साथ-साथ फैला हुआ है। (इसकी चर्चा आगे यथाप्रसंग की जाएगी।

पूर्व क्षेत्र के नगर-आश्रम-तपोवन आदि

प्रत्येक भूभाग या क्षेत्र की "जनपद" एक बड़ी इकाई और उस जनपद के अन्तर्गत आने वाले नगर, उपवन, ग्राम, आश्रम तीर्थ तथा तपोवन आदि उसकी छोटी इकाईयां हैं। पूर्व-क्षेत्रवर्ती कालिदास-चर्चित जनपदों का

---

१. महाभारत वनपर्व, अध्याय-१४
२. कूर्मपुराण, ४७-४२ वायुपुराण-४५-१३५
३. रघुवंश, ४-४०
४. वही
५. वही, ६-५३ व ५७

विवेचन प्रस्तुत करने के बाद इस क्षेत्र के नगर आदि की चर्चा आवश्यक व उचित है। इस दृष्टि से हम देखते हैं कि कालिदास के काव्यों और नाटकों में पूर्वक्षेत्र के पुष्पपुर (पटना), विदेह-नगरी, (मिथिला) और प्राग्ज्योतिषपुर इन तीन जनपदीय राजधानियों तथा विश्वामित्राश्रम, वामनाश्रम और गौतमाश्रम इन तीन आश्रमों और तपोवनों की चर्चा हुई है।

पुष्पपुर (पटना)

प्रयाग, काशी से आगे पूर्व क्षेत्र की ओर अग्रसर होने पर सर्वप्रथम भौगोलिक दृष्टि से मगध (बिहार) जनपद सामने आता है। इसकी राजधानी आज की भांति उस समय भी पुष्पपुर (पटना) नगरी थी। कुसुमपुर और पुष्पपुर तो स्पष्टतः पर्यायवाची हैं ही, इसका तीसरा नाम "पाटलिपुत्र" भी नगर की पाटली-कुसुम-समृद्धि का ही परिचायक है। नगर के चारों ओर पुष्पों से ढके हुए वन-उपवनों से समृद्ध हाने के कारण इसे 'पुष्पपुर' या कुसुमपुर कहा जाता था। पुष्प-पादपों में से भी "पाटलि" नामक पुष्प वृक्षों की प्रधानता के कारण इसे "पाटलिपुत्र" भी कहते हैं।

यूनानियों की पोलीब्रोथ्र या पोलीब्राथ्रा तथा चीनियों का प-लिन "पाटलिपुत्र" ही है। गंगा और शोण के मध्य में स्थित पाटलिपुत्र नगर की लम्बाई कालिदास के समय या गुप्त युग में चौदह कि० मी० चौर चौड़ाई ३ कि० मी० थी। इस नगरी के चारों ओर एक परकोटा बना हुआ था। इस परकोटे में ६४ दरवाजे और ५७० बुर्ज थे। महाकवि विशाखदत्त के मुद्रा-राक्षस नाटक में कुसुमपुर को मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त की राजधानी के रूप में दिखाया गया है।[1]

पुष्पपुर गंगा और शोण के संगम पर बसा हुआ है। शोण यहां आकर गंगा में मिलता है, वहां पर बरसात के दिनों में इसकी उत्ताल तरंगें देखने योग्य होती हैं।

प्रत्यग्रहीत्पार्थिववाहिनीं तां भागीरथीं शोण इवोत्तरंगः ॥[2]

में इसी भौगोलिक तथ्य को कवि ने भली-भांति व्यक्त किया है। यहां बताया गया है कि राजकुमार अज शत्रुसेना को उसी प्रकार रोक कर खड़े हो गए, जैसे बाढ़ के पानी से भरा उच्च तरंगों वाला शोणनद गंगाजी की धारा को भी रोक लेता है।

---

१. मुद्राराक्षस-२-२ के नीचे गद्य-राक्षस…

२. रघुवंश, ७-३६

इन्दुमती-स्वयंवर में सुनन्दा के मुख से—

प्रासादवातायनसंश्रितानां नेत्रोत्सवं पुष्पपुरांगनानाम् ।[१]

कहला कर महाकवि ने बता दिया कि उसके समय में पुष्पपुर का वैभव अपूर्व था और वहां के परिवार इतने सुखी और समृद्ध थे कि लोग प्रासादों[२] (महलों तथा बड़ी-बड़ी हवेलियों) में रहा करते थे।

मिथला-विदेह नगरी-जनकपुरी

बिहार में भारत की सीमा पर स्थित जयनगर रेलवे स्टेशन से थोड़ी दूर आगे पूर्वी नेपाल में जनकपुर नामक रेलवे स्टेशन है। यही प्राचीन मिथिला-विदेह नगरी अथवा जनकपुरी है। रामायण-काल में मिथिला भले ही एक महत्त्वपूर्ण नगरी रही हो, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि आज की भांति ही कालिदास के समय में भी इस प्राचीन नगरी का कोई विशेष महत्त्व नहीं रह गया था, इसीलिए कवि धनुष-यज्ञ प्रसंग में उचित अवसर प्राप्त होने पर भी मिथिला का चलता-सा उल्लेख करता हुआ कहता है—

तं न्यमन्त्रयत्सम्भृतक्रतुर्मैथिलः स मिथिलां व्रजन्वशी।
राघवावपि निनाय बिभ्रतो तद्धनुश्रवणजं कुतूहलम् ॥[३]

शिव-धनुष की बात सुनकर कुतूहलान्वित राम और लक्ष्मण को अपने साथ लेकर विश्वामित्रजी मिथिलापुरी की ओर चल दिए।
इसी प्रसंग में कवि ने आगे कहा है—

तौ विदेहनगरीनिवासिनां गां गताविव दिवः पुनर्वसू।[४]

अर्थात् विदेहनगरी के निवासियों को राम और लक्ष्मण ऐसे सुन्दर लग रहे थे, मानो आकाश से दो पुनर्वसु नामक नक्षत्र ही धरती पर उतर आए हों।

मिथिला के उपवन

भारत के पुर-नगरों की आरम्भ से ही यह विशेषता रही है कि प्रत्येक नगर के आस-पास सुन्दर उपवन होते थे। कालिदास ने इसी भौगोलिक तथ्य

---

१. रघुवंश, ६-२४
२. प्रासादो देवभूभुजाम्।
—अमरकोष २-२-
३. रघुवंश, ११-३२
४. वही, ११-३६

की चर्चा करते हुए कहा है कि महाराज दशरथ के साथ आए हुए बराती सैनिकों ने मिथिला के चारों ओर के उपवनों को रौंद डाला—

आससाद मिथिलां स वेष्टयन्पीडितोपवनपादपां बलैः ।[1]

प्राग्ज्योतिषपुर

मगध की राजधानी कुसुमपुर और विदेह की मिथिलापुरी, पूर्वी क्षेत्र की इन दो राजधानियों के अतिरिक्त कालिदास ने इसी क्षेत्र में आने वाले कामरूप-असम की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर की चर्चा भी की है। महाभारत में कहा गया है कि अर्जुन ने प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त को युद्ध में हराया था। साथ ही यह भी कहा गया है कि भगदत्त ने महाभारत युद्ध में भाग लिया था।[2]

ब्रह्मपुत्र के दाहिने किनारे पर स्थित वर्तमान गोहाठी नगर प्राचीन-प्राग्ज्योतिषपुर के स्थान पर बसा हुआ माना जाता है। वर्तमान की भांति पहले भी यह नगरी कामरूप की राजधानी के रूप में विख्यात थी। कालिदास ने कहा है—

चकम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन्प्राग्ज्योतिषेश्वरः ।[3]

अर्थात् प्राग्ज्योतिषपुर के राजा ने जब यह सुना कि दिग्विजयी महाराज रघु अपनी सेनाओं के साथ कैलाश, मानसरोवर से आगे बढ़ लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) को पार कर उसके दांये तट पर बसे हुए प्राग्ज्योतिषपुर के पास आ पहुंचे हैं, तो वह भय से कांप उठा।

इस प्रकार कालिदास ने ब्रह्मपुत्र के दायें तट पर बसे हुए प्राग्ज्योतिष-पुर की भौगोलिक स्थिति सही-सही निर्धारित की है।

सिद्धाश्रम विश्वामित्राश्रम

विश्वामित्र ऋषि की तपःसिद्धि के प्रभाव से यहां सब जीव पारस्परिक वैर-भाव छोड़ देते थे। इसीलिए इसे वा० रामायण में "सिद्धाश्रम" कहा गया है।

विश्वामित्राश्रम की सही स्थिति का कोई प्राचीन ऐतिहासिक प्रमाण तो नहीं मिल पाया। किन्तु उस क्षेत्र में ऐसी प्रसिद्धि है कि विश्वामित्र का यह

---

१. रघुवंश, ११-५२

२. महाभारत, सभापर्व-२६-७-८

३. रघुवंश, ४-८१

आश्रम भोजपुर जिला के बक्सर के पास था। यहां दो वर्ग कि० मी० क्षेत्र के "चरित्रवन" में अनेक प्राचीन यज्ञकुण्ड प्राप्त हुए हैं। इन कुण्डों में जौ आदि हविष्यान्न भी मिले हैं। पटना-मुगलसराय रेलवे लाइन पर बक्सर स्टेशन के पास ही विश्वामित्राश्रम की स्थिति निर्धारित की गयी है। कालिदास ने विश्वामित्राश्रम का एक रेखाचित्र इस प्रकार अंकित किया है—

आससाद मुनिरात्मनस्ततः शिष्यवर्गपरिकल्पितार्हणम्।
बद्धपल्लवपुटांजलिद्रुमं दर्शनोन्मुखमृगं तपोवनम्॥[1]

अर्थात् वामनाश्रम से चलकर विश्वामित्र मुनि अपने उस आश्रम में जा पहुंचे, जहां उनके शिष्यों ने स्वागत सत्कार की सब सामग्री जुटा रखी थी। लगता था कि वृक्ष भी मानो अपने पत्तों की अंजुली बांधे खड़े हों। इस तपोवन के मृग भी बड़ी उत्सुकता से उन लोगों को देख रहे थे।

वामनाश्रम

जैसा कि ऊपर कहा गया है कालिदास ने राम-लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र मुनि को अपने आश्रम में पहुंचने से पूर्व वामनाश्रम में जाते हुए दिखाया है और कहा है कि—

वामनाश्रमपदं ततः परं पावनं श्रुतमृषेरुपेयिवान्।[2]

अर्थात् वहां से राम वामन के उस पवित्र आश्रम में पहुंचे जिसके बारे में विश्वामित्र जी ने उन्हें पहले ही सब कुछ बता दिया था।

निश्चित ही यह वामनाश्रम विश्वामित्र के आश्रम के पास रहा होगा। वाल्मीकि ने वामनाश्रम और सिद्धाश्रम को एक ही माना है[3] जो सम्भवतः दोनों आश्रमों की अतिनिकटता के कारण ही है।

गौतमाश्रम

यूं तो महर्षि गौतम के नाम से प्रसिद्ध या उनकी स्मृति में बने हुए स्थान और आश्रम भारत के कोने-कोने में विद्यमान हैं, तथापि मिथिला-समीपवर्ती गौतमाश्रम के लिये कहा जाता है कि—

---

१. रघुवंश, ११-२३
२. वही, ११-२२
३. एषः पूर्वाश्रमो राम वामनस्य महात्मनः।
सिद्धाश्रमः इति ख्यातः।
—वा० रामा०-२९-३ व ४

सीतामढ़ी से दरभंगा जाने वाली रेलवे लाइन पर कमतौला स्टेशन से पांच कि० मी० पश्चिमोत्तर में अहियारी नामक गांव के पास प्राचीन गौतमाश्रम क्षेत्र है। और यह भी कि 'अहियारी' अहल्यालय का ही घिसा हुआ रूप है। यहां अहल्या-मन्दिर भी बना हुआ है। स्टेशन से १६ कि० मी० दूर पक्के घाट वाला गौतम कुण्ड नामक सरोवर भी मिलता है। इसके तले में पांच कुण्ड बने हुए हैं। गौतम कुण्ड से पांच कि० मी० पूर्व में अहल्याकुण्ड है। यहां पास में ही अहल्या चौरा तथा राम-लक्ष्मण के मन्दिर भी बने हुए हैं। वाल्मीकि ने यह सूचना भी दी है कि यह गौतमाश्रम मिथिला से दक्षिण पश्चिम की ओर था—

ततः प्रागुत्तरां गत्वा रामः सौमित्रिणा सह।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य यज्ञवाटमुपागमत्॥[1]

कालिदास ने रघुवंश के एकादश सर्ग में विश्वामित्र के साथ जनकपुरी को जाते राम-लक्ष्मण को इसी गौतमाश्रम में रात बिताते हुए दिखाया है—

ते शिवेषु वसतिर्गताध्वभिः सायमाश्रमतरुष्वगृह्लत।
येषु दीर्घतपसः परिग्रहो वासवक्षणकलत्रतां ययौ॥[2]

अर्थात् विश्वामित्र मुनि के साथ राम और लक्ष्मण ने कुछ दूर चलने के बाद वह रात गौतम ऋषि के आश्रम में स्थित उन वृक्षों के तले बितायी जहां पर महातपस्वी महर्षि गौतम की पत्नी अहल्या क्षण भर के लिए इन्द्र की स्त्री बन गयी थी।

यद्यपि वाल्मीकीय रामायण में अहल्या के शिलामयी हो जाने की चर्चा नहीं है, तथापि कालिदास ने इसका उल्लेख करने के साथ ही यह भी कहा है कि श्रीराम के चरणरज से उसे पुनः उसका अपना रम्य रूप प्राप्त हो गया—

प्रत्यपद्यच्चिराय यत्पुनश्चारुगौतमवधूः शिलामयी।
स्वं वपुः स किल किल्बिषच्छिदां रामपादरजसामनुग्रहः॥[3]

इसके विपरीत वा० रामायाण में लिखा है कि गौतम के शाप से अहल्या ऐसी तपस्तेजोमयी हो गई कि लोग उसे देख नहीं सकते थे। श्रीराम के दर्शनों से—चरणरज से नही—वह पुनः अपने स्वरूप में आ गई—

---

१. वा० रामा० १-५०-१
२. रघुवंश, ११-३३, ३४
३. वही, ११-३४

दर्दर्श स महाभागां तपसा द्योतितप्रभाम् ।
लोकैरपि खमागम्य दुर्निरीक्ष्यां सुरासुरैः ॥
सा हि गौतमवाक्येन दुर्निरीक्ष्या बभूव ह ।
त्रयाणामपि लोकानां यावद्रामस्य दर्शनम् ॥[१]

वाल्मीकि का कथन तो यह है कि श्रीराम और लक्ष्मण ने अहल्या के चरणों की वन्दना की थी—

राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा ।[२]

महर्षि गौतम ने पुष्कर आदि कुछ अन्य क्षेत्रों में रहकर भी तपस्या की थी।

किन्तु वाल्मीकि रामायण में इसी क्षेत्र में वर्णित गौतमाश्रम[३] की ही चर्चा की गई है।

नासिक के पास त्र्यम्बकेश्वर पर्वत-शृंखला से निकलने वाली गोदावरी को "गोतमी गंगा" कहा जाता है, क्योंकि महर्षि गौतम के तप से ही यह प्रवाहित हुई है। स्वभावतः यहां भी गौतमाश्रम है।

पर्वत

भौतिक-भूगोल की दृष्टि से देखा जाये तो भू-संरचना में पर्वत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होने के कारण अपना प्रमुखतम स्थान रखते हैं। किन्तु इस भू-मण्डल में अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जहां पर्वत दूर से भी दिखाई नहीं देते, जनपद, पुर, नगर और ग्राम तो सर्वत्र मिल ही जायेंगे। लोगों का सीधा सम्बन्ध भी इन्हीं से है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ में जनपदों और नगरों आदि के विवेचन के पश्चात् पर्वतों, वनों, सरित-समुद्रों तथा वृक्षों आदि का विवेचन किया गया है।

भारत का यह पूर्वी क्षेत्र गंगा और ब्रह्मपुत्र का मैदान है। यहां कहीं कोई पर्वत दिखाई नहीं देता। हां, इस क्षेत्र के पूर्वोत्तर तथा दक्षिण-पूर्वी सीमान्तों पर क्रमशः हिमालय और महेन्द्र पर्वत-शृंखला अवश्य विद्यमान है।

१-२. वा० रामा० १-४९-१३, १७

३. मिथिलोपवने तत्र आश्रमं दृश्य राघवः ।
पुराणं निर्जनं रम्यं पपृच्छ मुनिपुंगवम् ॥
गौतमस्य नरश्रेष्ठ पूर्वमासीन्महात्मनः ।
आश्रमो दिव्यसंकाशः सुरैरपि सुपूजितः ॥
—वा० रामा० १-४८-११,१४

पूर्वी-क्षेत्र की इन दोनों पर्वत-शृङ्खलाओं के कालिदासीय विवरणों का विवेचन यहां किया जा रहा है।

हिमालय की पूर्वी शृंखला

कालिदास ने पूर्व-क्षेत्र के महेन्द्र की तो अनेकत्र चर्चा है, किन्तु हिमालय की पूर्वी शृङ्खला का स्पष्टतः नामोल्लेख न कर यही कहा है कि हिमालय के उत्तरी क्षेत्र पर अपने यश का झण्डा गाड़ कर रघु वहां से पूर्व दिशा की ओर नीचे उतर आये जहां उन्होंने लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नदी को पार किया—

तत्राक्षोभ्यं यशोराशिं निवेश्यावरुरोह सः।[1]

हस्तिनापुर से लेकर मिथिला तक के हिमालयोपत्यिका-प्रत्यन्तवर्ती नगरों, आश्रमों आदि की चर्चा वाल्मीकि, व्यास और कालिदास ने अनेकत्र की है। इनका विवरण आगे मध्य क्षेत्र के प्रसंग में दिया जाएगा, वहीं देखिये।

महेन्द्राचल

मद्रास-कलकत्ता रेल-मार्ग पर मण्डासा रोड नामक स्टेशन से ३२ कि० मी० पश्चिमोत्तर में स्थित महेन्द्रगिरि आधुनिक पूर्वी घाट के नाम से विख्यात पर्वतमाला का वाचक है। महानदी इसी पर्वत से निकलती है। महेन्द्र समुद्र-तल से पांच हजार फुट तक ऊंचा पाया जाता है।

महेन्द्राचल का उल्लेख करते हुए कालिदास ने कहा है—

स प्रतापं महेन्द्रस्य मूर्ध्नि तीक्ष्णं न्यवेशयत्।[2]

अर्थात् रघु ने महेन्द्र पर्वत पर पहुंचकर उसकी चोटियों पर वैसे ही अपना पड़ाव जमा दिया, जैसे महावत मतवाले हाथी के सिर पर अंकुश गाड़ देता है।

कवि ने महेन्द्र (पूर्वीघाट पर्वत-श्रेणी) का चलता-सा उल्लेख न कर इसकी प्रमुख भौगोलिक विशेषताएँ भी उभारने का पूरा प्रयत्न किया है और यह भी बताया है कि इस क्षेत्र की प्रमुख उपज ताम्बूल है—

ताम्बूलीनां दलैस्तत्र रचिताः पानभूमयः।
नारिकेलासवं योधाः शात्रवं च पपुर्यशः॥[3]

अर्थात् रघु के योद्धा युद्ध की समाप्ति के बाद पान की बेलों के मण्डपों में

---

१. रघुवंश, ४-८०
२. रघुवंश, ४-३९
३. वही, ४-४२

चल रही मधुशालाओं में नारिकेलासव (ताड़ी) के साथ ही अपने शत्रुओं का यश भी गटक गए।

यह कहकर पान और नारियल के प्राचुर्य के साथ ही कवि ने यह भी बता दिया कि ताड़ बहुल क्षेत्रों में ताड़ी भी युगों से बनाई जाती रही है।

महोदधि पूर्वसागर (बंगाल की खाड़ी) महेन्द्र के पूर्व में स्थित है इसी भौगोलिक तथ्य को उजागर करते हुए कवि ने अन्यत्र स्पष्ट रूप से कहा है—

असौ महेन्द्राद्रिसमानसारः
पतिर्महेन्द्रस्य महोदधेश्चः ।[1]

अर्थात् ये कलिंग-नरेश महेन्द्र पर्वत के समान ही शक्तिशाली हैं, महेन्द्र पर्वत तथा उसके साथ लगे हुए समुद्र इन दोनों पर इनका समान अधिकार है।

विष्णुपुराण में भी महेन्द्र का उल्लेख कलिंग के साथ ही हुआ है।[2] कलिंग और महेन्द्र की भौगोलिक स्थिति का अपना निजी वैशिष्टच यह है कि समुद्र उसके साथ सटा हुआ है। कालिदास ने निम्न प्रसंगों में यही भौगोलिक तथ्य व्यक्त किया है—

प्रासादवातायनदृश्यवीचिः
प्रबोधयत्यर्णव एव सुप्तम् ।[3]

अर्थात् इनके राजभवन के ठीक नीचे समुद्र हिलोरें लेता है। महलों के झरोखों से दिखाई दे रही समुद्र की लहरें बड़ी भली प्रतीत होती हैं। महलों में सोए हुए इनको समुद्र अपनी नगाड़े जैसी गम्भीर ध्वनि से जगाया करता है।

और यह भी कि समुद्र के किनारे के साथ-साथ ताड़ नारियल सुपारी आदि ताड़ जाति के घने जंगलों में रात दिन उनके पत्तों की तड़तड़ाहट सुनाई देती रहती है—

अनेन सार्धं विहराम्बुराशे-
स्तीरेषु तालीवनमर्मरेषु ।[4]

भाव यह कि सुनन्दा इन्दुमती से कहती है कि यदि तुम चाहो तो इन कलिंग के महाराज हेमांगद से विवाह करके समुद्र के उन तटों पर विहार करना, जहां

---

१. रघुवंश, ४-५४

२. कलिंगमाहिषमहेन्द्रभौमान् गुहा भोक्ष्यन्ति ।
—विष्णुपुराण, ४-२४-६५

३. ४. रघुवंश, ६-५६, ५७

सदा ताड़ जाति के वृक्षों की तड़-तड़ सुनाई दिया करती है।

द्वीपान्तर

भारत के दक्षिण पूर्व में स्थित इण्डोनेशिया आदि द्वीप समूह 'द्वीपान्तर'[1] की चर्चा भी कवि ने कलिंग के प्रसंग में की है और बताया है कि द्वीपान्तरों से लाए गये लोग तथा दूसरे गर्म मसालों से कलिंग के बंदरगाह सदा सुवासित रहते थे'—**द्वीपान्तरानीतलवंगपुष्पैः।**[2]



पूर्वी क्षेत्र के सरित्-समुद्र

गंगा, शोण, लौहित्य और कपिशा इन चार पूर्वक्षेत्र-वाहिनी नदियों तथा पूर्व-सागर (बंगाल की खाड़ी) की चर्चा कवि ने अपने काव्यों में की है।

गंगा-पूर्वक्षेत्र-वाहिनी

गंगा हिमालय से निकलकर आर्यावर्त के मैदानी भाग (मध्य क्षेत्र) से पूर्व की ओर बढ़ती हुई पूर्व सागर से मिलने के लिए जब अग्रसर होती है तो पुष्पपुर के पास पूर्वी क्षेत्र में प्रवेश करती है। यहीं शोणनद इससे आकर मिलता है। कवि ने—**भागीरथीं शोण इवोत्तरंगः।**[3]
के द्वारा पूर्वक्षेत्र में प्रवेश करती हुई इसी गंगा का वर्णन किया है। यहां से गंगा बिहार, पश्चिमी और पूर्वी बंगाल (बंगलादेश) के क्षेत्रों को सींचती हुई आगे बढ़ती है। कवि ने—

स सेनां महतीं कर्षन्पूर्वसागरगामिनीम्।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गंगामिव भगीरथः ॥[4]

(पूर्वसागर बंगाली की खाड़ी) की ओर आगे बढ़ने वाली अपनी सेना का नेतृत्व करते हुए रघु ऐसे लग रहे थे मानो स्वयं भगीरथ ही गंगा को हिमालय से पूर्वसागर की ओर बढ़ाते जा रहे हैं।)
के द्वारा पूर्वक्षेत्र-वाहिनी गंगा का वर्णन किया है।

आगे गंगा अनेक धाराओं में विभक्त होकर अपना डेल्टा बनाती हुई गंगा-सागर के समीप भारत में तथा पूर्वी बंगाल या (बंगलादेश) में समुद्र से जा मिलती है—

निचखान जयस्तम्भान् गंगास्रोतोऽन्तरेषु सः।[5]

---

१. द्वीपान्तर का विवेचन पृष्ठ १७ पर देखें।
२. रघुवंश, ६-५०
३. रघुवंश, ७-३
४. ५. वही, ४-३२, ३६

में कवि ने 'गंगा-स्रोतो' के बहुवचन से गंगा के अनेक धाराओं में विभक्त होकर समुद्र-मिलन सम्बन्धी इसी भौगोलिक तथ्य को व्यक्त किया है।

शोणनद

शोणनद की रेत में स्वर्णकण पाये जाते हैं, इसीलिए इसे 'हिरण्यवाह'[१] भी कहते हैं। लगभग आठ सौ किलोमीटर की यात्रा कर और डेढ़ सौ किलो मी० दक्षिण बिहार के मैदानों में सीधा बहने के बाद पटना के पास शोण गंगा में आ मिलता है। नर्मदा और शोण दोनों यद्यपि विंध्याचल में अमरकंटक के समीपवर्ती क्षेत्र में पास-पास (केवल ८ कि० मी० दूरी) से निकलते हैं, किन्तु शोण पूर्वाभिमुख होकर गंगा में आ मिलता है, जबकि नर्मदा कुछ दूर पूर्व की ओर बहने के बाद पश्चिमाभिमुख होकर स्वतन्त्र रूप से सूरत की खाड़ी से जा मिलती है।

कालिदास ने गंगा-शोण संगम का वर्णन करते हुए कहा है कि इन्दुमती के स्वयंवर के पश्चात् जब स्वयंवर में असफल हो गये तो रोष में भरे हुए प्रतिपक्षी राजाओं ने अज पर आक्रमण कर दिया, तब अज शत्रु सेना को रोक कर उसी प्रकार खड़े हो गये, जैसे बाढ़ के दिनों में शोणनद गंगा की धारा को रोक लेता है—

प्रत्यग्रहीत्पार्थिववाहिनीं तां भागीरथीं शोण इवोत्तरंगः।[२]

वाल्मीकि रामायण में शोणनद का उल्लेख करते हुए स्पष्ट रूप से कहा गया है कि इसका जल लाल है।[३]

वाल्मीकि ने मिथिला के समीपवर्ती इस शोण नदी का अनेकत्र उल्लेख किया है।[४] मिथिला जाते हुए राम-लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र जी ने शोण के तट पर रात्रि बताई थी—

वासं चक्रुर्मुनिगणाः शोणकूले समाहिताः।[५]
उपास्य रात्रिशेषं तु शोणकूले महर्षिभिः।
अयं शोणः शुभजलोऽगाधः पुलिनमण्डितः।[६]

---

१. शोणो हिरण्यवाहः स्यात्। अमरकोश-१-१०-३४

२. रघुवंश, ७-३६

३. रक्तजलं शोणमगाधं शीघ्रवाहिनम्। वा० रामा०, किष्किंधा० ४०-२१, ३२

४. वा० रामा १-३१-२०

५. ६- वही १-३५-१, ४

६. वा० रामा० बालकाण्ड ३७, २०

७. वही १-३५-१, ४

बाणभट्ट ने भी हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वास में शोणनद का वर्णन किया है और कहा है कि उनका जन्म स्थान शोण के तट पर है।[1]

लौहित्य-ब्रह्मपुत्र

तिब्बत के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में स्थित कूबो गांगरी नामक हिमनद से निकल कर ११०० कि० मी० तक तिब्बत के पठार में ही बहने वाली ब्रह्मपुत्र नदी को तिब्बती भाषा में ली-हांग और सांपो या त्सांग पो (पवित्र करने वाली) नदी कहते हैं। यह लगभग १५० कि० मी० तक हिमालय पर्वत शृंखला के समानान्तर एक तंग घाटी में पूर्व की ओर बहती है। हिमालय की पूर्वी शृंखला को पार करती हुई यह पश्चिम की ओर मुड़ती है। जहां यह "दि हांग" कहलाती है। सदिया के निकट ब्रह्मपुत्र समुद्रतल से ४००० फुट की ऊंचाई पर असम में प्रवेश करती है। असम की तलहटी में लगभग ७०० कि० मी० तक पश्चिमाभिमुख बहने के बाद यह गोआलन्दो के निकट गंगा से जा मिलती है। गंगा से मिली ब्रह्मपुत्र की प्रमुख धारा "पद्मा" कहलाती है। कभी-कभी असम में प्रवाहित होने वाली इसकी उत्तरी धारा को 'लौहित्य' और बंगलादेश में बहने वाली दक्षिणी धारा को "ब्रह्मपुत्र" भी कहा जाता है। "ब्रह्मसर" से निकलने के कारण इसे "ब्रह्मपुत्र" और "लौहितसर" से उद्गत होने के कारण इसे "लौहित्य" कहा जाता है। इसका जल और किनारों की रेत भो लालिमा लिए हुए है, इसलिये इसका :'लौहित्य" यह सार्थक नाम है।

कहा गया है कि जैसे भगीरथ गंगा को लाये थे, वैसे ही परशुरामजी ने कैलाश के नीचे से इसे प्रवाहित किया था। पुराणों में यह भी कहा गया है कि क्षत्रिय-वध के प्रायश्चित्त के लिए उन्होंने अपना रक्त-रंजित परशु इसमें प्रक्षालित किया था, इसीलिए इसका जल रक्ताभ हो गया। वह तीर्थ स्थान आज भी परशुराम कुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। लौहित्य के आस-पास के क्षेत्र को भी "लौहित्य" कहा जाता है।

कालिदास ने कहा है कि हिमालय के पश्चिमोत्तर क्षेत्र से आने वाली रघु की सेनाओं को कामरूप की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर तक पहुंचने के लिए "लौहित्य" नदी को पार करना पड़ा था—

---

१. अपश्यच्चाम्बरतलस्थितैव हारमिव वरुणस्य, अमृतनिर्झरमिव चन्द्राचलस्य, शशिमणिनिस्यन्दमिव विन्ध्यस्य, कर्पूरद्रुमद्रवप्रवाहमिव दण्डकारण्यस्य, लावण्यरस-प्रसवणमिव दिशाम्, स्फटिकशिलापट्टशयनमिवाम्बरश्रियाः स्वच्छशिशिरसुरस-वारिपूर्णं भगवतः पितामहस्यापत्यं हिरण्यवाहनामानं महानदम्, यं जनाः शोण इति कथयन्ति।

—हर्षचरित प्रथम उच्छवास

चकम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन्प्राग्ज्योतिषेश्वरः ।
तद्गजालानतां प्राप्तैः सह कालागुरुद्रुमैः ॥[१]

लौहित्य के बारे में कालिका पुराण में कहा गया है कि "ब्रह्मकुण्ड" और "लौहित्य" ये दोनों मानसरोवर के ही पर्याय हैं। यहीं से उत्पन्न होने के कारण इस नदी को 'ब्रह्मपुत्र' और 'लौहित्य' इन दोनों नामों से अभिहित किया गया है।

यहां लौहित्य का एक नाम "लोहित गंगा" भी दिया गया है। महाभारत में बताया गया है कि पूर्व दिशा को दिग्विजय करते हुए भीमसेन सुह्म देश से आगे लौहित्य तक पहुंचे थे।[२]

कैलाश पर्वत के नीचे से निकल कर असम या कामरूप में बहती हुई यह नदी पूर्व सागर की खाड़ी में जा गिरती है।[३]

कपिशा नदी

गंगा के डेल्टे के पार तक पूरे पूर्वी बंगाल या वर्तमान बंगला देश के क्षेत्र में स्थान-स्थान पर नौका विहार कराने के बाद कालिदास अपने पाठकों को दक्षिण की ओर ले जाते हैं। बंगाल से उड़ीसा की ओर जाने के लिए मार्ग में वर्तमान 'कोश्या' के नाम से प्रसिद्ध कपिशा को पार करना पड़ता है। प्रसिद्ध प्राचीन बंदरगाह ताम्रलिप्ति (पश्चिम बंगाल के मिदिनापुर जिले का

---

१. रघुवंश, ४-८१

२. जातसंप्रत्ययः सोऽथ तीर्थमासाद्य तं वरम् ।
वीथिं परशुना कृत्वा ब्रह्मपुत्रमवाहयत् ॥
ब्रह्मकुण्डात्सुतः सोऽथ कासारे लोहिताह्वये ।
कैलासोपत्यकायां तु न्यपतत् ब्रह्मणः सुतः ॥
तस्य नाम विधिश्चक्रे स्वयं लोहितगंगकम् ।
लोहित्यात्सरसो जातो लोहिताख्यस्ततोऽभवत् ॥
स कामरूपमखिलं पीठमप्लाव्य वारिणा ।
गोपयन्सर्वतीर्थाणि दक्षिणं याति सागरम् ॥

३. सुह्मानामधिपं चैव ये च सागरवासिनः ।
सर्वान्म्लेच्छगणांश्चैव विजिग्ये भरतर्षभः ॥
एवं बहुविधान्देशान्विजित्य पवनात्मजः ।
वसु तेभ्यः समादाय लौहित्यमगमद् बली ॥

—महा० सभा०-३०-२४ व २५

तमलुक) उस समय इसी कपिशा के मुहाने पर स्थित था। कपिशा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरदसेतुभिः।
उत्कलादर्शितपथः कलिंगाभिमुखो ययौ ॥[1]

अर्थात् बंगाल से दक्षिण की ओर बढ़ते हुए रघु ने हाथियों का पुल बनाकर अपनी सेना कपिशा नदी के पार पहुंचा दी, जहां उत्कल के लोगों ने उसे कलिंग का सीधा रास्ता पकड़ा दिया।

कवि ने यहां दो भौगोलिक तत्त्व स्पष्ट बताये हैं। एक तो यह कि बंगाल से उड़ीसा की ओर जाते समय मार्ग में कपिशा नदी आती थी और दूसरे यह कि बंगाल में जहां यातायात की एक मात्र साधन नौका थी, वहां कपिशा तक पहुंचते-पहुंचते हाथी सर्वसुलभ हो गए थे। कवि ने अन्यत्र भी कलिंग की गज सेनाओं का उल्लेख कर यही भौगोलिक तथ्य प्रतिपादित किया है।

कपिशा को महाभारत में "कौशिकी" कहा गया है।[2]

समुद्र-पूर्वसागर-बंगाल की खाड़ी

पूर्वसागर (बंगाल की खाड़ी) महोदधि (हिन्दमहासागर) और अपरान्त (अरब सागर) इन तीनों समुद्रों का जो यथास्थान वर्णन कालिदास ने किया है, वह भौगोलिक दृष्टि से सर्वथा तथ्यपरक है। जैसे कि पूर्वसागर बंगाल की खाड़ी के सम्बन्ध में कालिदास कहते हैं—

स सेनां महतीं कर्षन्पूर्वसागरगामिनीम्।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गंगामिव भगीरथः ॥[3]

अपनी बड़ी भारी सेना को पूर्व सागर की ओर ले जाते हुए राजकुमार रघु ऐसे लग रहे थे मानो शिवाजी की जटा से निकली हुई गंगा को साथ लिए हुए महाराज भगीरथ पूर्वसागर की ओर चले जा रहे हों।

यहां कवि ने स्पष्टतः यह प्रतिपादित किया है कि गंगा पूर्वसागर में मिलती है। इसके साथ ही यह कहकर कि—

---

१. रघुवंश, ४-३२
२. ततः पुण्ड्राधिपं वीरं वासुदेवं महाबलम्।
कौशिकीकच्छनिलयं राजनं च महौजसम् ॥ —महा० विराट्० ३०-३२
३. रघुवंश, ४-३२

वंगानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान्।
निचखान जयस्तम्भान् गंगास्रोतोऽन्तरेषु सः ॥[१]

कवि ने इस तथ्य से भी परिचित करा दिया है कि वंग (बंगलादेश) के दक्षिण में समुद्र से मिलते समय गंगा अनेक धाराओं में बंटकर अपना डेल्टाई प्रदेश बनाती है।

पूर्व सागर में मिलते समय गंगा अनेक धाराओं में बंट जाती है। समुद्र और गंगा सम्बंधी यही भौगोलिक तथ्य कालिदास ने—

बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे ॥[२]

के द्वारा भी व्यक्त किया है। यहां कहा गया है कि—चाहे गंगाजी की धाराएं अनेक क्यों न हो गई हों। वे सब अलग-अलग भागों से बहती हुई समुद्र में जा मिलती हैं। वैसे ही हे भगवन्! शास्त्रों में परमानन्द रूप सिद्धि प्रदान करने वाले भले ही अलग-अलग मार्ग क्यों न बताए गये हों वे सब आप तक ही पहुंचते हैं।

पुष्पदन्त-विरचित महिम्न के सुप्रसिद्ध श्लोक में भी कालिदास के इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि चाहे वेद, सांख्य, योग तथा पाशुपत-दर्शन आदि प्रस्थानों या शास्त्रों में हे प्रभो, आपकी प्राप्ति के विभिन्न उपाय क्यों न बताए गये हों, फिर भी टेढ़े हों या सरल इन सभी मार्गों पर चलने वाले साधकों के लिए आप ही एक मात्र प्राप्य हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि नाना मार्गों से आने वाली नदियों का जल अन्ततोगत्वा समुद्र में ही पहुंचता है।[३]

यह पूर्व सागर उत्तर में गंगा के डेल्टे से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक चला गया है। कालिदास ने "ततो वेलातटेनैव" आदि पूर्वोद्धृत श्लोक में पूर्वसागर सम्बंधी इसी भौगोलिक तथ्य को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि रघु पूर्व दिशा पर विजय प्राप्त कर उस समुद्र तट के साथ-साथ दक्षिण की ओर बढ़ गये जहां सुपारियों के पेड़ लदे पड़े थे।[४]

कवि ने कलिंगराज को महोदधि-पूर्वसागर का पति बताया है[५] और

---

१. रघुवंश, ४-३६
२. वही, १०-२६
३. नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।
—पुष्पदन्त-विरचित महिम्न स्तोत्र-१६
४. रघुवंश, ४-४४
५. वही, ६-५४

यह भी कहा है कि प्रातःकाल कलिंगराज को उसके महलों से दिखाई देने वाला समुद्र ही जगाता है।[१] इसके अतिरिक्त—

अनेन सार्धं विहराम्बुराशेस्तीरेषु[२]

कहकर तो कवि ने स्पष्ट रूप से उत्तर में बंगलादेश से लेकर नीचे लंका तक फैले हुए पूर्वसागर सम्बन्धी भौगोलिक तथ्य को ही व्यक्त किया है।

पूर्व-क्षेत्र के वन, वृक्ष तथा कृषि-उपज

भारतवर्ष के पूर्व क्षेत्र का पश्चिमी भाग शस्य-सम्पन्न गंगा का सपाट मैदान है और पूर्वी भाग का गंगा-डेल्टाई प्रदेश अधिकतर दलदली क्षेत्र है। इस भौगोलिक तथ्य को ध्यान में रखते हुए कालिदास ने पूर्वसागर के तटवर्ती ताड़ जाति के वृक्षों, वनों तथा कामरूप के जंगलों की विशेष रूप से चर्चा की है। तथापि कवि ने—

विपिनानि प्रकाशानि शक्तिमत्त्वाच्चकार सः।[३]

के द्वारा यह संकेत दिया है कि पूर्वकाल में इस क्षेत्र के मैदानी भाग भी घने जंगलों से ढके हुए थे, जो भूमि को कृषि-योग्य बनाने की दृष्टि से समय-समय पर काट डाले गये। हिमालय की तराइयों में विद्यमान वन इस क्षेत्र में व्याप्त उन्हीं वनों के अवशेष हैं। कवि ने विश्वामित्र के आश्रम के आस-पास वनों की उपस्थिति का संकेत देते हुए बताया है कि जब वहां ताड़का प्रकट हुई तो, उसने अपनी गति के वेग से आसपास के वृक्षों को आंधी की तरह कंपा दिया—

तीव्रवेगधुतमार्गवृक्षया[४]

कालिदास ने महाराज दशरथ के आखेट के प्रसंग में—

"श्यामीचकार वनमाकुलदृष्टिपातैः।

से

विपिने पार्श्वचरैरलक्ष्यमाणः[५]

तक अयोध्या के पूर्ववर्ती गहन वनों का विस्तृत वर्णन किया है।

इस क्षेत्र के कालिदास-निर्दिष्ट वनों को (क) पूर्वसागर तटवर्ती वन (ख) कलिंग के वन तथा (ग) कामरूप के वन, इन तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

---

१. रघुवंश, ६-५६
२. वही, ६-५७
३. वही, ४-३१
४. वही, ११-१६
५. वही, ६-५६ से ७२

पूर्वसागर के तटवर्ती वन

कालिदास ने कहा है कि रघु की सेनाएँ बंगाल की खाड़ी के उस तट तक जा पहुंची जो ताड़ जाति के घने वनों के कारण हरा-भरा दिखाई दे रहा था—

प्राप तालीवनश्याममुपकण्ठं महोदधेः।[१]

कलिंग के वन

इन्दुमती-स्वयंवर के प्रसंग में सुनन्दा ने कलिंग के ताड़ वनों का वर्णन करते हुए इन्दुमती से कहा कि यदि तुम इन कलिंगराज को वर लोगी तो इनके साथ उन समुद्र तटों पर विहार किया करोगी, जहां ताड़ के वनों की खड़खड़ाहट सदा सुनाई देती रहती है:—

अनेन सार्धं विहराम्बुराशेः
तीरेषु तालीवनमर्मरेषु।[२]

कामरूप के वन

कवि ने कामरूप के वनों के प्रमुख वैशिष्ट्य अगर के वनों की चर्चा की है। इसका विवेचन आगे वृक्षों के वर्णन में किया जा रहा है।

वृक्ष

समुद्र तटवर्ती क्षेत्रों में ताड़, नारियल और सुपारी इन तीनों ताड़ जाति के वृक्षों का प्राचुर्य दिखाई देता है, तदनुसार कवि ने भी इन वृक्षों का यथास्थान वर्णन किया है।

ताड़ वृक्ष

पूर्व क्षेत्र के ताड़ वृक्षों की चर्चा ऊपर हो चुकी है।

सुपारी

पूर्व क्षेत्र के पूग या सुपारी के वृक्षों की चर्चा करते हुए कवि ने कहा है कि रघु की सेनाएँ फलों से लदे सुपारी के वृक्षों वाले समुद्र तट के साथ-साथ चलती हुई दक्षिण की ओर बढ़ गयी।[३]

---

१. रघुवंश, ४-३४
२. वही, ६-५७
३. वही, ४-४१, ४४

नारियल के वृक्ष

नारिकेलासवं योधाः शात्रवं च पपुर्यशः ।[1]

यहां कवि ने रघु के सैनिकों को नारियल से बनी मदिरा पीते दिखाकर कलिंग क्षेत्र की नारिकेल-समृद्धि का परिचय दिया है ।

अगर के वृक्ष

भारतवर्ष में अगर जैसे सुगंधित पदार्थ के वृक्ष इसी क्षेत्र में पाये जाते हैं, इस भौगोलिक तथ्य को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करते हुए कवि ने बताया है कि कामरूप के वनों में अगर के वृक्ष मिलते हैं—

कालागुरुद्रुमैः[2]

कवि के कथन से ज्ञात होता है कि अगर दो प्रकार का होता है, एक काला और दूसरा श्वेत । कवि ने श्वेत अगरु की चर्चा भी अन्यत्र स्पष्ट रूप से कीहै ।

कृषि-उपज—ताम्बूल-पान

कालिदास ने पूर्व क्षेत्र की कृषि-उपज में वहां की उल्लेखनीय विशेषता ताम्बूल-पान की बेलों की चर्चा स्थान-स्थान पर विशेष रूप से करते हुए कहा है :—

ताम्बूलीनां दलैस्तत्र रचिताः पानभूमयः ।[3]

शालि-धान

यह भौगोलिक तथ्य है कि भारत के पूर्व क्षेत्र विशेषतः समुद्र-तटवर्ती प्रदेशों का मुख्य भोजन चांवल ही है, तदनुसार कवि ने इस क्षेत्र की कृषि-उपज में शालि और धान को प्राथमिकता से दर्शाया है ।

आपादपद्मप्रणताः कलमा इव ते रघुम् ।
फलैः संवर्धयामासुरुत्खातप्रतिरोपिताः ।।[4]

में कवि ने शालि को 'कलम' कहकर तथा यह बता कर कि धान की पौध को अपनी पहली क्यारियों से हटाकर दूसरे खेतों में रोपा जाता है, तभी वे फलित होते हैं, धान की खेती से सम्बद्ध एक महत्त्वपूर्ण तथ्य व्यक्त किया है । वृक्षों

१. रघुवंश, ४८१
२. वही, ४-४२
३. वही ६-२७
४. रघुवंश, ४-३७

की लगाई जाने वाली 'कलम' और अरबी से हिन्दी में आया हुआ लेखनी वाच 'कलम' शब्द भी मूलत: संस्कृत का धानार्थक कलम ही है।

इक्षु-ईख

कालिदास ने रघु की पूर्व दिशा की ओर विजय यात्रा की अवतारणा ही—

इक्षुच्छायानिषादिन्यः शालिगोप्यो जगुर्यशः।[1]

के द्वारा पूर्व-क्षेत्र की प्रमुख कृषि-उपज शालि के साथ ही 'इक्षु' की भी चर्चा से की है। इक्षु के पर्याय-'पुण्ड्र'-पोंडा-के कारण ही उत्तरी बंगाल का नाम 'पुण्ड्र' है। गुड़ की प्रचुरता के द्योतक 'गौड़' नाम का प्रयोग भी पश्चिमी बंगाल के लिये किया जाता था। उत्तर भारत के ब्राह्मणों को इसी 'गौड़' देश के आधार पर—'पंचगौड़' कहा जाता है।

जीव-जन्तु

पूर्व क्षेत्र के जीव-जन्तुओं में से कालिदास ने केवल हाथियों की चर्चा की है। और कहा है कि कामरूप और कलिंग में हाथी बहुतायत से पाये जाते थे। वंग देश के हाथी विशेष रूप से प्रशिक्षित होते थे, यह बताते हुए कवि ने कहा है—

विनीतनागः किल सूत्रकारैरैन्द्रं पदं भूमिगतोऽपि भुंक्ते।[2]

अर्थात् इन अंगराज के हाथियों को गज-विद्या में निपुण आचार्य प्रशिक्षित करते हैं। इसी प्रकार—

प्रतिजग्राह कालिंगस्तमस्त्रैर्गजसाधनः।[3]

कहकर कलिंग की गजसेना का वर्णन किया है। इसी प्रकार—

तमीशः कामरूपाणामत्याखण्डलविक्रमम्।
भेजे भिन्नकटैर्नागैरन्यानुपरुरोध यैः॥[4]

में कामरूप की गजसेना की चर्चा हुई है।

हाथी के अतिरिक्त सिंह व्याघ्र गेण्डा आदि हिमालय की तराई में पाये जाने वाले अन्य जीव-जन्तुओं की चर्चा कवि ने कामरूप के प्रसंग में न कर अन्य प्रसंगों में की है। इनका विवेचन आगे देखिये।

---

१. रघुवंश, ४-२०
२. वही ६-२७
३. वही ४-४०
४. वही ४-८३

पूर्वी क्षेत्र का जन-जीवन

कालिदास ने क्षेत्र विशेष के भौगोलिक वैशिष्ट्य का उद्घाटन करते हुए स्थानीय जन-जातियों तथा जन-जीवन से सम्बद्ध विशेषताओं की भी यथास्थान चर्चा की है। जैसे कि—

किरात

यह एक आदिम जन-जाति है। हिमालय की तराई, विशेषत: असम और पूर्वांचल के अन्य क्षेत्रों में किरात जाति के लोग बसे हुए हैं। अर्धनग्न, धनुषबाणधारी किरात अपनी कमर में पंख खोसे हुए शिकार की खोज में इधर-उधर घूमा करते थे। कालिदास ने हिमालय में रघु की सेनाओं के कामरूप में पहुंचने से पहले के पड़ाव का वर्णन करते हुए कहा है कि देवदार की शाखाओं में रघु के हाथियों के गले की जजीरों की रगड़ से किरातों को उन हाथियों की ऊंचाई का पता चल रहा था—

गजवर्ष्म किरातेभ्यः शशंसुर्देवदारवः।[1]

कुमारसंभव में भी कवि ने किरातों की वेशभूषा के प्रमुख वैशिष्ट्य 'मयूरपंख-धारण' का स्पष्ट उल्लेख किया है।

यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डबर्हः।[2]

कालिदास ने यहां किरातों को गंगों के उद्गम क्षेत्र में दिखाया है। इससे स्पष्ट है कि किारतों का प्रमुख केन्द्र भले ही कामरूप रहा हो, किन्तु ये लोग आज की भांति पहले भी गंगा के उदगम क्षेत्र तथा नेपाल की घाटी से लेकर असम तक विचरते रहते थे। निश्चित ही किरातों की गणना म्लेच्छों में की जाती थी, क्योंकि महाभारत में प्राग्ज्योतिष-नरेश भगदत्त को म्लेच्छों का राजा बताया गया है।[3] महाभारत में ही अन्यत्र किरातों को लौहित्य के आसपास तथा सारे पूर्वांचल में फैला हुआ बताया गया है और यह भी कि ये लोग चमड़े के वस्त्र पहनते हैं तथा फल-फूल खाते हुए शिकार के धन्धे में लगे रहते हैं। किरात लोग युधिष्ठिर के यज्ञ में अन्य वस्तुओं के साथ कालीयक (कालागरु) भी भेंट देने के लिए लाये थे। राजाओं के अन्तःपुर की दासियों में भी किरात सुन्दरियां रहती थीं। यह तथ्य भी महाभारतकार ने उद्घाटित किया है।[4]

---

१. रघुवंश. ४-७६ २. कुमारसंभव १-१५

३. प्राग्ज्योतिषाधिपः शूरो म्लेच्छानामधिपः। —महा० सभा०, ५१-१४

४. वही, ५२-८ से १०

कालिदास ने भी एक किरात-सुन्दरी दासी को महाराज कुश की चंवर धारिणी के रूप में चित्रित किया है—

किरातीमुपात्तबालव्यजनां बभाषे।[1]

ताड़ी और मधुशालाएँ

ताड़ सुपारी नारियल आदि ताड़ जाति के वृक्षों का प्राचुर्य समुद्र तट के साथ-साथ सर्वत्र दिखाई देता है। इस क्षेत्रीय भौगोलिक वैशिष्ट्य को तो कवि ने स्थान-स्थान पर चित्रित किया ही है, साथ ही यह भी दिखाया है कि इन तटवर्ती क्षेत्रों के लोग ताड़ जाति के वृक्षों के रस से शराब भी बनाया करते थे और रसिक लोग पहाड़ों पर वृक्ष-लताओं से बनी प्राकृतिक मधु-शालाओं में बैठकर मजे से मधुपान करते हुए आनन्द मनाया करते थे। कवि ने—

ताम्बूलीनां दलैस्तत्र रचिताः पानभूमयः।
नारिकेलासवं योधाः शात्रवं च पपुर्यशः ॥[2]

कहकर ऐसी ही प्रकृति की गोद में बसी और बनी मधुशाला का चित्रण किया है।

निष्कर्ष

पुष्पपुर से वंग तथा कामरूप से कलिंग तक फैले हुए भारत के पूर्वक्षेत्र से सम्बद्ध उक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कालिदास ने अपनी कृतियों में इस क्षेत्र के मगध, विदेह, अंग, सुह्म, वंग, कामरूप, उत्कल और कलिंग इन आठों प्रमुख जनपदों, पुष्पपुर, मिथिला और प्राग्ज्योतिषपुर आदि नगरियों, विश्वामित्राश्रम और गौतमाश्रम जैसे ऋषि-मुनियों के आश्रमों और तपोवनों गंगा, शोण, लौहित्य और कपिशा आदि नदियों, तथा हिमालय की पूर्वी शृङ्खला व महेन्द्र जैसे पर्वतों और इस क्षेत्र में पाए जाने वाले हाथी आदि जन्तुओं तथा वनस्पतियों के साथ ही वहां के जन-जीवन और किरात आदि आदिम जातियों की भी यथास्थान कहीं संक्षिप्त सांकेतिक रूप में और कहीं पूरे विवरण के साथ चर्चा कर विविध भौगोलिक तत्त्वों की जानकारी दी है।

कालिदास ने पूर्वक्षेत्र का जैसा चित्रण किया है, वह भौगोलिक तथ्यों के सर्वथा अनुरूप और प्रामाणिक है।

---

१. रघुवंश, १६-५७
२. वही, ४-४२

चतुर्थ अध्याय

कालिदास-चर्चित भारतवर्ष का दक्षिण क्षेत्र

उ० अक्षांश—६ से २२
पूर्व देशान्तर—७६ से ८८

लंकाद्वीपजनस्थानपाण्ड्यवैदर्भकेरलाः ।
दाक्षिणात्याः प्रदेशास्तु कालिदासेन चर्चिताः ।।

चतुर्थ अध्याय

दक्षिण क्षेत्र-दक्षिणापथ

भौगोलिक वैशिष्ट्य

दक्षिण क्षेत्र से सम्बद्ध भौगोलिक तत्त्वों के विवेचनावसर पर यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि प्राचीन भुवनकोषों में कहीं पर भी भारत को 'दक्षिण भारत' और 'उत्तर भारत' नामक दो पृथक्-पृथक् भागों में विभक्त नहीं दिखाया गया। इसके विपरीत सम्पूर्ण भारत के पाँच या सात क्षेत्रीय या प्रादैशिक तथा 'प्राच्य' और 'उदीच्य' संज्ञक सांस्कृतिक व वैभाषिक विभाग अवश्य बताए गए हैं। इन प्रदेशों में से दक्षिण क्षेत्र को 'दक्षिणापथ' या 'दाक्षिणात्य जनपद' के नाम से स्मरण किया गया है। मूलतः 'महापथ' या दक्षिण के राष्ट्रीय राजमार्ग के लिए प्रयुक्त 'दक्षिणापथ' और 'उत्तरापथ' शब्द सम्बद्ध भूभागों के लिए भी प्रयुक्त हैं। 'उत्तरापथ' सामान्यतः उत्तर का राष्ट्रीय राजमार्ग अपने इस मूल अर्थ में ही गृहीत है।

दक्षिणापथ

प्रचीन ऋषि-मुनियों को भारत के दो खण्डों में विभाजन जैसी कहीं कोई बात दिखाई नहीं दी। उनकी तत्त्वग्राहिणी दृष्टि में तो कन्याकुमारी से कैलाश तक सम्पूर्ण भारत एक और अखण्ड ही था। यही कारण है कि प्राचीन भुवनकोशों में दक्षिणी-क्षेत्र को दक्षिण भारत न कहकर 'दाक्षिणात्य जनपद' या 'दक्षिणापथ' जैसे नामों से अभिहित किया गया है। तदनुसार पंचतन्त्र में इस क्षेत्र को 'दाक्षिणात्य जनपद'[1] ही कहा गया है।

प्रयाग-इलाहाबाद-स्तम्भ पर उत्कीर्ण हरिषेण-रचित गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त की प्रशस्ति में भी 'दक्षिणापथ' शब्द का प्रयोग हुआ है।[2] इससे पूर्व १२० ईस्वी के लगभग अंकित रुद्रदामन के गिरिनार अभिलेख में सातकर्णि

---

१. अस्ति दाक्षिणात्ये जनपदे महिलारोप्यं नाम नगरम् ।पंचतन्त्र-१

२. कोसलकमहेन्द्रकोस्थ्लपुरकधनंजयप्रभृतिसर्वदक्षिणापथराजाग्रहणमोक्षानुग्रहजनित-प्रतापोन्नमितमहाभाग्यस्य —प्रयाग-प्रशस्ति ।

को 'दक्षिणापथपति' कहा गया है[1]। इससे भा पूर्व महाभारत में भी सहदेव की दक्षिण-दिग्विजय के प्रसंग में 'दक्षिणापथ' शब्द का प्रयोग किया गया है[2]।

सामान्यतया दक्षिणभारत और दक्षिणापथ में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होगा, किन्तु विचार करने पर इन दोनों शब्दों के द्वारा ध्वनित अन्तर स्वतः स्पष्ट हो जाता है। 'दक्षिणभारत' कहने से ऐसा लगता है कि भारत का यह कोई एक पृथक् भाग है। किन्तु 'दक्षिणापथ' से ऐसी कोई विच्छिन्नता या विभेद की प्रतीति नहीं होती।

क्रान्तदर्शी कवि कालिदास अपने महान् राष्ट्र भारत की एकता और अखण्डता के परम उपासक थे। इसीलिए वे 'दक्षिण भारत' तो क्या 'दक्षिणापथ' जैसे शब्दों से भी बचते रहे हैं। उन्होंने तो यहां तक सावधानी बरती है कि रघु की दिग्विजय के सम्बन्ध में भी दक्षिण दिशा का नामोल्लेख मात्र ही किया है —

दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे॥[3]

(अर्थात् जिस दक्षिण दिशा में जाने पर सूर्य का तेज भी मन्द पड़ जाता है, वहीं के पाड्य क्षत्रिय रघु के तेज को न सह पाए)।
के द्वारा कवि ने दक्षिण का गौरव ही बढ़ाया है। कवि कहता है —

'क्या कहने हैं, उस दक्षिण दिशा की तेजस्विता के कि जिस ओर मुंह करने पर तो स्वयं सूर्य का तेज भी क्षीण हो जाता है।'

गोदावरी, कृष्णा, कावेरी ताम्रपर्णी और तुंगभद्रा जैसी नदियों से सिंचित दक्षिणापथ की सीमाएँ प्राचीन युग से ही सुनिर्धारित हैं। सामान्यतया कहा जा सकता है कि दक्षिणापथ के उत्तर में विंध्याचल पर्वत और दक्षिण में महोदधि हैं। पूर्व में महेन्द्र पर्वत-शृंखला तथा उसके साथ सटे हुए

---

१. यौधेयानां प्रसह्योत्सादकेन दक्षिणापथपतेः सातकर्णेर्द्विरपि
निर्व्याजेनाविजित्यावजित्य सम्बधाविदूरतयानुत्सादनात्प्राप्तयशसा।
—रुद्रदामन का गिरिनार अभिलेख,

२. तं जित्वा स महाबाहुः प्रययौ दक्षिणापथम्।
गुहामासादयामास किष्किधां लोकविश्रुताम्॥ —महा० २-३ -१६

३. रघुवंश, ४-४६

अपरान्त महोदधि तक दक्षिण क्षेत्र व्याप्त है। यह सम्पूर्ण माल (पठारी) क्षेत्र है।

दक्षिणापथ की भौगोलिक सीमाओं का निर्धारण स्वयं कालिदास ने अपनी कृतियों में काव्यात्मक ढंग से किया है। पूर्व क्षेत्र के कलिंग की दक्षिणी सीमा जहां समाप्त होती है, वहीं से दक्षिणापथ की सीमा आरम्भ हो जाती है। उड़ीसा को छोड़ते ही यात्री दक्षिणापथ में पदार्पण करता है। कालिदास ने इसी भौगोलिक तथ्य को व्यक्त करते हुए कहा है कि कलिंग की सीमा को पार कर रघु की सेना दक्षिण दिशा की ओर बढ़ गई :—

अगस्त्याचरितामाशामनाशास्यजयो ययौ।[1]

इस दक्षिण क्षेत्र की दक्षिणी सीमा की चर्चा करते हुए कवि ने कहा है कि श्री राम ने दक्षिण भारत के दक्षिणी छोर पर विद्यमान महोदधि से घिरी लंका को पार करने के लिए वानरों द्वारा लंका के निकट पुल बनवाया :—

स सेतुं बन्धयामास प्लवंगैर्लवणाम्भसि।[2]

लंका से पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या की ओर लौटते हुए श्री राम ने सीता जी को सबसे पहले लंका और दक्षिणापथ के बीच पड़ने वाले समुद्र को दिखाते हुए उसकी कुछ विशेषताएं बताई थीं —

रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां
रामाभिधानो हरिरित्युवाच।[3]

दक्षिणापथ की पश्चिमोत्तरी सीमाएँ

कालिदास ने अपनी कृतियों के माध्यम से दक्षिणी क्षेत्र की पश्चिमोत्तरी सीमा की भी चर्चा की है और कहा है कि त्रिकूट सह्याद्रि के उत्तरी छोर पर जय-स्तम्भ स्थापित कर देने के बाद रघु की सेनाएं स्थल मार्ग से पारसीक (ईरान) पर विजय प्राप्त करने के लिए आगे चल पड़ीं।[4]

दक्षिणापथ और आर्यावर्त के बीचों-बीच पूर्व-पश्चिम की ओर पड़ी हुई विंध्य-पर्वत श्रृङ्खला दक्षिणी क्षेत्र के उत्तरी सीमा के मध्य भाग को

---

१. रघुवंश, ४-४४
२. वही, १२-७०
३. रघुवंश, १३-१
४. वही, ४-५९-६०

निर्धारित करती हैं। कालिदास ने —

विंध्यस्य संस्तम्भयिता।[१]

आदि श्लोकों में कहा है कि ये वे पाण्ड्य नरेश हैं जो अश्वमेघ यज्ञ करके स्नान करते हैं, तब इनसे महाप्रतापी अगस्त्य ऋषि कुशल पूछते हैं, जिन्होंने विंध्याचल को ऊपर उठते जाने से रोक दिया था।

कवि के उक्त कथन से दक्षिणापथ की उत्तरी-सीमा-निर्धारक तथ्य उद्घाटित होता है।

दक्षिण-क्षेत्र का सीमा-सम्बन्धी एक प्रमुख वैशिष्ट्य यह भी है कि पूर्व, पश्चिम और दक्षिण तीनों दिशाओं में यह क्षेत्र समुद्र से घिरा हुआ है। कालिदास ने —

रत्नानुविद्धार्णवमेखलाया
दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः।[२]

कहकर दक्षिण क्षेत्र की सीमा-सम्बन्धी इसी भौगोलिक तथ्य की अभिव्यक्ति की है।

स्पष्ट है कि कालिदास की कृतियों में दक्षिण क्षेत्र की भारत की जो पूर्वी, पश्चिमी, तथा दक्षिणी और उत्तरी सीमाएँ निर्धारित हुई हैं, वे भौगोलिक तथ्यों के सर्वथा अनुरूप हैं। पुराण-प्रतिपादित भुवनकोशों में दी गयी दक्षिणापथ के जनपदों की सूची से भी इस क्षेत्र की कालिदास-द्वारा निर्दिष्ट उक्त सीमाएँ सर्वथा मेल खाती हैं।

दक्षिणापथ के जनपद

मार्कण्डेय पुराण में दक्षिणापथ के निम्न जनपदों का उल्लेख किया गया है :—

पाण्ड्य, केरल, चोल, शैलूष या सेतुकर 'सेतुबंधरामेश्वर' मूषिक, कुमार-कन्याकुमारी, बनवासक-उत्तरी कनाड़ा जिले में बनवासक नामक स्थान, महाराष्ट्र, महीषक-मैसूर का महिष विषय, कलिंग कावेर—कोवरी-तटवर्ती प्रदेश, शबर-बस्तर से सबरी नदी तक का क्षेत्र जो गंजम और विशाखापत्तनम् तक फैला हुआ था। विंध्य-मालेय, मौलिक-औरंगाबाद जिला अश्मक-गोदावरी के दक्षिण तट का अहमदनगर एवं उसके साथ के जिले

---

१. रघुवंश, ६-६१
२. वही, ६-६३

जिसकी प्राचीन राजधानी प्रतिष्ठान या पेठन थी, ऋषिक-खानदेश, कुन्तल-कन्नड़ प्रदेश तथा अन्ध्र या आन्ध्रप्रदेश[1]।

उक्त सूची के आधार पर स्पष्ट है कि उत्तर में विंध्य मेखला से कन्या कुमारी तक तथा पाण्ड्य से अपरान्त या कोंकण तक का क्षेत्र 'दक्षिणापथ' के अन्तर्गत समाविष्ट था। इनमें से कालिदास-निर्दिष्ट जनपदों का विवेचन यहां किया जा रहा है।

आर्यावर्त से दक्षिणापथ में प्रवेश करते समय मार्ग में सर्वप्रथम विदर्भ आता है। अतः दक्षिणक्षेत्र के जनपदों का विवेचन विदर्भ से ही आरम्भ किया जा रहा है।

विदर्भ

विंध्याचल के दक्षिण में स्थित बरार और उसके आसपास का क्षेत्र ही प्राचीन विदर्भ है। कालिदास के कथनानुसार उत्तर में नर्मदा से दक्षिण में कृष्णा तक फैला हुआ विदर्भ जनपद उत्तरो विदर्भ और दक्षिणी विदर्भ नामक दो भागों में विभक्त था। उत्तरी विदर्भ की राजधानी अमरावती और दक्षिणी विदर्भ की प्रतिष्ठान-पेठन थी। कवि प्रमाणित करता है कि शुंग युग में विदर्भ की 'विषय' या राज्य के रूप में स्वतन्त्र सत्ता थी। मालविकाग्निमित्र में कहा गया है कि 'महारानी के भाई वोरसेन ने विदर्भ-विषय से जो पत्र लिखा है महारानी धारिणी उसे सुन रही हैं।'[2] यहां यह भी बताया गया है कि अग्निमित्र ने राज्य के लिए परस्पर झगड़ते हुए यज्ञसेन और माधवसेन नामक दोनों भाइयों के लिए यह व्यवस्था कर दी थी कि वे दोनों उत्तर और दक्षिण विदर्भ के शासक बन जायें। इसप्रकार अग्निमित्र ने उनका आपसी झगड़ा मिटा दिया। वरदा या वरधा नदी के उत्तर में उत्तर विदर्भ तथा दक्षिण में दक्षिण विदर्भ है। इसो तथ्य को व्यक्त करते हुए कवि कहता है —

श्रुत्वा विदर्भपतिमानमितं बलैश्च।[3]

रघुवंश में महाराज रघु को अपने राजकुमार अज को विदर्भ की राजधानी में भेजते हुए दिखाया गया है —

---

१. मार्कण्डेय पु० ५७, ४५-५३

२. मालविकाग्निमित्र, ५-१ से पहले गद्य

३. वही, ५-३

प्रस्थापयामास ससैन्यमेन-
मृद्धां विदर्भाधिपराजधानीम् ।[1]

अन्यत्र कहा गया है कि अज विदर्भराज द्वारा दिखाए गए मार्ग से चलते हुए अंत:पुर के चौक में पहुंचे —

वैदर्भनिर्दिष्टमथाविवेश
नारीमनांसीव चतुष्कमन्तः ।[2]

'क्रथकैशिक' भी विदर्भ का ही पर्यायवाचक है। तदनुसार कालिदास ने विदर्भ के लिए अनेकत्र इस शब्द का प्रयोग भी किया है—

प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्रः ।[3]

मालविकाग्निमित्र के पंचमांक में भी कहा गया है कि क्रथकैशिक-राज्य में दो ही बड़ी घटनाएँ हुई हैं —एक तो अग्निमित्र द्वारा अपनी सेनाएँ भेजकर विदर्भराज को पराजित करना और दूसरे श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मणी का हरण :—

विरचितपदं वीरप्रोत्या सुरोपमसूरिभि-
श्चरितमुभयोर्मध्ये कृत्य स्थितं क्रथकैशिकान् ।
तव हृतवतो दण्डानीकैर्विदर्भपतेः प्रियम्
परिघगुरुभिर्दोर्भिर्विष्णोः प्रसह्य च रुक्मणिम् ।।

यहाँ क्रथकैशिक और विदर्भ इन दोनों पर्यायों का एक साथ प्रयोग हुआ है।

महाभारत में भी विदर्भ और उसकी राजधानी कण्डिनपुर की चर्चा आई है।[5]

जनस्थान

पंचवटी नासिक से लेकर नीचे दक्षिण में किष्किंधा तक फैले हुए क्षेत्र को 'जनस्थान' के नाम से अभिहित किया गया है। रघुवंश में कहा गया है कि

---

१. रघुवंश, ५-४१
२. वही, ७-१७
३. वही, ५-६१
४. मालविकाग्निमित्र, ५-२
५. महाभारत, वनपर्व ७३-१

विमानमार्ग से आते हुए श्रीराम ने सीताजी को जनस्थान में ऋषियों द्वारा फिर से बनाये गए अपने आश्रमों और उनमें निर्मित कुटियों को दिखाया था—

अमी जनस्थानमपोढविघ्नम् ।[1]

कवि ने जनस्थान का वर्णन करने के बाद किष्किधा के निकटवर्ती पम्पा-सरोवर का वर्णन किया है[2]। इससे ज्ञात होता है कि नासिक से लेकर किष्किधा के नीचे तक का क्षेत्र 'जनस्थान' माना जाता था। कालिदास ने अन्यत्र भी निम्न दो प्रसंगों में जनस्थान का उल्लेख किया है —

प्राप्य चाशु जनस्थानम्[3]

तथा—

पुरा जनस्थानविमर्दशंकी
संधाय लंकाधिपतिः प्रतस्थे।[4]

पाण्ड्य

प्राचीन पाण्ड्य राज्य में स्थूल रूप से आज के तमिलनाडु राज्य का क्षेत्र समाविष्ट था, ऐसा कहा जा सकता है। इसके पश्चिम में मलयाचल की उपत्यका और केरल तथा दक्षिण और पूर्व में क्रमशः महोदधि और पूर्वसागर थे। इसकी राजधानी कालिदास के समय में उरगपुर वर्तमान त्रिचिनापल्ली जिले का उरयूर थी। यह राज्य अपने चन्दन-वनों और कालिमिर्च, इलायची एवं मोतियों की उपज के लिए प्रसिद्ध था। कावेरी तथा ताम्रपर्णी आदि नदियां इसी क्षेत्र में प्रवाहित होती थीं।

कालिदास ने पाण्ड्य जनपद और इसके शासक राजा की अनेकत्र चर्चा की है। 'दिशि मन्दायते तेजो'[5] आदि पूर्वोद्धृत श्लोक में कहा गया है कि जिस दिशा की ओर बढ़ने पर सूर्य का तेज भी मन्द पड़ जाता है, उसी दक्षिण दिशा के राजा लोग रघु के प्रताप को न सह पाए।

उक्त श्लोक में व्यतिरेकालंकार का सौंदर्य तो व्यंजित हो ही रहा है,

---

१. रघुवंश, ३-२२
२. वही, १३-३०
३. वही, १२-४२
४. वही, ६-६२
५. वही, ४-४९ देखिये पृ० ५२

साथ ही ऋतुचक्र-सम्बंधी भौगोलिक वैशिष्टच का प्रतिपादन भी हुआ है।

इसी प्रकार इन्दुमती स्वयंवर के प्रसंग में कलिंग देश के राजा का वर्णन करने के बाद सुनन्दा कहती है—

पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः ।[१]

ये गले में लम्बा हार पहने हुए पाण्ड्य देश के राजा हैं। इस प्रकार पाण्ड्य-नरेश तथा पाण्ड्य देश की चर्चा करने के बाद कहा गया है कि इनका राज्य पूर्वसागर से दक्षिणोदधि तक फैला हुआ है—

रत्नानुविद्धार्णवमेखलाया
दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः ।[२]

लंका द्वीप

पाण्ड्य राज्य के नीचे दक्षिण में भारत का प्रत्यन्त-राज्य लंका द्वीप है। मन्नार की खाड़ी इसे भारत की मुख्य-भूमि से पृथक् करती है। इस लंका की प्राचीन राजधानी अनुराधापुर थी। यह अनुराधापुर इस द्वीप के उत्तर-मध्यवर्ती भाग में स्थित है।

वाल्मीकि ने लंका का बड़ा ही हृदयहारी वर्णन किया है, किन्तु रसिक कालिदास का मन अपने अनुकूल स्थलों में ही रम पाता है। दूसरे स्थलों, प्रदेशों या नगरों की वे एक झलक मात्र दिखाकर आगे बढ़ जाते हैं। "कान्तिमत् स्वर्गखण्ड" उज्जयिनी के कवि का मन भला लंका में कैसे रमता। इसलिए वह—

महार्णवपरिक्षेपं लंकायाः परिखालघुम् ।[३]

के द्वारा मात्र इतना बताता है कि भगवान् राम को उस समय लंका के चारों ओर महार्णव-लम्बा-चौड़ा और गहरा समुद्र-भी किले के चारों ओर की खाई के समान छोटा प्रतीत हुआ। एक अन्य स्थान पर वानराक्रांत लंका के बारे में कवि कहता है कि—'पुल से समुद्र को पार कर चारों ओर से घेर हुए पीले-पीले वानरों के झुण्डों से लंका ऐसी दिखाई दे रही थी, मानो उसके सोने के परकोटे के बाहर एक दूसरा सुनहरा परकोटा खड़ा हो गया हो—

---

१. रघुवंश, ६-६०
२. वही, ६-६३
३. रघुवंश, १२-६६

तेनोत्तीर्य पथा लंका रोधयामास पिंगलैः ।
द्वितीयं हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव वानरैः ॥[1]

यहां कवि यही भौगोलिक तथ्य दर्शाकर कि "लंका चारों ओर से समुद्र से घिरी हुई थी और उसके चारों ओर सोने का परकोटा था" आगे बढ़ जाता है।

धुर-दक्षिण में भूमध्य रखा के निकट उत्तरी अक्षांश ६ पर बसे इस भौगोलिक स्थल लंका से वापसी के समय कवि अपने पाठकों को श्रीराम के साथ विमान-मार्ग से मोती, मूंगे और शंखों से चमचमाते, केवड़े की मधुर मोहक तीव्र सुगन्धि से सुरभित, समुद्र तट पर पहुंचा देता है—

वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते
संभावत्याननमायताक्षि ।[2]

केरल

सह्य पर्वत के नीचे समुद्रतट के साथ मलय व दर्दुर की गोद में बसे हुए केरल-प्रदेश में स्वाधीनता से पहले त्रावणकोर कोचीन रियासत थी। केरल और कर्नाटक अपनी चन्दन तथा गरम मसालों की उपज के लिए सदा विख्यात रहे हैं। कवि ने केरल के प्रसंग में कहा है कि केरल की जो स्त्रियाँ रघु के भय से अपने सब साज-शृंगार छोड़ बैठी थीं, रघु ने अपनी सेना के चलने से उड़ी हुई धूल को उनके बालों में कस्तूरी चूर्ण की तरह चिपका दिया[3]—

भयोत्सृष्टविभूषाणां तेन केरलयोषिताम् ।
अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधीकृतः ॥[4]

महाभारत में पाण्ड्य, द्रविड, उड्र और आंध्र आदि दक्षिण के अन्य जनपदों के साथ केरल की भी गणना की गयी है[5]।

कालिदास की भांति महर्षि व्यास ने भी महाभारत में मणि, मुक्ता और वैदूर्य आदि के धनी दक्षिण के केरलवासियों को महाराज युधिष्ठिर के

---

१. रघुवंश, १२-७१
२. वही, १३-१६
३. वही, ४-५५५
४. वही, ४-५४
५. पाण्डयांश्च द्रविडांश्चैव सहितांश्चोड्रकेरलैः ।
—महाभारत सभा०, ३१-७१

राजसूय यज्ञ में ये वस्तुएँ भेंट करते दिखाया है।

कवि ने मुरला और ताम्रपर्णी आदि केरल की प्रमुख नदियों की भी चर्चा की है[1]। अशोक के शिलालेख-२ में भी पाण्ड्य सातीयपुत्र और केरल राज्यों का उल्लेख है। केरल को "चेर मण्डल" भी कहा गया है।

दक्षिण क्षेत्र के नगर-उपवन, आश्रम और तपोवन

कवि ने दक्षिण क्षेत्र के नगरों आदि से सम्बद्ध अन्य भौगोलिक तथ्यों का भी यथास्थान उल्लेख किया है। इनमें से विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर, पाण्ड्य-राजधानी उरगपुर, लंका द्वीप की राजधानी लंकापुरी, किष्किंधा और गोकर्ण तीर्थ आदि उल्लेखनीय हैं।

कुण्डिनपुर

कालिदास ने "कुण्डिनपुर" को विदर्भ की राजधानी बताया है। बरार के "अमरावती" नगर से ६५ कि० मी० पूर्व में स्थित वर्तमान कुन्दन-पुर ही कालिदास का कुण्डिनपुर है।

तस्मादपावर्तत कुण्डिनेशः।[2]

में कवि ने जिस कुण्डिनपुर का नाम निर्देश पूर्वक स्मरण किया है, उसके अनेक सजीव चित्र भी यथास्थान दिखाए हैं। कवि कहता है कि इन्दुमती का स्वयंवर कुण्डिनपुर में ही सम्पन्न हुआ था। क्रथकैशिकेन्द्र विदर्भराज की पुत्री इन्दुमती के स्वयंवर में जब राजकुमार अज कुण्डिनपुर पहुचे तो नगर के आसपास उन्हें सुन्दर उपवन दिखाई दिए। आमन्त्रित राजाओं के लिए बनाए गए पट-मण्डपों से निर्मित यहाँ एक छावनी सी बन गई थी। इन्दुमती के भ्राता भोज ने नगर से बाहर आकर अज की अगवानी की और वे उन्हें बड़े प्रेम से नगर में ले गए। इसी दृश्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि जैसे समुद्र अपनी लहरों से ऊँचे उठकर चन्द्रमा का स्वागत करता है, वैसे ही नगर के बाहर अज के पड़ाव में आकर राजा भोज ने उनकी अग-वानी की—

---

१. रघुवंश, ४-५५

२. रघुवंश, ७-३३

तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे
तदागमारूढगुरुप्रहर्षः ।
प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्र
श्चन्द्रं प्रवृद्धोर्मिरवोर्मिमाली ।[१]

उरगपुर

इन्दुमती-स्वयंवर के प्रसंग में कवि ने—

अथोरगाख्यस्य पुरस्य नाथं
दौवारिकी देवसरूपमेत्य ।[२]

और—

पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः
क्लृप्तांगरागो हरिचन्देन ।
आभाति बालातपरक्तसानुः
सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः ॥[३]

में जिस उरगपुर को पाण्ड्यों की राजधानी बताया है, वह उरगपुर मद्रास के त्रिचिनापल्ली जिले में स्थित वर्तमान 'उरयूर' ही है। यह उरयूर ईसा पूर्व-प्रथम शताब्दी तक चोल और पाण्ड्य नरेशों की राजधानी रही थी। डा० मोतीचन्द का कथन है कि प्राचीन उरगपुर उरयूर सातवीं शती में नष्ट हो गया। यह त्रिचिनापल्ली का एक व्यापारिक भाग था, जो अपनी बढ़िया मलमल और पाक जलडमरू मध्य के मोतियों के लिए प्रसिद्ध था[४]। कवि के समय में उरगपुर पर चोलों के स्थान पर पाण्ड्यों का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो चुका था।

किष्किंधापुरी

मैसूर के हम्पी के आसपास बसा हुआ वर्तमान अनेगुण्डी गाँव ही प्राचीन किष्किंधा है।

कालिदास ने किष्किंधा के समीपवर्ती पम्पासरोवर का नामोल्लेख

---

१. वही, ५-६१
२. रघुवंश, ६-६६
३. वही, ६-६०
४. सार्थवाह, लेखक डा० मोतीचन्द

किया है,[1] साथ ही इस जनपद की राजधानी किष्किंधा के प्रसंग में—

स हत्वा बालिनं वीरस्तत्पदे चिरकांक्षिते।
धातोः स्थान इवादेशं सुग्रीवं संन्यवेशयत् ॥[2]

के द्वारा स्पष्ट कर दिया है कि श्रीराम ने बाली को मार कर सुग्रीव को किष्किंधापुरी का राजा बनाया था।

कवि के इस कथन से किष्किंधापुरी-सम्बन्धी भौगोलिक तथ्य स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

सेतुबंध-रामेश्वर-धनुष्कोटि

भारत और लंका द्वीप को सेतुबंध आपस में जोड़ता था। इसे श्रीराम ने वानरसेना द्वारा बनवाया था। यह 'सेतु' रामेश्वर के पास धनुष्कोटि और श्रीलंका के तलेमन्नार के मध्य निर्मित था। यहाँ सागर अत्यन्त उथला और मूंगे तथा पत्थरों की चट्टानों से भरा है। धनुष्कोटि और तलेमन्नार के मध्य लगभग ३५ कि० मी० समुद्र पर यह सेतु बनाया गया था। धनुष्कोटि से कुछ दूर अब भी मूंगों की चट्टाने समुद्र में उभरी मिलती हैं। वर्तमान में इसे 'एडम्स ब्रिज' के नाम से पुकारा जाता है। इसी स्थान पर दोनों देशों को रेल मार्ग से जोड़ने की योजना बनी थी।

'स सेतुं बन्धयामास' आदि पूर्वोद्धृत श्लोकों में[3] कालिदास ने कहा है कि श्रीराम ने वानर-सेना द्वारा रामेश्वर के स्थान पर सेतुबंध पुल बनवाया और इसी से होकर वे समुद्र पार कर गए।

लंकापुरी

कालिदास ने यद्यपि लंका का उल्लेख कुछ ही स्थलों में किया है, किन्तु इस प्रसंग में भी कवि की भौगोलिक-तत्त्व-विवेचक सूक्ष्म दृष्टि सर्वत्र लक्षित होती है। इस द्वीप का नाम 'लंका' और इसकी राजधानी का नाम 'लंकापुरी' है। विशेषता यह है कि जब राजधानी का उल्लेख करना होता है तो उसे 'लंकापुरी' कहा जाता है। कालिदास ने इसी भौगोलिक तथ्य को ध्यान में रखते हुए 'लंका' और 'लंकापुरी' इन दोनों शब्दों का अलग-अलग

---

१. रघुवंश, १३-२०
२. वही, १२-५८
३. देखिये पृष्ठ ५३, ५८

प्रसंगों में यथास्थान पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। जैसे कि हनुमानजी ने सारे 'लंकाद्वीप' को नही अपितु उसकी राजधानी 'लंकापुरी' को ही जलाया था। कवि ने—

स ददाह पुरीं लंकां क्षणसोढारिनिग्रहः ।[१]

कह कर लंकापुरी-सम्बन्धी भौगोलिक तथ्य व्यक्त किया है। इसी प्रकार रावण ने सीता जी को लंकापुरी की अशोक वाटिका में ले जाकर रखा था। लंका पुरी में ही हनुमान जी ने उन्हें पाया था। यही भौगोलिक तथ्य—

दृष्टा विचिन्वतानेन लंकायां राक्षसीवृता।
जानकी विषवल्लीभिः परीतेव महौषधिः ॥[२]

में निर्दिष्ट हुआ है।

गोकर्ण तीर्थ

गोकर्ण गोवा से ५० कि० मी० दूर कारवार और कुमता के बीच एक शैव तीर्थ है। यह महाराष्ट्र के कारवार जिले के उत्तरी कनाड़ा में गेंदिया गांव के निकट है। अधिकतर यात्री रेल से मारमूगाय तक पहुंचकर वहाँ से अगनबोट द्वारा यहाँ पहुंचते हैं। यह कुमता के बन्दरगाह से १६० कि० मी० उत्तर और समुद्रतट से डेढ़ कि० मी० दूर है। कुछ लोग हुबली स्टेशन से दक्षिण-पश्चिम में स्थित इस गोकर्ण तीर्थ तक सड़क से भी आते हैं।

यहां द्रविड़ शैली पर निर्मित महाकालेश्वर शिव का विशाल मन्दिर है। शिवरात्रि को यहां बहुत बड़ा मेला लगता है।

कालिदास ने कहा है कि नारद जी एक बार दक्षिणोदधि (लवणाकर) के तट पर स्थित गोकर्ण तीर्थ के शिव मन्दिर में भगवान् शंकर को अपने वीणा-वादन से प्रसन्न करने के लिए आए थे—

अथ रोधसि दक्षिणोदधेः
श्रितगोकर्णनिकेतमीश्वरम् ।
उपवीणयितुं ययौ रवे
रुदयावृत्तिपथेन नारदः ॥[३]

---

१. रघुवंश, १२-६३
२. वही, १२-६१
३. रघुवंश, ८-३३

इससे स्पष्ट है कि कालिदास के समय में गोआ का यह गोकर्ण तीर्थ और यहां का शिव-मन्दिर पर्याप्त विख्यात थे।

महाभारत में गोकर्ण का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि 'हे राजेन्द्र, समुद्र के बीच में टापू पर बसा हुआ गोकर्ण-तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध और विश्ववन्द्य है—

अथ गोकर्णमासाद्य त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
समुद्रमध्ये राजेन्द्र सर्वलोकनमस्कृतम् ॥'[१]

महाभारत में गोकर्ण तीर्थ को गंगवती-समुद्र संगम पर बसा हुआ बताया गया है। इसके अतिरिक्त शिवपुराण, लिंगपुराण और स्कन्दपुराण में भी इसकी चर्चा हुई है।

पंचवटी-नासिक

नासिक में गोदावरी तट पर स्थित पंचवटी के नाम से प्रसिद्ध स्थान में बड के प्राचीन पाँच वृक्ष अब भी विद्यमान हैं। इसी के आसपास कुछ मन्दिर और एक गुफा भी बनी हुई है। बताया जाता है कि राम, लक्ष्मण और सीता जी यहीं रहे थे और यहीं पर लक्ष्मण ने शूर्पणखा की नाक काटी थी। राम, लक्ष्मण और सीता के पंचवटी निवास की चर्चा करते हुए कवि कहता है—

पंचवट्टयां ततो रामः शासनात्कुम्भजन्मनः।
अनपोढस्थितिस्तस्थौ विंध्याद्रिः प्रकृताविव ॥'[२]

(जैसे अगस्त्य ऋषि की आज्ञा से विंध्याचल ऊपर उठना छोड़कर अपनी मर्यादा में ही रह गया था, वैसे ही श्रीराम भी पंचवटी में मर्यादापूर्वक रहने लगे।).

कालिदास ने आगे कहा है कि श्रीराम ने पुष्पक विमान से अयोध्या लौटते हुए पंचवटी की एक झलक दिखाते हुए सीताजी को बताया कि यह वही पंचवटी है जहां तुमने अपनी पतली सी कमर पर घडों में पानी ले लेकर आम के पौधों को सींचकर पाला पोसा था। देखो यहाँ के ये हिरण अपनी गर्दन ऊपर उठाकर हमारी ओर देख रहे हैं—

---

१. महाभारत, १५-२४ वनपर्व
२. रघुवंश, ११-३१

एषा त्वया पेशलमध्ययापि
घटाम्बुसंवर्धितबालचूता ।
आनन्दयत्युन्मुखकृष्णसारा
दृष्टा चिरात्पंचवटी मनो मे ॥[1]

वाल्मीकि रामायण में गोदावरी के तट पर स्थित पंचवटी का वर्णन अनेकत्र हुआ है[2]। भवभूति ने भी पंचवटी के प्रदेशों का हृदयहारी चित्र अंकित किया है[3]।

अगस्त्याश्रम

वाल्मीकि रामायण में अगस्त्याश्रम पंचवटी से दो योजन पर स्थित बताया गया है। इसी आधार पर नासिक से ८० कि० मी० दूर उत्तर पूर्व में स्थित मनमाड-धोंद स्टेशन के पास विद्यमान अगस्त्याश्रम को ही कवि द्वारा निर्दिष्ट अगस्त्याश्रम माना जाता है। विदर्भ में अकोला के पास भी एक अगस्त्याश्रम कुण्ड विद्यमान है। इसे भी वाल्मीकि तथा कालिदास द्वारा निर्दिष्ट अगस्त्याश्रम माना जाता है।

पंचवटी के बाद कालिदास अपने पाठकों को गार्हपत्य आहवनीय और दक्षिणाग्नि इन तीनों यज्ञाग्नियों के पावन धूम से सुरभित महर्षि अगस्त्य के लिपे-पुते साफ-सुथरे रमणीय आश्रम का दर्शन कराने ले जाता है और कहता है—

भ्रूभेदमात्रेण पदान्मघोनः प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार ।
तस्याविलाम्भः परिशुद्धिहेतोर्भौमो मुनेः स्थानपरिग्रहोऽयम् ॥
त्रेताग्निधूमाग्रमनिन्द्यकीर्तेस्तस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम् ।
घ्रात्वा हविर्गन्धि रजोविमुक्तः समश्नुते मे लघिमानमात्मा ॥[4]

अर्थात्- यह देखो उन महर्षि अगस्त्य का आश्रम है, जिन्होने अपने भ्रूभंग मात्र से नहुष को इन्द्र के पद से नीचे ढकेल दिया था। आकाश में तारे के रूप में चमकते हुए यह अगस्त्य उदित होकर वर्षा के जल को स्वच्छ कर देते हैं। इनके तीनों अग्निकुण्डों से निकलता हुआ यज्ञधूम इतना ऊँचा उठ रहा है

---

१. रघुवंश, १३-३४
२. वा० रामा० अरण्यकाण्ड, १५-२ से १५
३. उत्तररामचरित, २-२८
४. रघुवंश, १३-३६ व ३७

कि हमारे विमान तक आ पहुचा है। सीते, पावन-चरित्र और अनिन्द्यकीर्ति इस महात्मा अगस्त्य के आश्रम से उठते हुए इस यज्ञधूम की सुगंध से मेरा अन्तरबाह्य पवित्र हो गया है।

इसके साथ ही कालिदास ने शम्बूक का वध कर अयोध्या की ओर वापिस लौटते हुए राम को अगस्त्याश्रम में जाकर दर्शन के साथ ही साथ उन्हें समुद्र से प्राप्त दिव्य आभूषण भी भेंट के रूप में प्राप्त करते दिखाया है—

रघुनाथोऽप्यगस्त्येन मार्गसंदर्शितात्मना।
महौजसा संयुयुजे शरत्काल इवेन्दुना॥
कुम्भयोनिरलंकारं तस्मै दिव्यपरिग्रहम्।
ददौ दत्तं समुद्रेण पीतेनेवात्मनिष्क्रयम्॥[1]

महाकवि भवभूति ने भी प्रसिद्ध नाटक उत्तररामचरित में श्रीराम के द्वारा शम्बूक-वध का वर्णन करते हुए उन्हें जनस्थान, पंचवटी तथा गोदावरी तट में प्रवेश करते दिखाया है, इधर कालिदास भी पंचवटी के तत्काल बाद गोदावरी की चर्चा करते हैं।

कालिदास ने 'पंचवट्यां ततो राम' इत्यादि पूर्वोक्त श्लोकों में भी अगस्त्याश्रम की स्थिति नासिक और पंचवटी के उत्तर में बतायी है और कहा है कि श्रीराम महर्षि अगस्त्य के कहने से पंचवटी में जाकर वैसे ही मर्यादापूर्वक रहने लगे जैसे कि विंध्याचल अधिकाधिक ऊँचे उठते जाना छोड़कर जहां का तहाँ ठहर गया था।

पंचाप्सरस

कालिदास ने कहा है कि श्रीराम ने विमान में से गोदावरी के तट पर स्थित पंचवटी और उसके आगे उत्तर में कुछ ही दूरी पर स्थित अगस्त्याश्रम दिखाने के बाद सीताजी को पंचाप्सर नामक वह सरोवर दिखाया जहाँ शातकर्णि मुनि जलमहल में अप्पसराओं के साथ क्रीड़ा-जल-विहार किया करते थे—

एतन्मुनेर्मानिनि शातकर्णेः पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि।[2]

---

१. रघुवंश, १५-५४ व ५४
२. वही, १३-३८

वाल्मीकि रामायण में शातकर्णि के स्थान पर मन्दिकर्णि मुनि का नामोल्लेख है।

ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त पद्य के द्वारा प्रसिद्ध सातवाहन ब्राह्मण-सम्राट् गौतमी पुत्र शातकर्णि को कवि गौरव प्रदान करना चाहता है। क्योंकि उसने महाराष्ट्र, कोंकण, नर्मदा की घाटी, सुराष्ट्र, मालवा और पश्चिमी राजपूताना से शकों को खदेड़ दिया था। इसी सम्राट् शातकर्णि के लिए कहा गया है कि वह 'मुनि' होकर भी अप्सराओं के साथ विहार किया करता था।

सुतीक्ष्ण आश्रम

वाल्मीकि रामायण में सुतीक्ष्ण मुनि ने स्वयं कहा है कि अगस्त्य का आश्रम इनके आश्रम से चार योजन दक्षिण में है[1]। इस कथन से सुतीक्ष्ण आश्रम की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। यह आश्रम वीरसिंहपुर जेतवारा स्टेशन से २२ कि० मी० दक्षिण में है। सुतीक्ष्ण मुनि अगस्त्य के भाई थे, यह भी वाल्मीकि रामायण के उसी प्रसंग में कहा गया है।

कालिदास ने शातकर्णी आश्रम के उत्तर में सुतीक्ष्ण आश्रम की चर्चा की है और कहा है कि यह सुतीक्ष्ण मुनि पंचाग्नितप किया करते हैं। ये अपने आश्रम के मृगों को सहलाने वाली और कुशा उखाड़ने वाली अपनी वह दायीं भुजा उठाकर जिसमें रुद्राक्ष माला पकड़ी हुई है, मेरा (श्रीराम का) अभिनन्दन कर रहे हैं—

असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी
नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्तः।[2]

पर्वत

कालिदास ने दक्षिणापथ के जिन पर्वतों की चर्चा की है, उनमें से मलयाचल, दर्दुर, मेनाक, माल्यवान्, सह्याद्रि, त्रिकूट और ऋक्षवान् (सतपुड़ा) से सम्बद्ध भौगोलिक तथ्यों का विवेचन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

ऋक्षवान्

सप्तकुलपर्वतों में 'ऋक्ष' अन्यतम है। सह्याद्रि के उत्तर और ताप्ती

---

१. वा० रामा०, अरण्यकाण्ड, १२-३७
२. रघुवंश, १३-४१

के दायें किनारे पर वर्तमान सतपुड़ा से लगाकर महादेव पहाड़ी के पूर्वी सिलसिले तक की श्रृङ्खला का नाम ऋक्ष पर्वत[1] है। सतपुड़ा विन्ध्य के दक्षिण में स्थित वह पर्वत शृंखला है जो नर्मदा और ताप्ती के बीचोंबीच चली गई है। कुल मिलाकर विंध्य के दक्षिणी भाग को 'ऋक्ष' या 'सतपुड़ा' कहा जा सकता है। कालिदास ने ऋक्ष को जो 'विन्ध्य-पाद' कहा है वह यथार्थ ही है।

कवि ने —

निश्शेषविक्षालितधातुनापि वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु।
नीलोर्ध्वलेखाशबलेन शंसन् दन्तद्वयेनाश्मविकुण्ठितेन ॥[2]

में स्पष्ट रूप से ऋक्षवान् का नामोल्लेख करते हुए कहा है —

(अज जब कुण्डिनपुर के मार्ग में पड़ाव डाले हुए थे कि इसी बीच उन्हें नर्मदा के प्रवाह में से एक ऐसा हाथी निकलता हुआ दिखाई दिया) जिसके दाँतों पर लगी गेरू की लाली तो पानी में घुल गई थी, फिर भी टीलों पर टक्कर मारने से बनी उसके दांतों की नीली धारियां बता रही थीं कि उसने ऋक्षवान् पर्वत की चट्टानों पर टक्करें मारी हैं।

इसी प्रकार मेघदूत में कवि ने यक्ष के मुख से कहलाया है कि यहां से आगे बढ़ने पर हे मेघ, तुम्हें विंध्यपाद की चट्टानों से भरी पथरीली भूमि में अनेक धाराओं में बिखरी हुई नर्मदा दिखाई देगी—

रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम् ।[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिदास का ऋक्षवान् और 'विन्ध्यपाद' एक ही हैं।

महाभारत की एक अनुश्रुति में इसका सम्बन्ध ऋक्षों से बताया गया है।[4] वहीं यह भी बताया गया है कि नर्मदा ऋक्ष पर्वत के पास पहुंचती है[5]। विष्णुपुराण में ताप्ती, पयोष्णी और निर्विन्ध्या को ऋक्षपर्वतोद्भूत बताया

---

१. भारत की मौलिक एकता पृष्ठ-४०, ले० वासुदेवशरण अग्रवाल

२. रघुवंश, ५-४४

३. पूर्वमेघ, २०

४. ऋक्षैः संवर्धितैर्विप्र ऋक्षवत्यथ पर्वते ।
—महा भा० ४९-७६

५. पुरश्च पश्चाच्च तथा महानदी तमृक्षवन्तं गिरिमेत्य नर्मदा ।
—महा० भा० शान्ति प० ५२-३२

गया है।[1] निश्चित ही यहां परिगणित विष्णुपुराण की निर्विन्ध्या कालिदास-द्वारा मालवभूमि में निर्दिष्ट निर्विन्ध्या-वर्तमान नेवज से भिन्न है। श्रीमद्-भागवत् में विन्ध्य के साथ ऋक्ष और पारियात्र आदि नाम भी मिलते हैं।[2] रावण के विरुद्ध लड़ने वाले 'ऋक्ष' और उनका नेता या राजा जाम्बवान् भी यहीं के निवासी थे।

मलय

पर्वतार्थक 'मलै' तमिल भाषा का शब्द है। यही सामान्य पर्वत वाचक 'मलै' संस्कृत में पर्वत-विशेष का वाचक 'मलय' बन गया है। मलयाचल कर्नाटक की प्रसिद्ध पर्वत-शृङ्खला है। सप्तकुल पर्वतों में भी इसकी गणना की गई है। यह पूर्वी और पश्चिमी घाट की शृंखलाओं के बीच में विद्यमान है। कोडैकनाल की चोटियां इसी मलय-शृंखला में आती हैं।

प्राचीन परम्परा को ध्यान में रखते हुए कवि ने मलय के साथ ही 'दर्दुर' का भी वर्णन किया है। कुमारसंभव में कालिदास ने मलय के प्रसंग में चन्दन वृक्षों के बाहुल्य का उल्लेख तो किया ही है, साथ ही यह भी स्पष्ट बताया है कि मलय की उपत्यकाओं में लौंग की उपज भी होती थी :—

तस्य जातु मलयस्थलीरिते धूतचन्दनलतः प्रियाक्लमम्।
आचचाम सलवंगकेसरश्चाटुकार इव दक्षिणानिलः॥[3]

(चन्दन की कोमल शाखाओं को हिलाने वाला और लौंग के फूलों की केसर उड़ाने वाला दक्षिण का वायु पार्वतीजी की थकावट वैसे ही दूर कर रहा था जैसे कोई मीठी-मीठी बातें करके थके हुए का मन बहला रहा हो)।

मलयाचल में कालीमिर्च की चर्चा करते हुए कालिदास ने कहा है कि वहां से आगे बढ़ती हुई रघु की सेनाएं ऊपर उड़ते हुए तोतों के झुण्डों से ढके काली मिर्च के लहलहाते खेतों से लदी 'मलय' की तराइयों में जा पहुंची —

मारीचोद्भ्रान्तहारीता मलयाद्रेरुपत्यकाः।[4]

---

१. ताप्तीपयोष्णीनिर्विन्ध्याप्रमुखा ऋक्षसंभवाः।
—विष्णु० पु० २-३-११

२. विन्ध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः।
—श्रीमद् भागवत ५-१९-१६

३. मेघदूत, पूर्वमेघ २०

४. रघुवंश ४-४०

अन्यत्र कवि ने यह भी बता दिया है कि यह मलय शृङ्खला-दक्षिण महोदधि तक विस्तृत है :—

वैदेहो पश्यामलयाद् विभक्तम् ।[1]

श्रीमद्भागवत में[2] मलय की गणना सप्तकुलपर्वतों में सर्वप्रथम की गयी है।[3]

दर्दुर

यह दक्षिण में मलयगिरि के पास का एक पर्वत है। सह्याद्रि का जो नीचे तक बढ़ता हुआ छोर है, वही दर्दुर होना चाहिए। इसका वर्तमान नाम नीलगिरि है, जहां प्रसिद्ध 'उटकमण्ड' 'उदकमण्डल'[4] पहाड़ी है। इसकी सबसे ऊँची चोटी दूदवेत्ति और 'दर्दुर' के समीकरण में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। पंजाबी में मेंढक को डड्डू कहते हैं। सं, दर्दुर, द्दवेत्ती और पं०डड्डू एक ही हैं। आजकल मैसूर से बस द्वारा उटी (उदकमण्डल)होते हुए पालघाट औरकोयम्बटूर पहुंचते समय इसी सुन्दर दर्दुर पर्वत को पार करना पड़ता है। उदकमण्डल में सायं ४-५ बजे प्रायः प्रतिदिन थोड़ी-बहुत वर्षा हो जाती है, इसलिए इसका यह यौगिक नाम है। कावेरी की शाखा नदी-भवानी इसी की दक्षिणी ढलान से निकलती है। 'दक्षिणभारत के मानचित्र में दर्दुर और मलय की आपेक्षित स्थिति सर्वथा स्पष्ट दिखाई देती है। दोनों के बीच विद्यमान पालघाट के चौड़े रास्ते से पूर्व से पश्चिम तट को जाने का रेल मार्ग बना हुआ है। पालघाट के दक्षिण में मलयपर्वत की स्थिति स्पष्ट है, जिसका एक भाग आज भी'एलामलै' कहलाता है।[5](इलायची का पर्वत, यहां इलायची प्रचुर परिमाण में उत्पन्न होती है, इसीलिए इसका यह नाम है।)

इन आमने सामने उठे हुए मलय और दर्दुर की चोटियों को कालिदास ने दक्षिण दिशारूपी नायिका के दो स्तनों से उपमा दी है —

स निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ ।
स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ मलयदर्दुरौ ।।[6]

---

१. रघुवंश, १३-२
२. मलयो मंगलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूटऋषभः। श्रीमद्भागवत, ५-१६-१६
३. मलय से सबम्द्ध विशेष विवेचन आगे 'दर्दुर' के प्रसंग में देखें।
४. कुमारसंभव, ८-२५
५. मार्कण्डेय पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन, वा० श० अग्रवाल, पृ०-१४५
६. रघुवंश, ४-५१

अर्थात् तब रघु ने चन्दन से लदे मलय और दर्दुर के (बीच की) तलहटियों में अपना अगला पड़ाव डाला। (आमने सामने उठे हुए) ये दोनों पर्वत दक्षिण दिशा के चन्दन-चर्चित स्तन ही हैं।[१]

वाल्मीकि ने भी 'मलय' के साथ 'दर्दुर' की गणना की है और कहा है कि —(भरत के पहुंचने पर भारद्वाज के आश्रम में) मलय और दर्दुर के स्पर्श से सुशीतल व सुखदायक वायु बहने लगी।[२] इसी प्रकार महाभारत में भी 'मलय' और 'दर्दुर' को जोड़े में दिखाया गया है और वहां चन्दन-अगर के वृक्षों की प्रचुरता भी बताई गई है।[३] मार्कण्डेय पुराण में भी भृगुकच्छ और कोंकण के नीचे महेन्द्र और मलय पर्वत के साथ दर्दुर का भी नामोल्लेख है।[४] महाभारत में 'दर्दुर' में उत्पन्न चन्दन की भी चर्चा मिलती है।[५]

माल्यवान् पर्वत

माल्यवान् किष्किंधा-हैम्पी-मैसूर में विरूपाक्ष मन्दिर से ८ कि० मी० पर है। 'ऋष्यमूक पर्वत और 'प्रस्रवण गिरि' भी इसके पास ही हैं। कवि ने अपने पाठकों को किष्किधा के निकटवर्ती माल्यवान् पर्वत की एक चोटी की झलक निम्न श्लोक में दिखायी है —

एतद्गिरेर्माल्यवतः पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखि शृंगम्।[६]

(यह आकाश को छूने वाले शिखरों वाला माल्यवान् पर्वत सामने दिखाई दे रहा है।)

---

१. वत्सभट्टिविरचित पूर्वोद्धृत (पृष्ठ १६) कुमारगुप्तप्रशस्ति में कालिदास की इस उपमा को ध्यान में रखकर ही भारत भूमिको —
'सुमेरुकैलासबृहत्पयोधराम्'कहा गया है।

२. मलयं दर्दुरं चैव ततः स्वेदनुदोऽनिलः।
उपस्पृश्य ववौ युवत्वा सुप्रियात्मा सुखं शिवम्॥
—वा० रामा० अयोध्याकाण्ड, ९१-२४

३. मलयाद्दर्दुराच्चैव चन्दनागरुसञ्चयान्।
—महा० सभा०, ५२-३४

४. मार्कण्डेयपुराण, ५८-२१

५. दार्दुरं चन्दनं मुख्यं भारात् षण्णवति ध्रुवम्।
पाण्डवाय ददौ पाण्ड्यः शंखांस्तावत् एव च॥
—महा० भा० सभा० प० ५१

६. रघुवंश, १३-२६

वाल्मीकि ने भी श्री राम को कुछ समय तक माल्यवान् पर निवास करते बताया है।[1]

मैनाक

भूतत्त्वविशारदों का मत है कि प्रागैतिहासिक काल में लंका भारत की मुख्य भूमि से जुड़ी हुई थी। और मलय-पर्वत-शृंखला लंका तक फैली हुई थी। बाद में समुद्र ने भारत और लंका के बीच के संकीर्ण भाग को काट कर पानी में डुबा दिया। इस प्रकार पर्वत-श्रेणी का निचला भाग जलमग्न हो गया। समुद्र में डूबी पर्वत-शृंखला ही मैनाक है। इधर कालिदास ने भी कुमारसम्भव में समुद्र के साथ मैत्रीभाव रखनेवाले मैनाक को समुद्र का सहचर माना है :—

मैनाकमम्भोनिधिबद्धसंख्यम्[2]

(मेनाने समुद्र के सहचर मैनाक को उत्पन्न किया)।

धनुष्कोटि के आगे समुद्र में डूबी मैनाक-पर्वत-शृंखला की ओर संकेत करते हुए यही भौगोलिक तथ्य कालिदास ने रघुवंश में स्पष्ट रूप से इस प्रकार प्रतिपादित किया है —

पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्तगंधाः
शरण्यमेनं शतशो महीध्राः[3]।

अर्थात् —इन्द्र द्वारा पंख काट दिये जाने पर अपना उड़ने का घमण्ड चूर हो जाने के कारण कई पर्वतों ने इसी समुद्र में शरण ली थी।

वाल्मीकि रामायण में भी मैनाक की स्थिति लंका और भारत की मुख्य भूमि के बीच बतायी गयी है।[4] अध्यातम रामायण में भी कहा गया है कि समुद्र ने मणि और रत्नों से भरपूर मैनाक पर्वत से कहा कि यह

---

१. स तदा बालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च।
वसन् माल्यवतः पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत्॥
—वा० रामा० किष्किं० २८१

२. कुमारसंभव १-२०

३. रघुवंश, १३-७

४. इति कृत्वा मतिं साध्वीं समुद्रश्च्छन्नम्भसि।
हिरण्यनाभं मैनाकमुवाच गिरिसत्तमम्॥
—वा० रामा० सुन्दरकाण्ड, १९०

मारुतात्मज हनुमान जी जा रहे हैं।[1]

श्रीमद्भागवत में मैनाक का उल्लेख त्रिकूट आदि पर्वतों के साथ किया गया है।[2]

सह्याद्रि

उत्तर में नासिक के समीपस्थ विख्यात तीर्थ त्र्यम्बकेश्वर से आरम्भ होकर जो पर्वत-शृंखला नीचे दक्षिण में मालाबार तक चली गयी है, वही सह्याद्रि के नाम से प्रसिद्ध है।

शिवाजी के रायगढ़, शिवनेरी, चाकन और परनाला आदि प्रमुख दुर्ग सह्याद्रि में ही हैं। महाबलेश्वर जैसे अनैक ग्रीष्मावकाश स्थल भी इसमें विद्यमान हैं। मलय और दर्दुर पर्वतों के जोड़े को लांघकर कालिदास अपने पाठकों को उस सह्य पर्वत श्रेणी की एक झलक दिखाने के लिए आगे बढ़ता है और कहता है कि समुद्र के दूर हट जाने से यह सह्य पर्वत पृथ्वी के ऐसे नितम्ब के समान दिखाई देता है जिस पर से आंचल खिसक पड़ा हो—

असह्यविक्रमः सह्यं दूरान्मुक्तमुदन्वता।
नितम्बमिव मेदिन्याः स्रस्तांशुकमलंघयत्॥[3]

(असह्य पराक्रम वाले रघु वहां से आगे बढ़कर उस सह्य पर्वत के पार पहुंच गए जो समुद्र के दूर हट जाने के कारण धरती के ऐसे नितम्ब के जैसा दिख रहा था, जिसका आंचल खिसक गया हो)।

इस प्रकार सह्य पर्वत का परिचय देने के बाद —

तस्यानीकैर्विसर्पद्भिरपरान्तजयोद्यतैः।
रामास्त्रोत्सारितोऽप्यासीत्सह्यलग्न इवार्णवः॥[4]

(यद्यपि परशुरामजी ने अपने परशु से समुद्र को सह्य पर्वत से दूर ढकेल दिया

---

१. समुद्रोऽप्याह मैनाकं मणिकाञ्चनपर्वतम्।
गच्छत्येष महासत्वो हनूमान् मरुतात्मजः॥
—अ० रामा० सु० का०, १-२६

२, मैनाकस्त्रिकूटऋषभः कूटकः।
—श्रीमद्भागवत्, ५-१६-१६

३. रघुवंश, ४-५२

४. वही, ४-५३

था, फिर भी रघु की सेनाओं के कारण ऐसा लग रहा था जैसे समुद्र फिर से सह्य के साथ आ सटा हो)।
के द्वारा कवि पाठकों को स्पष्ट रूप से इस भौगोलिक तथ्य से परिचित करा ही देता है कि सह्य पर्वत-पंक्ति समुद्र के साथ सटी हुई नहीं है, अपितु समुद्र इस पर्वत-शृंखला से काफी दूर रहकर समानान्तर चल रहा है। साथ ही वह इस पौराणिक मान्यता से परिचित कराना भी अपना कर्तव्य समझता है कि पहले सह्य पर्वतमाला समुद्र के साथ सटा हुई थो। भगवान् परशुराम ने अपने फरसे से उसे समुद्र से इतना दूर हटा दिया है। (लगता है कि किसी युग में एक ओर से पहाड़ काट कर और दूसरी ओर से समुद्र को पाट-पाट कर यह बीच की भूमि वैसे हो लोगों ने या प्रकृति ने निकाल दी हो जैसे आज 'डेनमार्क' और 'नार्वे' के निवासी समुद्र को पीछे हटा कर अपनी मुख्य भूमि को बढ़ाते जा रहे हैं।

महाभारत, और विष्णुपुराण आदि में सह्याद्रि का उल्लेख हुआ है और इसकी गणना सप्तकुलपर्वतों में की गई हैं[1]।

कालिदास ने दक्षिण में कावेरी तक बढ़ने के पश्चात् वापस उत्तर की ओर अग्रसर होते हुए रघु को मलय को पार करने के बाद सह्य पर पहुंचाया है। इसके विपरीत वाल्मीकि रामायण में ससैन्य श्रीराम को पहले सह्य तथा उसके बाद मलय को पार करने के बाद समुद्र तक पहुचते हुए दिखाया गया है।[2]

त्रिकूट

महाराष्ट्र में ठाणें जिला के अन्तर्गत कोंकण प्रदेशस्थ सह्याद्रि का ही एक भाग 'त्रिकूट' है। कवि ने दक्षिण से उत्तर की ओर आती हुई रघु की सेनाओं को 'त्रिकूट' के शिखरों पर अपने जयस्तम्भ गाड़ते हुए दिखाया है :—

मत्तेभरदनोत्कीर्णव्यक्तविक्रमलक्षणम्।
त्रिकूटमेव तत्रोच्चैर्जयस्तम्भं चकार सः॥[3]

---

१. महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥
—विष्णुपुराण, २-३-३ महा० भीष्म० ९-११

२. रघुवंश, ४-५९

३. वही, ४-३६

अर्थात् रघु की सेनाओं के हाथियों ने त्रिकूट पर्वत शिखरों की चट्टानों पर अपने दाँत घिसा-घिसा कर जो भांति-भांति की लकीरें सी डाल दी थीं, वे ऐसी लग रही थीं मानो अपने विक्रम के लेखों से अंकित 'त्रिकूट' को ही महाराज रघु ने अपनी विजय का स्मारक 'जयस्तम्भ' बनाकर खड़ा कर दिया हो।

यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि गुप्त-युग में जयस्तम्भों की स्थापना का खूब प्रचार था। कवि ने इससे पूर्व भी :—

निचखान जयस्तम्भान् गंगास्रोतोऽन्तरेषु यः।[1]

के द्वारा स्पष्ट रूप से जयस्तम्भ गाड़ने की बात तो कही है, किन्तु वहां जय-स्तम्भ पर किसी प्रकार के लेख खुदवाने की चर्चा नहीं की। इसके विपरीत यहां पर **'व्यक्त विक्रमलक्षणम्' कहकर व्यंजित किया गया है कि जयस्तम्भों पर उनके गाड़ने वालों के पराक्रम आदि का वर्णन भी किया गया था।**

कवि ने गुप्त-सम्राटों द्वारा 'जयस्तम्भ' स्थापित करने की चर्चा रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में ही दो बार की है। पहले जयस्तम्भ का कर्म बहुवचन 'जयस्तम्भान्' बहुत का परिचायक है, जब कि दूसरी बार कवि 'जयस्तम्भम्' इस एक वचनान्त रूप का प्रयोग कर रहा है। 'निचखान' और 'चकार' ये दोनों क्रियाएँ भी उभयत्र भिन्न-भिन्न हैं। एकत्र एकवचन तथा अन्यत्र बहु-वचन, एकत्र 'चकार' और अन्यत्र 'निचखान' क्रियाओं के द्वारा कवि स्पष्ट रूप से जयस्तम्भों के दो विभिन्न रूपों की चर्चा कर रहा है। पहले प्रकार के जयस्तम्भ वे हैं, जिन्हें धरती में गाड़ कर खड़ा किया जाता है। गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय का महरोली का सुविख्यात लोह स्तम्भ और समुद्रगुप्त का इलाहाबाद स्तम्भ इसी श्रेणी के हैं। इन स्तम्भों के लिए यही कहा जाता है कि महरौली में या इलाहाबाद में 'गड़ा हुआ' चन्द्रगुप्त और समुद्रगुप्त का स्तम्भ। महरोली या इलाहाबाद में 'बनाया गया' स्तम्भ कोई नहीं कहता। इसके विपरीत चित्तौड़ के किले पर स्थापित महाराणा कुम्भा का का 'बनाया' हुआ स्तम्भ न कि 'गाड़ा हुआ'।

महाराणा कुम्भा का यह स्तम्भ 'जयस्तम्भ' और 'कीर्तिस्तम्भ' इन दोनों नामों से प्रसिद्ध है। इधर हम पाते हैं कि कालिदास ने भी जयस्तम्भ

---

१. ते सह्यं समतिक्रम्य मलयञ्च महागिरिम्।
आसेदुरानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम्॥
व० रामा० युद्धकाण्ड ४-९४

और कीर्तिस्तम्भ इन दोनों नामों का प्रयोग किया है :—

कीर्तिस्तम्भद्वयमिव गिरौ दक्षिणे चोत्तरे च।[1]

इसके आधार पर कहा जा सकता है कि कवि ने धरती में गाड़े जाने वाले छोटे और बनाये जाने वाले चित्तौड़ के कीर्तिस्तम्भ जैसे विशाल दोनों प्रकार के स्तम्भों की चर्चा की है।

उक्त श्लोक में कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि हाथियों ने त्रिकूट को ही जयस्तम्भ बनाकर उस पर अपने दांत रूपी टांकी या छेणी से रघु या समुद्रगुप्त चन्द्रगुप्त आदि गुप्तसम्राटों के विक्रम उत्कीर्ण कर दिये।

स्पष्ट है कि स्तम्भों पर शौर्य गाथाएँ उन दिनों अनेकत्र उत्कीर्ण की जाती थीं।

दक्षिण क्षेत्र के सरित्-सर-समुद्र

कालिदास को अपने देश की नदियों, तालाबों और समुद्रों से बहुत प्यार है। उन्होंने श्री राम के राज्याभिषेक के लिए केवल नदियों और समुद्रों का जल ही नहीं अपितु प्रमुख सरोवरों या तालाबों का जल भी मंगवाते हुए सरित्-समुद्र और तालाब का एकसाथ उल्लेख करते हुए कहा है कि श्रीराम के राज्याभिषेक के लिये विभीषण के सेवक राक्षस व सुग्रीव के अनुचर वानरगण सहित सरोवर और समुद्रों से जल लेकर आए थे—

सरित्समुद्रान्सरसींश्च गत्वा—
रक्षः कपीन्द्रै रुपपादितानि।[2]

नदियाँ

दक्षिण क्षेत्र की गोदावरी, वरदा, कावेरी, ताम्रपर्णी और मुरला इन पाँच नदियों की चर्चा कालिदास ने अपने काव्यों में की है।

गोदावरी

पश्चिम घाट में नासिक के पास त्र्यम्बकेश्वर के निकटस्थ पर्वत से निकल कर दक्षिणपूर्व में १२०० कि०मी० बढ़ती हुई गोदावरी पूर्वसागर से जा मिलती है। इसके उद्‌गम-स्थल पर गौतम ऋषि का आश्रम है। यह माना जाता है कि गौतम ऋषि ही इसे लाए थे, जैसे भगीरथ गंगा को। इसी आधार

---

१. रघुवंश, १५-१०३
२. रघुवंश, १४-८

पर इसे "गौतमी गंगा" भी कहा जाता है। ब्रह्मपुराण के १३३वें अध्याय एवं शिवपुराण के (१-५४) में भी इसे 'गौतमी' कहा गया है। कालिदास ने—

अत्रानुगोदं मृगयानिवृत्त-
स्तरंगवातेन विनीतखेदः।
रहस्त्वदुत्संगनिषण्णमूर्धा
स्मरामि वानरीगृहेषु सुप्तः।[1]

—में गोदावरी को "गोदा" कहा है। कालिदास द्वारा प्रयुक्त गोदावरी का यह छोटा नाम 'गोदा' शब्दभेदप्रकाश कोश में गृहीत है। यहाँ गोदावरी का वर्णन करते हुए श्रीराम कहते हैं कि 'मुझे वे दिन याद आ रहे हैं, जब शिकार से लौटने पर थका मादा मैं बेंत की झोंपड़ी में तुम्हारी गोद में सिर रखकर लेट जाया करता था और गोदावरी की ठंडी पवन मेरी थकावट मिटा दिया करती थी।'

गोदावरी के तट पर निःशंक विचरते हुए सारस जैसे पक्षियों का एक शब्द-चित्र भी कवि ने बड़े ही सजीव रूप में अंकित किया है —

अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनाम्
श्रुत्वा स्वनं कांचनकिंकिणीनाम्।
प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यो
गोदावरीसारसपंक्तयस्त्वाम्॥[2]

(यह देखो विमान के नीचे लटकती घण्टियों की रुन झुन रुन झुन को सुनकर गोदावरी के सारसों की कतारें ऐसे ऊपर उड़ी चली आ रही हैं, मानो वे तुम्हारी अगवानी करने आ रही हों।)

विष्णुपुराण में कृष्णा और भीमा के साथ गोदावरी को भी सह्य पर्वत-शृङ्खला (पश्चिमघाट) से उद्भूत बताया गया है।[3] महाकवि भवभूति को गोदावरी और उसके आसपास का क्षेत्र अत्यन्त प्रिय है। कहीं-कहीं गोदावरी को 'गिरिनिर्झरिणी' कह कर उसके प्रपातों की चर्चा भी भवभूति

---

१. रघुवंश, १३-३५
२. वही, ११-३३
३. गोदावरीभीमरथीकृष्णावेण्यादिकास्तथा।
सह्यपादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापभयापहाः॥ वि० पु०, ३-३-१२

ने की है[1]।

महाभारत में गौतमी, वृद्धगौतमी आदि गोदावरी की सात प्रमुख धाराओं का उल्लेख है।[2]

वहीं बताया गया है कि तीर्थयात्रा के प्रसंग में पाण्डवों ने गोदावरी को भी देखा था।[3]

अध्यात्मरामायण में गोदावरी को 'गौतमी' कहा गया है।[4]

वरदा

उत्तर से दक्षिण की ओर अग्रसर होने पर गोदावरी के बाद मार्ग में आने वाली दक्षिण की जिस नदी की चर्चा कालिदास ने की है, वह है वरदा।

कालिदास की वरदा आधुनिक वर्धा नदी ही है। यह गोदावरी की एक सहायक नदी है, जो वर्धा नगर के समीप बहती है। इस वर्धा नदी के कारण नगर भी वर्धा कहलाता है।

कालिदास ने वरदा नदी को उत्तरी और दक्षिणी विदर्भ के बीच बहने वाली विभाजक रेखा बताते हुए कहा है कि अग्निमित्र ने राज्य के दावेदार यज्ञसेन और माधवसेन नामक दो भाइयों को क्रमशः वरदा के दायें और बायें तटवर्ती क्षेत्रों का स्वामी बना दिया था —

तौ पृथग्वरदाकूले शिष्टानुत्तरदक्षिणौ।
नक्तंदिवं विभज्योभौ शीतोष्णकिरणाविव॥[5]

इसी प्रकार अन्यत्र कहा गया है कि अग्निमित्र ने वरदा नदी के तट पर उगे वृक्षों के साथ ही अपने शत्रु विदर्भ-नरेश यज्ञसेन को भी झुका दिया —

वरद वरदारोधोवृक्षैः सहावनतो रिपुः।[6]

---

१. गोदावर्याः पयसि विततानोकहः श्यामलः श्रीः॥
—उत्तररामचरित २-२५

एतानि तानि बहुकन्दरनिर्झराणि,
गोदावरीपरिसराणि गिरेस्तटानि॥ वही ३-८

२. सप्तगोदवरीं स्नात्वा नियतो नियताशनः। महाभा०

३. द्विजातिमुख्येषु धनं विसृज्य गोदावरीसागरगामगच्छन्।
महा भा० प० १८८-३१

४. अस्ति पञ्चवटीनाम्ना आश्रमो गौतमीतटे।
—अध्यात्म रामा० अरण्य ४८

५. मालविकाग्निमित्र, ५-१३

६. वही, ५-१

महाभारत में भी वरदा का उल्लेख हुआ है।[1] वाल्मीकि रामायण के कथन से ज्ञात होता है कि इसमें बड़े-बड़े जलीय सर्प रहते थे[2]।

आधुनिक 'बरार' मुगलकाल में दिया गया नाम है। यह 'वरदारण' का सुधरा हुआ या घिसा हुआ रूप है।

कावेरी

कावेरी नदी कुर्ग पश्चिमी घाट—की शृंखला ब्रह्मगिरि से निकलकर दक्षिणाभिमुख पूर्व की ओर बहती हुई ८०० किलो मीटर का मार्ग पार कर पाण्डिचेरी के समीप पूर्वसागर में जा मिलती है। भवानी, नागिन तथा अमरावती इसकी सहायक नदियां हैं। कर्नाटक और तमिलानाडु राज्य को उर्वर और समृद्ध बनानेवाली कावेरी का दक्षिणापथ में विशिष्ट स्थान है। श्रीरंगपट्टम् और शिव-समुद्रम् को घेरकर चलने वाली कावेरी के पप्रातों से पन-बिजली पैदा की जाती है। तन्जौर और त्रिचिनापल्ली का क्षेत्र कावेरी के कारण अत्यन्त उर्वर और समृद्ध है। ऐसी वैभवशालिनी नदी को समुद्र की नायिका के रूप में कवि ने ठीक ही प्रस्तुत किया है।

> ससैन्यपरिभोगेण गजदानसुगन्धिना।
> कावेरीं सरितां पत्युः शंकनीयामिवाकरोत्॥[3]

कहकर कावेरी की हाथी डूब गहराई के साथ ही साथ यह भौगोलिक तथ्य भी कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि कावेरी एक ऐसी नदी है, जिसका कवि-निर्दिष्ट स्थल से थोड़ी ही दूरी पर समुद्र के साथ समागम होने वाला है।

स्नान के समय प्रतिदिन प्रातः पठनीय प्रसिद्ध श्लोक में दक्षिण की प्रमुख कावेरी से लेकर पश्चिमोत्तर की 'सिंधु' नदी[4] तक का एक साथ स्मरण

---

१. वरदासंगमे स्नात्वा गोसहस्रफलं लभेत्।
—महा० वन० ८५-३५

२. वरदां च महभागां महोरगनिवेशिताम्।
वा० रामा० किष्किधा, ४१-९

३. रघुवंश, ४-४५

४. गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिंधो कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

किया जाता है। महाभारत में भी कावेरी का दक्षिण की नदियों में परिगणन हुआ है।[१] वाल्मीकि रामायण के किष्किंधाकाण्ड में भी कावेरी का उल्लेख हुआ है[२]।

ताम्रपर्णी

कालिदास ने ताम्रपर्णी और मुरला केरल की इन दोनों नदियों की यथास्थान चर्चा की है।

ताम्रपर्णी नदी पालनकोटा के पास से बहती हुई सदा से मोतियों के लिए प्रसिद्ध मन्नार की खाड़ी में जा गिरती है। कालिदास ने भी पाण्ड्य-राजाओं के द्वारा रघु को ताम्रपर्णी के संगम पर महोदधि (हिन्दमहासागर) से निकाले हुए बहुमूल्य मोती भेंट करते हुए दिखाया है —

ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव संचितम्॥[३]

(दक्षिण के पाण्ड्य राजाओंने ताम्रपर्णी और समुद्रसंगम से जितने मोती बटोरे थे, अपने संचित यश के समान शुभ्र वे सब मोती उन्होंने रघु को भेंट कर दिए)।

मुरला

मुरला उत्तरी केरल की कोई छोटी नदी प्रतीत होती है। इसे भीमा की सहायक भी कहा गया है। कालिदास ने केरल के प्रसंग में मुरला का वर्णन किया है—

मुरलामारुतोद्धूतमगमत्कैतकं रजः।
तद्योधवारबाणानामयत्नपटवासताम्॥[४]

अर्थात् मुरला नदी की ओर से आने वाली वायु द्वारा उड़ाई गई केवड़े की

---

१. गोदावरी कृष्णा कावेरी च सरिद्वारा।
किंपुना च विशल्या च तथा वैतरणी नदी॥
—महा० सभा० ९-२०

२. वा० रामा० किष्किधाकाण्ड, ४-२१-२५

३. रघुवंश ४-५०

४. रघुवंश, ४-५५

पुष्परज रघु के सैनिकों के वस्त्रों और कवचों पर गिर-गिर कर उन्हें अनायास ही सुगन्धित बना रही थी।

इससे ज्ञात होता है कि सह्य पर्वत-शृंखला से निकलने वाली केरल की अन्य नदियों को भांति मुरला भी अपरान्त महोदधि (अरब सागर) में जा गिरती होगी।

पम्पासरोवर

वर्तमान में पम्पासर के नाम से प्रसिद्ध सवा दो सौ फुट लम्बा और दो सौ फुट चौड़ा एक छोटा सा कुण्ड मात्र है। यह प्राचीन पम्पासरोवर का एक लघु संस्करण प्रतोत होता है। यह तुंगभद्रा नदी को पार कर अनेगुण्डी जाने वाल मार्ग पर पहाड़ के नोचे स्थित है। हास्पेट नामक कस्बे के पास 'मानसरोवर' नामक एक दूसरा तालाब भो पम्पासरोवर के पास ही है।

उपान्तवानीरवनोपगूढा-
न्यालक्ष्यपारिप्लवसारसानि ।
दूरावतीर्णं पिबतीव खेदा-
दमूनी पम्पासलिलानि दृष्टिः ॥[१]

में कवि ने बेंत के घने जंगल में छिपे पम्पा सरोवर का हृदयहारो चित्र अंकित किया है।

पल्वल-पोखर

कवि ने समुद्रों, नदियों अथवा प्रसिद्ध सरोवरो की ओर ही ध्यान न देकर छोटे-मोटे ताल-तलैयों या पोखरों तक नजर दौड़ाई है। पहली वर्षा के फलस्वरूप उनकी मिट्टो से उड़ने वालो सौंधी गंध से सम्बद्ध भौगोलिक तथ्य की चर्चा भी निम्न श्लोक में की है—

गन्धश्च धाराहतपल्वलानाम् ।

समुद्र

उत्तर में नगाधिराज हिमालय तथा दक्षिण में समुद्र ये दोनों भारत-भूमि की उत्तरी और दक्षिणी सीमा के निर्धारक तो हैं ही साथ ही भारत की प्राकृतिक रचना, जलवायु और यहां के जन-जीवन पर भी इनका गहरा

१. रघुवंश, १३-२७

प्रभाव है। यदि भारत के तीन ओर समुद्र न होता तो उससे उठकर आने वाली मानसून पवनों के अभाव में यह उपमहाद्वीप सूखा ही रह जाता। समुद्र व उससे उठने वाली मेघराशि के रहते हुए भी यदि हिमालय उसे न रोकता तो वह भारतभूमि में न बरसकर सीक्यांग की ओर आगे बढ़ जाती।

क्रान्तदर्शी कवि कालिदास समुद्र और हिलाय इन दोनों के इस महत्त्व से भली-भांति परिचित थे। यही कारण है कि जहां अपनी कृतियों में हिमालय के नानाविध वैशिष्ट्य और उपकारों का उन्होंने पूरे मनोयोग के साथ वर्णन किया है, वहां समुद्र के चित्र भी उनकी लेखनी से उतनी ही सजीवता और सफलता के साथ अंकित हुए हैं। पूर्व में गंगा के डेल्टे के आसपास से आरम्भ होकर भारतभूमि के तट के साथ-साथ फैला हुआ पूर्व-समुद्र दक्षिण में कन्या-कुमारी तक चला गया है। कन्याकुमारी के नीचे विशाल महोदधि-हिंद महासागर फैला हुआ है। कन्याकुमारी से सौराष्ट्र तक पश्चिमी तट के साथ-साथ अपरान्त-अरब सागर-विस्तीर्ण है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पूर्व, पश्चिम और दक्षिण तीनों ओर से दक्षिण भारत समुद्र से घिरा हुआ है, किन्तु समुद्र भले एक ही हो, तीनों दिशाओं में केवल उसके नाम ही नहीं अपितु आकार प्रकार और उसके जल के रंग-रूप भी सर्वथा एक-दूसरे से भिन्न हैं।

पूर्वसागर (बंगाल की खाड़ी) से सम्बद्ध भौगोलिक विवेचन पहले किया जा चुका है[1]।

महोदधि—हिन्दमहासागर

कालिदास ने भारतवर्ष के धुर दक्षिण में स्थित हिन्दमहासागर को 'महोदधि' और 'रत्नाकर' आदि अन्वर्थक नामों से अभिहित किया है। रघु की दिग्विजय के प्रसंग में कहा है कि 'महोदधि' और ताम्रपर्णी के संगम पर मोती निकाले जाते हैं—

मुक्तासारं महोदधेः।[2]

रघुवंश के तेरहवें सर्ग के पहले से १८वें श्लोक तक कालिदास ने श्रीलंका और भारतभूमि के बीच पड़ने वाले तथा उसके आसपास फैले हुए समुद्र के नानाविध स्वरूपों, रत्नादि पदार्थों और जीवों का जो सजीव चित्र अंकित किया है वह भौगोलिक तथ्यों के सर्वथा अनुरूप है। कवि ने हिंदमहा-

---

१. देखिये पृष्ठ, ४५-४६

२. रघुवंश, ४-५०

सागर को महोदधि, महार्णव अथवा रत्नाकर जैसे सार्थक पारिभाषिक नामों से अभिहित किया है—

रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां
रामाभिधानो हरिरित्युवाच ॥[1]

साथ ही—

वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम्।
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम् ॥[2]

में कवि ने हिन्दमहासागर की उक्त भौगोलिक स्थिति का सही चित्रण करते हुए श्री राम के मुख से कहलाया है कि—

हे सीते, जैसे तारों से जगमगाते शरद ऋतु के स्वच्छ आकाश को आकाश गंगा दो भागों में बांट देती है, वैसे ही लंका से लेकर मलय उपत्यका तक मेरे द्वारा बनाए गए इस पुल ने इस रत्नाकर समुद्र को दो भागों में बांट दिया है। देखो, झाग से भरा हुआ यह समुद्र कैसा सुन्दर दिखाई दे रहा है।

अपरान्त सागर या लवणाकर

भारत के तटवर्ती समुद्रों में नमक केवल अपरान्त तट पर ही निकाला जाता है, इसीलिए कालिदास ने इसे अपरान्त और लवणाकर जैसे सार्थक नामों से अभिहित किया है। श्रीराम पुष्पक विमान द्वारा लंका से जब काफी दूर उत्तर की ओर बढ़ आए तो उन्हें अपनी बांयी ओर यह 'लवणाकर' दिखायी दिया था। श्री राम ने अपरान्त समुद्र को 'दूरादयः' आदि अन्यत्रोद्धृत् श्लोक में अपरान्त सागर को 'लवणाम्बुराशि' बताकर इसके लवणाकरत्व सम्बंधी इसी भौगोलिक तथ्य का प्रतिपादन किया है।

इसके अतिरिक्त कवि ने इसे 'अपरतोयनिधि' भी कहा है[3]। अन्यत्र इसके लिए अपरान्त शब्द का प्रयोग भी कवि ने किया है।[4]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिदास ने भारत के दक्षिणार्ध में पूर्व, दक्षिण और पश्चिम को मेखला की तरह घेरे हुए समुद्र तथा उसके विभिन्न भागों के लिए प्रयुक्त 'पूर्वसागार', महोदधि' और 'अपरान्त' इन तीनों

---

१. रघुवंश, १३-१
२. वही, १३-२
३. कुमारसंभव, १-१, देखें अन्यत्रोद्धृत श्लोक पृष्ठ-१३
४. रघुवंश, ४-५८

नामों से सम्बद्ध भौगोलिक तथ्यों का जो प्रतिपादन किया है वह भारत के प्राकृतिक-भूगोल के सर्वथा अनुरूप है।

चार और सात समुद्र

जैसा कि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कालिदास ने समुद्र-सम्बन्धी भौगोलिक तथ्यों का ठीक से निर्धारण करते हुए भारत के तीनों ओर फैले हुए पूर्वसागर, दक्षिणोदधि या महोदधि और अपरान्त महोदधि इन तीनों की अनेकत्र चर्चा की है। इसके साथ ही पौराणिक परम्परा के अनुसार चार और सात समुद्रों का उल्लेख करना भी उन्होंने आवश्यक समझा है। जैसे कि—

पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां
जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् ।[1]

में कहा है कि महाराज दिलीप सम्पूर्ण पृथ्वी के ही प्रत्यक्ष रूप उस गौ की सेवा और देखभाल में जुट गए, जिसके चारों थन मानों चारों समुद्र थे।

इसी प्रकार अन्यत्र चारों विद्याओं को चार समुद्र के समान बताया गया है—

क्रमाच्चतस्रश्चतुर्णवोपमाः ।[2]

भगवान् विष्णु की स्तुति करते हुए देवताओं ने उन्हें कहा कि हे, भगवन्, सामदेव के सातों स्वरों से युक्त गोत आपके ही गुण गाते हैं और सातों समुद्रों के जल में आप ही निवास करते हैं—

सप्तसामोपगीतं त्वां सप्तार्णवजलेशयम् ।[3]

इस प्रकार कालिदास ने भारतवर्ष के तीनों ओर फैले हुए पूर्वसागर, महोदधि, और लवणाकर इन तीनों समुद्रों से सम्बद्ध भौगोलिक तथ्यों का यथास्थान स्वाभाविक चित्रण किया है।

दक्षिण क्षेत्र के वन, वृक्ष, कृषि तथा सामुद्रिक उपज

कालिदास ने बताया है कि दक्षिणापथ एक वनबहुल क्षेत्र है। यहाँ समुद्र-तटवर्ती ताड़ जाति के वृक्षों से ढके घने जंगल तो पाए ही जाते हैं, अन्य

१. रघुवंश, २-३
२. वही, ३-३०
३. वही, १०-२१

प्रकार के वृक्ष-लताओं से परिपूर्ण वनों की भी यहां कमी नहीं है। कवि ने सामान्य वन और वृक्ष-विशेषों के वनों का उल्लेख पृथक्-पृथक् रूप से किया है। बहुत दूर से दिखाई देने पर वहां उगने वाले विभिन्न वृक्षों का ब्यौरा अलग-अलग दिखाई नहीं देता। ताड़, नारियल और सुपारी ताड़ जाति के इन वृक्षों का रंग-रूप और आकार-प्रकार लगभग एक सा ही होता है। हां, सुपारी का वृक्ष नारियल की अपेक्षा बहुत पतला और ऊंचाई में भी कुछ छोटा होता है। सुपारी के वृक्ष का सफेद रंग का तना लगभग मोटे बाँस के जैसा पतला और सीधा होता है।

सामान्य वन

पुष्पक विमान में बैठकर लंका से भारत की मुख्य भूमि की ओर बढ़ने पर श्रीराम ने सीताजी को भारतभूमि की एक झलक दिखाते हुए कहा कि जंगलों से भरी हुई, दक्षिण की वह भूमि ऐसी दिखाई दे रही है, मानो अभी समुद्र में से निकल पड़ी हो—

समुद्रात्सकानना निष्पततीव भूमिः।[1]

इसी प्रकार अन्यत्र पंचवटी के आस-पास के घने जंगलों का सामान्य रूप से वर्णन करते हुए श्रीराम ने कहा कि यह जंगलों से घिरा हुआ शातकर्णि का आश्रम दूर से ऐसे दिखाई दे रहा है मानो बादलों के बीच में से चांद झांक रहा हो।

आभाति पर्यन्तवनं विदूरान्मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुबिम्बम्।[2]

इससे स्पष्ट है कि उन दिनों पंचवटी के आस-पास बड़े घने जंगल थे। उनमें सब प्रकार के वृक्ष पाए जाते थे।

दण्डकारण्य का दक्षिण व पश्चिमी भाग-जनस्थान

कवि ने जनस्थान का दक्षिणापथ के जनपद और वन इन दोनों रूपों में उल्लेख किया है। शूर्पणखा लक्ष्मण के हाथों अपनी नाक कटवाकर खर आदि राक्षसों के निवास जनस्थान पहुंची—

प्राप्य चाशु जनस्थानं खरादिभ्यस्तस्थाविधम्।[3]

---

१. रघुवंश, १३-१८
२. वही, १३-३८
३. रघुवंश, १२-४२

यहां जनस्थान एक जनपद के रूप में गृहीत है। इसके विपरीत लंका से वापस लौटते समय श्रीराम का यह कथन कि अब जनस्थान को निर्विघ्न जानकर ऋषिमुनियों ने फिर से यहां अपनी कुटियाएँ बनानी शुरु कर दी हैं :—

अमी जनस्थानमपोढविघ्नं मत्वा समारब्धनवोटजानि।[1]

जनस्थान को एक वन के रूप में दिखाता है, जो वस्तुतः 'दण्डक' का पूर्व-भाग है।

तमाल और ताल के वन

श्रीराम सीताजी से कहते हैं कि तमाल और ताल के वनों से नीला सा दिखाई देने वाला लवणाकर का यह तट ऐसे लग रहा है मानो लोहे के किसी चमकते हुए चक्र पर मोर्चा या जंग लग गया हो—

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलंकरेखा॥[2]

राजताली वन

कालिदास ने सह्य पर्वत के ताड़ जाति के विविध (सुपारी नारियल और ताड़ इन तीनों प्रकार के) वृक्षों से ढके राजताली वनों का नामोल्लेख भी किया है—

राजतालीवनध्वनिः।[3]

बेंत के वन

कालिदास ने दक्षिण क्षेत्र के मिलेजुले वृक्षों से ढके साधारण वनों तथा ताड़ जाति के वनों के साथ ही साथ बेंत और बांस के घने जंगलों की चर्चा भी—

उपान्तवानीरवनोपगूढानि।[4]

के द्वारा की है।

---

१. रघुवंश, १३-२२
२. वही, १३-१५
३. वही, ४-५६
४. वही, १३-३०

मलयाचल के वन

कवि ने 'ताम्बूलवल्ली' आदि अन्यत्र उद्धृत श्लोक में मलयाचल के उन चन्दन-बहुल वनों की चर्चा की है, जिनमें चन्दन के साथ ही साथ तमाल और सुपारी के पेड़ और पान व इलायची की बेलें भी प्रभूत मात्रा में विद्यमान थीं।

रघुवंश, ६-६४ देखिये पृष्ठ ६१

वृक्ष

कालिदास ने दक्षिण क्षेत्र के समुद्र, तटवर्ती सुपारी, नारियल और ताड़ इन तीनों ताड़ जाति के प्रमुख वृक्षों चन्दन तथा दक्षिण के प्रमुख सुगंधित वृक्षों में समान रूप से पाए जाने वाले अशोक और कदम्ब जैसे पुष्पित वृक्ष और फलदार वृक्ष केला, छायादार वृक्ष तमाल तथा बेंत और बांस जैसे जलप्रवाहों के निकटवर्ती पहाड़ी वृक्षों की चर्चा भी यथाप्रसंग की है।

नारियल

कवि ने दक्षिण क्षेत्र के समुद्रतटवर्ती प्रदेशों में बहुतायत से उगाये जाने वाले नारियल की चर्चा स्वतन्त्र रूप से कलिंग के प्रसंग में ही की है[1]। अन्यत्र ताड़ जाति का वृक्ष होने के कारण इसे भी उसी के अन्तर्गत दिखा दिया है।

सुपारी

कालिदास ने श्रीराम को सीता को महोदधि के वे तट दिखाते हुए बताया है, जहाँ उगे हुए सुपारी के वृक्ष फल भार से झुके जा रहे थे—

कूलं फलावर्जितपूगमालम्।[2]

खजूर

खजूर के फल ताजा खजूरों का खाद्य पदार्थों के रूप में तो प्रयोग

---

१. देखिये पृष्ठ ५३
२. रघुवंश, १३-१७

होता ही है, सूखे खजूर-छुआरे या खारक और पिण्ड-खजूर भी प्रमुख और स्वादिष्ट खाद्यपदार्थ हैं। कालिदास के समय में भी पिण्ड-खजूर एक श्रेष्ठ भोज्य पदार्थ माना जाता था। अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में विदूषक का यह कथन कि पिण्डखजूर खाते-खाते ऊब जाने वाले का मन इमली के लिए ललचा जाता है —

पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत्।[1]

जहां एक ओर पिण्डखजूर की उत्कृष्टता का द्योतक है, वहा दूसरी ओर इस भौगोलिक तथ्य का भी परिचायक है कि कालिदास के समय में भी पिण्ड-खजूर की गणना एक सुस्वादु मेवे के रूप में भी की जाती थी, भले ही वह आज की भांति तब भी बाहर से ही आयातित होती रही हो। इसके अतिरिक्त इसी से सम्बद्ध एक तीसरा भौगोलिक तथ्य यह भी स्पष्ट होता है कि कवि 'द्वीपान्तर' से आयातित लोंग जैसे पदार्थों की चर्चा भारत के पूर्वी समुद्रतटवर्ती कलिंग के प्रसंग में करता है, वहां खजूर जैसे पश्चिमी देशों प्रमुखतः बसरा से आने वाले पदार्थों का उल्लेख उसके समीप और सम्मुख पड़ने वाले अपरान्त (पश्चिमी घाट) के प्रसंग में करता है और यही कालिदास की एक बहुत बड़ी विशेषता है कि वह अपने पाठकों को विभिन्न भौगोलिक वैशिष्ट्यों से बड़ी ही कलात्मक सुरुचि और काव्यात्मक पदावली में परिचित करवाता है।

कालिदास ने दक्षिण क्षेत्र में खजूर के वृक्षों का वर्णन करते हुए कहा है कि खजूर के तनों से बंधे हुए हाथियों के गण्डस्थलों से चूते हुए मद की सुगन्धि पाकर नागकेसर के फूलों पर बैठे हुए भँवरे उड़कर सहसा उन पर टूट पड़े —

खर्जुरीस्कन्धनद्धानां मदोद्गारसुगन्धिषु।
कटेषु करिणां पेतुः पुंनागेभ्यः शिलीमुखाः॥[2]

चन्दन

दक्षिण क्षेत्रवर्ती मलयाचल के चन्दन वृक्षों का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है :—

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल, २-८
२. रघुवंश, ४-५७

मलयस्थलीरिते धूतचन्दनलतः ।[1]

अर्थात् मलयाचल के चन्दन के वृक्षों को कम्पा देने वाली वायु।

केतकी-केवड़ा

केतकी का कवि ने दक्षिण क्षेत्र में भी उसी मनोयोग से वर्णन किया है और समुद्रतट की वायु को सीता के मुख पर केतकी के पराग का पाउडर लगाते हुए दिखाया है—

वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते
सम्भावत्याननमायताक्षि ।[2]

तो कहीं मुरला नदी की ओर से आ रही वायु से उड़ी केवड़े के पराग रघु के सैनिकों के कवचों को सुवासित कर देती है —

मुरलामारुतोद्धूतमगमत् कैतकः रजः ।
तद्योधवारवाणानामयत्नपटवासताम् ॥[3]

ताड़ व तमाल

कवि ने दक्षिण क्षेत्र में तमाल या आवनूत वृक्ष की भी चर्चा की है जैसे —

तमालतालीवनराजिनीला[4]

में समुद्र-तट को तमाल और ताड़ वृक्षों से नीला या हरा-भरा दिखाया गया है।

अशोक

कवि ने उत्तर के समान ही दक्षिण क्षेत्र में भी सर्वत्र पाए जाने वाले रक्तपुष्प-स्तबकों से सुशोभित अशोक का मानवीकरण के रूप में काव्यात्मक चित्र अंकित किया है —

इमां तटाशोकलतां च तन्वीं स्तनाभिरामस्तबकाभिनम्राम् ।[5]

---

१. कुमारसंभव, ८-२५
२. रघुवंश, १३-१६
३. रघुवंश, ४-५५
४. रघुवंश, १३-१५
५. रघुवंश, १३-३२

हे सीते, मैं तुम्हारे वियोग में ऐसा पागल हो गया था कि स्तवक के समान सुन्दर गुच्छों वाली इस कोमल अशोकलता को ही तुम्हें समझ बैठा था।

—यहां कवि ने अशोक के प्रमुख वैशिष्ट्य उसके 'रक्तिम पुष्पस्तबक' का काव्यात्मक चित्र उपस्थित किया है।

कदम्ब

कवि ने गेंद के समान गोल-गोल फूल वाले अधखिले कदम्ब का भी उल्लेख दक्षिण क्षेत्र के वृक्षों में किया है —

कदम्बमर्धोद्‌गतकेसरं च।[1]

वेणु-बांस

कवि ने बांस का उल्लेख अप्रस्तुत रूप में करते हुए कहा है कि सूर्पणखा बांस के से भद्दे पोरों वाली अपनी उँगलियों से राम को डराने धमकाने लगी —

वेणुकर्कशपर्वया[2]

कृषि-उपज

दक्षिण क्षेत्र की कृषि उपज के प्रसंग में कालिदास ने बताया है कि लोंग, कालीमिर्च और इलायची जैसी खेतों में उगने वाली वस्तुओं के साथ ही साथ पान सुपारी और नारियल तथा केला भी दक्षिण की प्रमुख कृषि-उपज है। चन्दन के वृक्ष भी वहां उगाये जाते हैं।

कदली-केला

कालिदास ने केले का उल्लेख जहाँ कहीं भी किया है सर्वत्र अप्रस्तुत रूप में ही किया है। दक्षिण भारत के फलदार केले का मात्र इसी प्रसंग में उल्लेख किया है कि श्रीराम ने रावण के शतघ्नी नामक शस्त्र को केले के समान अनायास ही काट डाला—

चिच्छेदकदलीसुखम्।[3]

---

१. रघुवंश, १३-२७
२. वही, ११-४१
३. वही, १२-९६

लौंग

दक्षिण क्षेत्र की इस सर्वातिशायिनी कृषि-उपज की चर्चा दक्षिणापथ के प्रसंग में न कर कालिदास ने शिव, पार्वती के हिमालय-विहार के प्रसंग में की है। वहां कवि ने बताया है कि लौंग की सुगंधि से बसी हुई दक्षिणानिल ने पार्वतीजी का पसीना सुखा दिया —

आचचाम सलवंगकेसरः
चाटुकार इव दक्षिणानिल।[1]

कालीमिर्च

कवि ने मलय पर्वत की घाटियों को उन कालीमिर्च के खेतों से भरा हुआ बताया है, जहां सदा तोतों के झुण्ड उड़ते रहते हैं —

मारीचोद्भ्रान्तहारीता मलयाद्रेरुपत्यकाः।[2]

इलायची

दक्षिण क्षेत्र की इलायचियों का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि रघु के घोड़ों से कुचले और पिसे हुए इलायची के फलों की धूल उड़-उड़कर इन हाथियों के गण्डस्थलों पर जा चिपकी, जिनके मदजल की गंध भी वैसी ही थी —

ससज्जुरश्वक्षुण्णानामेलानामुत्पतिष्णवः।
तुल्यगंधिषु मत्तेभकटेषु फलरेणवः॥[3]

पान

ताम्बूल दक्षिण भारत की भी प्रमुख उपज है। कवि ने मलयपर्वत घाटियों को ऐसे सुपारी के पेड़ों से ढका बताया है जिन पर पान की बेलें चढ़ रही हैं —

ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगास्वेलालतालिंगितचन्दनासु।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु॥[4]

---

१. कुमारसम्भव, ८-२५
२. रघुवंश, ४-४६
३. वही, ४-४७
४. रघुवंश, ६-६४

सामुद्रिक उपज —मणि, रत्न, लवण आदि

कालिदास ने समुद्र तथा उसमें मिलने वाली गंगा, कावेरी, ताम्रपर्णी आदि नदियों की भौगोलिक स्थिति का निरूपण करने के साथ ही साथ समुद्रजात विविध पदार्थों का भी यथास्थान निर्देश किया है।

मुक्ता

सामुद्रिक उपज में सर्वाधिक बहुमूल्य पदार्थ है मोती। दक्षिणोदधि की ताम्रपर्णी के मुहाने पर स्थित मन्नार की खाड़ी आज भी अपनी मोतियों की उपज के लिए प्रसिद्ध है। कवि ने —

ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव संचितम् ॥[1]

में मन्नार की खाड़ी से निकलने वाले मोतियों की चर्चा करते हुए कहा है कि दक्षिण के पाण्ड्य नरेशों ने ताम्रपर्णी के साथ समुद्रसंगम से जितने मोती बटोरे थे वे सब उन्होंने महाराज रघु को ऐसे भेंट कर दिए मानो अब तक का बटोरा हुआ अपना यश ही उन्हें दे डाला हो। क्योंकि मोती भी सफेद होते हैं और यश को भी श्वेत रंग का कहा गया है, इसलिए मोतियों के लिए यश की उपमा सर्वथा अन्वर्थक तो है ही साथ ही यहां प्रतीपालंकार का सौन्दर्य भी व्यंजित हो रहा है। उधर —

रत्नानुविद्धार्णवमेखलाया
दिशः सपत्नी भव दक्षिणस्याः।[2]

के द्वारा भी कालिदास ने महोदधि के इसी क्षेत्र में मुक्ता विद्रुम आदि रत्नों की उत्पत्ति से सम्बद्ध भौगोलिक तथ्य की व्यंजना की है।

महाभारत में कहा गया है कि सिंहल (लंका) के लोग समुद्र के सारभूत मोतियों के ढेर और वैदूर्य की भेंट लेकर महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सम्मिलित हुए थे।[3]

इसी प्रकार लंका और रामेश्वर के बीच पड़ने वाली मन्नार की खाड़ी को दिखाते हुए श्रीराम ने सीता को कहा कि देखो यह रत्नाकर है अर्थात्

---

१. रघुवंश, ४-५०
२. वही, ६-
३. महा० सभा०, ५२-३५

यहां मोती मूंगे आदि रत्न उत्पन्न होते हैं[१]।

श्री राम आगे कहते हैं कि अब हम समुद्र के उस तट पर पहुंच गए हैं जहां रेत पर सीपों के फैल जाने से मोती बिखरे पड़े हैं :—

एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः ।
प्राप्ता मुहूर्तेन विमानवेगात्कूलम्···॥[२]

विद्रुम मूंगा और शंख

कन्याकुमारी व रामेश्वर के तट आज भी मूंगों की चट्टानों के लिए प्रसिद्ध हैं। इन क्षेत्रों की यात्रा करने वाला प्रत्येक यात्री प्रायः अपने साथ वहां से शंख सीप मूंगे और कौड़ियाँ जैसे सामुद्रिक पदार्थ अपने साथ ले जाता है। कालिदास ने —

तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु
पर्यस्तमेतत्सहसोर्मिवेगात् ।
उर्ध्वांकुरप्रोतमुखं कथंचित्
क्लेशादपक्रामति शंखयूथम् ॥[३]

में कुमारी अन्तरीप की सामुद्रिक उपज इन्हीं मूंगों और शंखो का वर्णन करते हुए कहा है कि 'देखो', वेगवान-लहरों के कारण तुम्हारे अधरों के समान लाल-लाल मूंगों की चट्टानों से टकरा जाने से इन जीवित शंखों के मुंह छिद गए हैं, जिससे ये अत्यन्त कठिनाई से इधर-उधर बढ़ पा रहे हैं।

लवण

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कवि ने अपरान्त सागर के लिए 'लवणाम्बुराशि'[१] इस सार्थक संज्ञा का प्रयोग कर यह दिखाया है कि तब भी अपरान्त (अरब सागर) से नमक प्राप्त होता था।

दक्षिण क्षेत्र के जीव-जन्तु

कालिदास-निर्दिष्ट दक्षिण क्षेत्र के जीव-जन्तुओं को स्थलीय व जलीय इन दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। स्थल के जीवों को भो ग्राम्य

---

१. रघुवंश, १३-१७
२. वही, १३-१३
३. रघुवंश, १३-१५

व अरण्य इन दो वर्गों में दर्शाया जाना अपेक्षित है।

आरण्यकपशुओं में कवि ने गज, व्याघ्र, हरिण और गीदड़, सांप और अजगर जैसे जीवों की चर्चा दक्षिण क्षेत्र के प्रसंग में की है।

गज

कवि ने पहले रघु की सेना के हाथियों को कावेरी में स्नान करते दिखाकर[1] और दक्षिण क्षेत्र को लांघकर उत्तर क्षेत्र की ओर बढ़ते हुए भी—

मत्तेभरदनोत्कीर्णव्यक्तविक्रमलक्षणम्।[2]

के द्वारा हाथियों की चर्चा कर दक्षिण क्षेत्र के गज-बहुल होने का संकेत दिया है। इसी प्रकार—

शैलरुग्णमतंगजः।[3]

कहकर भी कवि ने रावण की सेना में हाथियों की उपस्थिति बताई है। और कहा है कि वानरों ने पहाड़ों की चट्टाने गिरा-गिरा के उन हाथियों के सिर फोड़ डाले थे।

व्याघ्र

दक्षिण क्षेत्र के प्रसंग में व्याघ्र की चर्चा कवि ने अप्रस्तुत रूप में ही निम्न श्लोक में की है—

मृग्या परिभवो व्याघ्र्याम्।[4]

हरिण

भारतवर्ष का यह भोला भाला जंगली जीव हरिण कवि को बहुत प्रिय है। दक्षिण क्षेत्र के प्रसंग में कवि ने कहा है कि सीता के वियोग में हरिण और हरिणियों के ने घास चरना छोड़ दिया था—

मृग्यश्च दर्भांकुरनिर्व्यपेक्षाः[5]

---

१. रघुवंश, ४-४५
२. वही, ४-५६
३. वही, १२-७३
४. वही, १२-४७
५. वही, १३-२५

शिवा-गीदड़-गीदड़िया

वनों में गीदड़-गीदड़ियों की स्थिति भी स्वाभाविक है। कवि ने शिवा-गीदड़ी-का भी अप्रस्तुत रूप में उल्लेख करते हुए कहा है कि—शूर्पणखा की जो आवाज पहले कोयल के जैसी मधुर थी, वह अब गीदड़ी के जैसी कर्कश हो गई—

कोकिलामंजुनादिनीं शिवाघोरस्वनाम् ।[1]

साँप

साँप भी वनों का एक अपरिहार्य जीव है। चन्दन के वृक्षों के साथ साँपों के लिपटे रहने की कविसमयख्याति का—

भोगिवेष्टनमार्गेषु चन्दनानां समर्पितम् ।[2]

के द्वारा समर्थन किया है।

महोरग-अजगर

दक्षिण के वनों में अनेकत्र पाए जाने वाले महोरग या अजगरों की चर्चा कवि ने—

वपुर्महोरगस्येव[3]

में की है।

पक्षी

दक्षिण क्षेत्र के प्रसंग में कालिदास ने तोता, मोर, कोयल, चकवा, सारस तथा गीध और गरुड़ जैसे पक्षियों का उल्लेख किया है।

तोता

मलयाचल की घाटियाँ आकाश में उड़ते हुए तोतों से और भी अधिक हरी दिखाई देती थीं। इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है[4]।

---

१. रघुवंश, १२-३०
२. वही, ४-४८
३. वही, १२-९८
४. देखिये पृष्ठ-९१

मोर

दक्षिण क्षेत्र में मोर का उल्लेख करते हुए श्रीराम के मुख से कहलाया है कि सीता के विरह में उन्हें मोरों की मधुर केका वाणी भी असह्य हो गयी थी —

स्निग्धाश्च केकाः शिखिनाम्[1]

सारस

पम्पासरोवर के आसपास विचरने वाले सारसों की चर्चा पहले की जा चुकी है[2]।

कोयल

कोयल का विवेचन भी ऊपर हो चुका है।

चकवा-चकवी

कालिदास ने राम के मुख से कहलाया है कि सीता के विरह में चकवे-चकवियों को साथ-साथ देखकर वे भी सोचते थे कि इसी प्रकार मुझे भी फिर से अपनी प्रिया का साथ कब सुलभ होगा[3] :—

अत्रावियुक्तानि रथाङ्गनाम्ना-
मन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि ।
द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते
मया प्रिये सस्पृहमीक्षितानि ॥

गरुड़

गरुड़ पक्षी की चर्चा करते हुए कवि ने कहा है कि मेघनाद ने लक्ष्मण पर जो नागपाश डाला था, उसे गरुड़ ने काट डाला—

गरुड़ापातविश्लिष्टमेघनादास्त्रबन्धनः ।[4]

---

१. रघुवंश, १३-२७
२. देखिये पृष्ठ-८१
३. वही, १३-३१
४. वही, १२-७६

गीध

दक्षिण भारत के गीध भी कवि की लेखनी से चित्रित हुए हैं। जटायु गीध सीता को छुड़ाने के लिए रावण से उलझ पड़ा और घायल हो गया—

तौ सीतान्वेषिणौ गृध्रं लूनपक्षमपश्यताम् ।[1]

और यह भी कि राम-लक्ष्मण के द्वारा निहत खर-दूषण को सेना गीधों की छाया में हमेशा के लिए सो गयी—

अप्रबोधाय सुस्वाप गृध्रच्छाये वरूथिनी ।[2]

सामुद्रिक जीव-जन्तु

कालिदास ने समुद्र के वर्णन के प्रसंग में समुद्री जीव-जन्तुओं की भी यथास्थान चर्चा की है। जिनमें से मातंगनक्र – बड़े मगरमच्छ, तिमि-ह्वेल मछली, समुद्री साँप और शंख, मूंगा आदि प्रमुख हैं।

तिमि-ह्वेल मछली

कालिदास ने—

ससत्त्वमादाय नदीमुखाम्भः
संमीलयन्तो विवृताननत्वम् ।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रैः
रूर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहन् ॥[3]

के द्वारा ह्वेल मछली का जीता-जागता चित्र अंकित कर दिया है। यहाँ कहा गया है कि ये तिमि-ह्वेल मछली अपने बड़े-२ मुहँ खोलकर पानी के साथ समद्र के छोटे-बड़े जीवों को निगल जाती हैं और इनके सिर के छिद्रों से पानी के ऊंचे-ऊंचे फव्वारे छूटते रहते हैं। यहाँ कवि ने ह्वेल के उक्त दोनों वैशिष्ट्य स्पष्ट रूप से प्रतिपादित कर दिए हैं। इसी प्रकार—

मातंगनक्रैः सहसोत्पतद्भिर्भिन्नान्द्विधा पश्य समुद्रफेनान् ।[4]

(ये हाथियो के जैसे बड़े-बड़े मगरमच्छ जब अचानक समुद्र के पानी के अन्दर से ऊपर उठते हैं, उनकी उठती हुई पीठ पर से समुद्र के ये झाग दोनों ओर

---

१. रघुवंश, १२-५४
२. वही, १२-५०
३. वही, १३-१०
४. वही, १३-११

अलग-अलग छट कर दो भागो में बट गए हैं।)
में समुद्र के विशाल मगरमच्छो का चित्र खींचा है।

तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु
पर्यस्तमेतत्सहसोर्मिवेगात्।
ऊर्ध्वांकुरप्रोतमुखं कथंचि-
त्क्लेशादपक्रामति शंखयूथम्॥[1]

("देखो, तुम्हारे होठों के समान लालमूंगे की चट्टानों से टकराने के कारण इन जीवत शंखों के मुँह छिद गए हैं, जिससे ये बड़ी कठिनाई से इधर-उधर चल पा रहे हैं।) इस शब्दचित्र में शंखों के मुँह छिद जाने के कारण कवि ने जीव-जन्तु सम्बंधी सूक्ष्म तथ्य प्रकट किया है। इसके अतिरिक्त "ससत्व-मादाय" आदि उपर्युक्त श्लोक में मछली, कछुआ, केंकड़ा आदि सभी जल-जन्तुओ की चर्चा "ससत्व" शब्द से कर दी गई है।

दक्षिण क्षेत्र का जन-जीवन

कालिदास ने अपने काव्यों के माध्यम से दक्षिण क्षेत्र के जन-जीवन की चर्चा करते हुए बताया है कि इस क्षेत्र में प्रमुख रूप से पाण्ड्य और केरल ये दो सभ्य, सुसंस्कृत-जन थे। इनके सिवा ऋक्ष, वानर और रक्ष या राक्षस नामक आदिवासी-जनों का भी यह घर था। यहाँ के लोगों के रहन-सहन और आकार-प्रकार की भी कवि ने चर्चा की है।

पाण्ड्य वीर—

कालिदास ने दक्षिण के पाण्ड्यजनों का नामोल्लेख करते हुए कहा है—

पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे।[2]

केरल-सुन्दरियाँ तथा उनकी घुंघराली केशराशि—

केरल की स्त्रियाँ अपने कटीले नयन-नक्श और काले घुंघराले बालों से दर्शक का मन मोह लेती हैं। कवि ने केरल की सुन्दरियों का और विशेष रूप से उनके अलक-(घुंघराले बालों) की चर्चा करते हुए कहा है—

भयोत्सृष्टविभूषाणां तेन केरलयोषिताम्।
अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णः प्रतिनिधी कृतः॥[3]

---

१. रघुवंश, १३-१३
२. वही, ४-४९
३. वही, ४-५४

वानर

कालिदास ने दक्षिण क्षेत्र विशेषतः किष्किंधा और उसके आस-पास के प्रदेशों में वनार जाति की उपस्थिति दर्शाते हुए कहा है कि "हरि" सुग्रीव भी श्रीराम के समान ही पत्नी और राज्य से हीन होने के कारण उनका समदुःखभागी था। अतः श्रीराम और सुग्रीव की तत्काल मित्रता हो गई—

मुमूर्च्छ सख्यं रामस्य समानव्यसने हरौ।[१]

निश्चित ही यह मैत्री दो मानवों में ही सम्भव है।

ऋक्ष

वानर-जन किष्किंधा में रहते थे, जबकि ऋक्षजनों का आवास ऋक्षवान्-सतपुड़ा था। कवि ने ऋक्षवान् की चर्चा करते हुए कहा है—

वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु[२]

रक्ष-राक्षस जन

दक्षिण भारत के जनस्थान प्रदेश से लेकर लंका तक "रक्ष" जन रहा करते थे। कालिदास ने कहा है कि शूर्पणखा जनस्थान में पहुँच कर खर आदि राक्षसों को राम के द्वारा पहली बार किए गए रक्ष-जन केअपमान का वृतान्त बताने लगी—

प्राप्य चाशु जनस्थानं खरादिभ्यस्तथाविधम्।
रामोपक्रमाचख्यौ रक्षःपरिभवं नवम्॥[३]

तपस्वी-जन

आज भी दक्षिण में कई लोग नानाविध कठोर तप करते देखे जाते हैं। कोई कीलों या कांटों पर बैठा या लेटा है तो कोई एक पाँव पर खड़ा रहता है। इस प्रकार का कठोर तप दक्षिण क्षेत्र के जन-जीवन का अपना वैशिष्ट्य है। कालिदास ने दक्षिण क्षेत्र के ऐसे कठोर तपःसाधकों की ओर निर्देश करते हुए कहा है कि उनमें से एक (शातकर्णी) कई दिनों तक घास-फूस ही खाता रहा—

---

१. रघुवंश, १२-५७
२. वही, ५-४४
३. वही, ११-४२

दर्भांकुरमात्रवृत्तिः[1]

तो दूसरा (सुतीक्ष्ण) निरन्तर मौन साधे हुए सूर्य की ओर टकटकी लगाए खड़ा-खड़ा उग्र तपस्या कर रहा था —

असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी[2]

"पंचाग्नि तप" तो वहाँ एक सुतीक्ष्ण ही क्यों और भी अनेक लोग तपते थे। इन सबसे बढ़कर ऐसे तपस्वी भी दक्षिण क्षेत्र में विद्यमान थे जो तप करते करते अपना शरीर ही सुखा या जला डालते थे—

चिराय सन्तर्प्य समिद्भिरग्निम्
यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत्।[3]

दक्षिण के जनो की चन्दनचर्चित श्यामाकं देह

कालिदास ने दक्षिण के लोगों के श्यामवर्ण शरीर और उनके चन्दनानुलिप्तांगों की चर्चा करते हुए पाण्ड्य नरेश को श्यामवर्ण बताया है—

इन्दीवरश्यामतनुर्नृपोऽसौ।[4]

और यह भी कहा है कि इनके अंग प्रत्यंग चन्दन-चर्चित हैं—

क्लृप्तांगरागो हरिचन्दनेन।[5]

निष्कर्ष

दक्षिण क्षेत्र के कालिदास-निर्दिष्ट पूर्वोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कालिदास ने दक्षिणापथ के विदर्भ, पाण्ड्य, केरल, जनस्थान, आदि जनपदों; कुण्डिनपुर, उरगपुर, किष्किंधा और पंचटी-नासिक तथा लंका आदि नगरियों; महेन्द्र, मलय. माल्यवान्, दर्दुर, सह्य, और ऋक्षवान् आदि पर्वतों, गोदावरी, कावेरी आदि नदियों; गोकर्ण, पंचवटी जैसे तीर्थों, पूर्वसागर, दक्षिण महोदधि और लवणाकर इन तीनों समुद्रों, मोती-मूँगा आदि रत्नों; वनों और वृक्षों, इलायची, चन्दन, लौंग कालीमिर्च, आरण्यक व समुद्री जीवों तोतों और सारस जैसे पक्षिगणों व पाण्ड्य, ऋक्ष वानर, रक्ष, आदि के साथ वहाँ के निवासियों के सांवले सलोने रूप और केरल की सुन्दरियों आदि चित्रण भी पूरे मनोयोग से किया है।

---

१. रघुवंश, १३-३९
४. वही, १३-४१ से ४४
५. वही, १३-४४

कालिदास-निर्दिष्ट भारतवर्ष
का
उदीच्य–पश्चिमोत्तर क्षेत्र

उ० अक्षांश—२२ से ३८
पूर्व देशांतर—६४ से ७८

सिन्धुकेकयगन्धारपारसीकवनायवः ।
यक्षयवनकम्बोजपर्वतीयाश्च वाल्हिकाः ॥
कारापथापरान्ताश्चैते द्वादशसंख्यकाः ।
उदीच्याःकालिदासेन प्रोक्ता जनपदा इह ॥

कालिदास चर्चित उदीच्य—पश्चिमोत्तर क्षेत्र

उदीच्य क्षेत्र का भौगोलिक वैशिष्ट्य तथा सीमाएं

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है भारतवर्ष के समग्र पश्चिमोत्तर क्षेत्र को उदीच्य देश कहा जाता था[1]। पुराणों में जिन उदीच्य जनपदों का नामोल्लेख मिलता है, उसमें से प्रमुख ये हैं—

वाल्हीक, वाटधान, आभोर, अपरान्त, शूद्र, पल्हव, गंधार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्रक, शद्रु, शतद्रुज, कुविंद (सतलुज से यमुना को शाखा टोंस नदी तक का प्रदेश वर्तमान देहरादून जिला) पारद (हिंगलाज देवी का स्थान), हारहूण या हारहूणक (कंधार का वह प्रदेश जहाँ काले अंगूर होते हैं), रमठ (गजनी), केकेय, दशमालिक या दश नामक (अफगानिस्तान का रोह नामक प्रदेश) कम्बोज, दरद (काश्मीर का पश्चिमोत्तरी भाग) बर्बर, (सिंधु-सागर-संगम के पार का प्रदेश), पुष्कल (गंधार की राजधानी पुष्कलावती), लम्पाक (अफगानिस्तान का लक्ष्मान प्रदेश) जागुड़ (गजनी)किरात, हेयमार्ग, (उत्तर काश्मीर का हुंजा प्रदेश), काश्मीर, तंगण, कुहक कुहा या (काबुल के तटवासी), ऊर्ण(स्वात प्रदेश में ऊनासर), और दार्व (जम्मू का डोगरा प्रदेश[2])

कुर्मपुराण में उदीच्य जनपदों की सूची में अपरान्त से 'पारसोक' तक के देशों या जनपदों का समावेश है[3]।

उक्त सूची के आधार पर सिद्ध होता है कि पूर्व में कुणिंद के तटवर्ती प्रदेश यमुना से लेकर पश्चिम में वाल्हीक तथा दक्षिण में 'अपरान्त' से लेकर उत्तर में कम्बोज तक का भूभाग 'उदीच्य' या पश्चिमोत्तर क्षेत्र में समाविष्ट था।

अपरान्त

पौराणिक भुवनकोषों में 'अपरान्त' की गणना 'उदीच्य' देशों में की गई है। 'अपरान्त' के सागर के साथ लगने वाले सह्य पर्वत के उत्तरी छोर

---

१. देखें पृष्ठ १७-१८

२. वाल्हीक वाटधानाश्च—ऐते देशा उदीच्यास्तु। मार्क०पु, अ० ५७-३६से ४२ और

३. तथापरन्ता......पारासीकास्तथैव च। कूर्मपु०, अ० ४७-४२ से ४४

'त्रिकूट' से लेकर भृगुकच्छ (भडौच) तथा सौराष्ट्र गुजरात तक विस्तृत भारतवर्ष का पश्चिमी क्षेत्र 'अपरान्त' के नाम से अभिहित है।

इस 'अपरान्त'—पश्चिमी क्षेत्र की चर्चा कालिदास ने रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में दो स्थानों पर की है। "तस्यानिकैः" आदि पूर्वोद्धृत श्लोक में कहा गया है कि अपरान्त क्षेत्र की विजय के लिये उद्यत रघु की सेनाएँ जब समुद्र के साथ सटी हुई सह्य पर्वत की घाटियों से गुजर रही थी, तब ऐसा प्रतीत होता था कि पहले परशुराम जी के द्वारा दूर हटा दिए जाने पर भी समुद्र रघु के सैन्य दल रूपी समुद्र के द्वारा फिर से सह्य पर्वत के साथ आ कर सट गया है[1]।

अन्यत्र बताया गया है कि "अपरान्त" जनपदों के राजाओं के रूप में मानों स्वयं समुद्र-अरबसागर—ने ही रघु को 'कर' दिया था, जबकि पहले प्रार्थना करने पर उसने परशुराम जी को थोड़ी सी भूमि मात्र देकर सन्तुष्ट कर दिया था —

अवकाशं किलोदन्वान् रामायाभ्यर्थितो ददौ ।
अपरान्तमहीपालव्याजेन रघवे करम् ॥[2]

कालिदास के अपरान्त सम्बन्धी उक्त भौगोलिक व ऐतिहासिक विवरण महाभारत में दिये गए इसी क्षेत्र के उस विवरण के सर्वथा अनुकूल है, जहां बताया गया है समुद्र ने परशुराम जी के लिए यह भूमि छोड़ दी थी—

ततः शूर्पारकं देशं सागरस्तस्य निर्ममे ।
सहसा जामदग्न्यस्य सोऽपरान्तमहीतलम् ॥[3]

वर्तमान में नर्मदा के मुहाने से ५० कि० मी० की दूरी पर बसा हुआ 'भृगुकच्छ' भडोंच अपने इस नाम में ही अपना वह सारा इतिहास समेटे हुए है, जिसका विवरण कालिदास ने उक्त प्रसंग में तथा महाभारत में अनेकत्र दिया गया है। प्राचीन साहित्य में भृगुकच्छ का ही एक अन्य नाम 'शूर्पारक' सोपारा भी दिया गया है। यह अपरान्त का ही एक भाग है। पौराणिक भुवनकोषों की उपर्युक्त जनपद सूची में 'अपरान्त' की गणना 'उदीच्य' जनपदों में ही की गयी है और 'त्रिकूट' से लेकर गुजरात तक का क्षेत्र 'अपरान्त' कहा गया है।

---

१. रघुवंश, ४-५३ देखिये पृष्ठ
२. वही, ५-४८
३. महा० शान्ति० ४९-६६

केकय

ब्रह्मावर्त-कुरुक्षेत्र-अम्बाला से 'उदीच्य' पश्चिमोत्तर या पंचनद प्रदेश में प्रवेश करने पर शतद्रु और विपाशा के पार से ही प्राचीन केकय देश की सीमा शुरू हो जाती थी। कालिदासोक्त उदीच्य जनपदों के भौगोलिक विवरणों में अपरान्त के पश्चात् जो क्षेत्र सबसे पहले सामने आता है, वह केकय जनपद ही है। अतः उदीच्य क्षेत्र का वर्णन केकय से ही आरम्भ किया जा रहा है।

रामायणकाल में विपाशा (व्यास) से लेकर गंधार की पूर्वी सीमा तक का प्रदेश 'केकय' कहलाता था। परवर्ती काल में जेहलम और चनाव के मध्यवर्ती गुजरात शाहाबाद और जलालपुर जट्टा का क्षेत्र ही 'केकय' कहा जाने लगा।

कालिदास ने कहा है कि केकय देश के राजा की पुत्री केकयी थी —

मगधकोसलकेकयशासिनाम्
दुहितरो हितरोपितमार्गणम् ॥[1]

केकय जनपद की राजधानी गिरिव्रज आज का जलालपुर है। वाल्मीकि रामायण में कहा गया है कि राम के राज्याभिषक से पूर्व भरत और शत्रुघ्न केकय देश की राजधानी गिरिव्रज या राजगृह में ही थे[2]। यहीं पर यह सूचना भी दी गयी है कि भारत को बुलाने के लिए अयोध्या के दूतों को विपाशा नदी पार करनी पड़ी थी।[3] वाल्मीकि रामायण में महाराज अश्वपति को केकयी का पिता और युधाजित् को उनका भाई बताया गया है। कालिदास ने भी 'युधाजित्' का नामोल्लेख किया है। देखिये आगामी पृष्ठ १०५।

सिन्धुप्रदेश

केकय के पश्चिम में उसके साथ सटा हुआ है 'सिन्धु' जनपद। आज तो सिन्धुदेश का नाम लेते ही वर्तमान 'सिन्ध' प्रान्त को ही सिंधुदेश समझ लेते हैं, किन्तु प्राचीन भुवनकोषों में सिंधु और जेहलम के मध्यवर्ती पूर्वी गंधार के दक्षिण के सिंधसागर दोआब को 'सिंधु' जनपद माना जाता था।

---

१. रघुवंश, ६-१७

२. उभौ भरतशत्रुघ्नौ केकयेषु परन्तपौ।
पुरे राजगृहे रम्ये मातामहनिवेशने ॥ —वा० रामा०, अयो० का०, ६७-७

३. विष्णोः पदं प्रेक्षमाणा विपाशां चापि शाल्मलीम्। —वही ६८, १९

आज के सिन्धप्रान्त को प्राचीन साहित्य में 'सौवीर' के नाम से अभिहित किया गया है, और सिन्धु तथा सौवीर का जोड़ा दिखाया गया है।

तदनुसार कालिदास ने 'सिन्धु' जनपद की भौगोलिक स्थिति यथार्थता से दर्शायी है और कहा है कि श्रीराम ने सिंधु देश का राज्य भरत को दे दिया। भरत के मामा युधाजित् ने उन्हें ऐसा करने को कहा था—

युधाजितश्च सन्देशात् स देशं सिंधुनामकम्।
ददौ दत्तप्रभावाय भरताय भृतप्रजः ॥[1]

विष्णुपुराण में 'सैंधव' शब्द सिन्धु देशवासियों के लिए प्रयुक्त हुआ है।[2] वाल्मीकिरामायण में सिंध नदी के उत्तरी भाग के दायें-बायें दोनों तटों के क्षेत्र को 'सिंधुदेश' कहा गया है[3]।

फारसी का 'हिन्दू' इसी सिंधु शब्द से बना है। सिंधु भारत की पश्चिमोत्तरी सीमा पर बहती थी। इसके उस पार के 'पारसीक' देश से सिंध में पहुंचने का अर्थ था भारत में पदार्पण। अवेस्ता और दारा प्रथम व तृतीय के शिलालेखों में भारत के लिए 'हिन्दु' शब्द प्रयुक्त हुआ है। वेद में सातों नदियों और उनके आसपास के क्षेत्रों के लिए 'सप्तसिंधवः' शब्द प्रयुक्त है। अवेस्ता में इसे ही 'हफ्त हिन्दु' कहा गया है।

कारापथ

सिंध के दाहिने तट पर स्थित पाकिस्तान के बन्नू जिले का आधुनिक 'काराबाग' ही कालिदास का 'कारापथ' है। कालिदास ने कहा है कि श्रीराम के आदेश से लक्ष्मण ने अपने अंगद और चन्द्रकेतु नामक पुत्रों को कारापथ का अधीश्वर बनाया था—

अंगदं चन्द्रकेतुं च लक्ष्मणोऽप्यात्मसंभवौ।
शासनाद्रघुनाथस्य चक्रे कारापथेश्वरौ ॥[4]

वाल्मीकि रामायण में भी कहा गया है कि लक्ष्मण के पुत्र अंगद को

---

१. रघुवंश, १५-८७

२. सौवीराः सेंधवा हूणः शाल्वाः कोसलवासिनः। वि०पु०, २-३-१७

३. सिंधोरुभयतः पार्श्वे देशः परमशोभनः।
तं च रक्षन्ति गंधर्वाः सायुधाः युद्धकोविदाः ॥
—वा० रामा०, उ० का० १००-११

४. रघवंश, १५-९०

श्रीराम ने कारापथ का राजा बनाया।[1] साथ ही यह भी कहा गया है कि अंगद को पश्चिम की ओर भेजा गया था और उसकी राजधानी अंगदीया थी। वाल्मीकि के इस कथन से कारापथ की उपर्युक्त भौगोलिक स्थिति सुनिश्चित हो जाती है[2]।

गांधर्व-गंधार

प्राचीन 'गंधार' जनपद को गुप्त युग के आसपास 'गांधर्व देश' के नाम से भी अभिहित किया जाने लगा था। पूर्व बुद्धकाल के १६ महाजनपदों में से अन्यतम यह गंधार पूर्व और पश्चिम इन दो भागों मेंबंटा हुआ था। ये सिन्धु नद के पश्चिम और पूर्व में थे।

कालिदास ने कहा है कि भरत ने गंधार देश के निवासी गंधर्वों को युद्ध में जीतकर उनके हाथों से शस्त्र छीनकर केवल वीणा ही रहने दी—

भरतस्तत्र गंधर्वान्युधि निर्जित्य केवलम्।
आतोद्यं ग्राहयामास समत्याजयदायुधम्॥[3]

आजकल का 'कंधार' प्राचीन पश्चिमी गंधार है।

पारसीक-फारस-ईरान

प्राचीन संस्कृत में ही क्यों फारसी में भो आज के 'फारस' को 'पारस' ही कहा गया है। संस्कृत तथा पुरानी फारसी के प्रथम वर्ण क त प नई फारसी में द्वितीय ख थ फ में परिवर्तित हो गये। फारसी के शेखसादो कृत 'गुलिस्ता' आदि मध्यकालीन ग्रन्थों में 'फारस' के स्थान पर 'पारस' शब्द ही प्रयुक्त हैं। हमारे यहां पारस निवासियों को 'पारसीक' कहा जाता था। कालिदास ने कहा है कि अपरान्त विजय के पश्चात् रघु 'पारसीकों' (पारस के लोगों तथा जनपदों) पर विजय प्राप्त करने के लिए स्थल मार्ग से चल पड़े—

पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना।[4]

अन्यत्र कवि ने पारसीकों को 'पाश्चात्य' भी कहा है—

संग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्यैरश्वसाधनैः।[5]

---

१. वा० रामा० उ० का०, १०२-५
२. अंगदं पश्चिमां भूमिं चन्द्रकेतुं मुदङ्मुखम्। —वही, १०२-११
३. रघुवंश, १५-८८
४. रघुवंश, ४-६०
५. वही, ४-६२

विष्णुपुराण में राम (रोमानिया) के साथ पारसीक देश का भी परिगणन किया गया है[1]।

वनायु

संस्कृत साहित्य में वनायु देश के घोड़ों की चर्चा अनेकत्र आई है। हलायुध ने अपने कोश में 'पारसीकाः वनायुजाः' कह कर 'वनायु' को फारस या ईरान का पर्यायवाचक माना है।
कालिदास ने 'वनायु' देश के घोड़ों की चर्चा की है—

निद्रां विहाय वनजाक्ष वनायुदेश्याः।[2]

कम्बोज-हिंदुकुश से पामीर तक का क्षेत्र

काश्मीर के उत्तर से लेकर हिंदुकुश पर्वत-शृंखला तथा पामीर के पठार के आसपास के क्षेत्रों को कम्बोज और वहां के निवासियों को संयुक्त रूप से 'काम्बोज' कहा जाता था। जहां परकाम्बोज का पृथक् उल्लेख हो वहाँ 'कम्बोज' से हिन्दुकुश तक फैला काश्मीर का पश्चिमोत्तरी प्रदेश और 'परमकम्बोज' से पामीर का पठार व चीनी तुर्किस्तान सीक्यांग प्रदेश का ग्रहण होता था।

कालिदास ने कहा है कि 'वंक्षुनद' पर हूणों को परास्त कर रघु की सेनाएँ कम्बोज पहुंची थी। 'हाथियों के बांधने के कारण झुके हुए अखरोटों के साथ ही काम्बोज लोग भी रघुके प्रताप को न सह कर उनके सामने झुक गए—

'काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वराः।
गलाक्षानपरिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्धमानताः ॥[3]

संस्कृत साहित्य में कम्बोज और वहां के निवासी काम्बोजों का उल्लेख अनेकत्र मिलता है। यास्क ने कहा है कि सामान्यतया भाषाओं में प्रकृति और विकृति (धातु के क्रिया रूप और उससे निष्पन्न संज्ञा और विशेषण आदि) दोनों का प्रचलन रहता है। किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कहीं प्रकृति का ही प्रचलन रहता है और 'विकृति' का नहीं, तो कहीं 'विकृति

---

१. मद्रा रामास्तथाम्बष्ठाः पारसीकादयस्तथा।—वि०पु० २-३-१७
२. रघुवंश, ५-७३
३. रघुवंश, ४-६९

ही बच पाती है। जबकि उसकी प्रकृति किसी और क्षेत्र में प्रचलित रह जाती है। जैसे कि गत्यर्थक 'शव्' धातु कम्बोज में प्रचलित है। आर्यों में उस 'शव्' धातु की विकृति 'शवः' तो प्रयुक्त है किन्तु धातु नहीं। कम्बोज की व्युत्पत्ति बताते हुए यास्क ने कहा है, कि ये लोग शीतप्रधान देश होने के कारण कम्बलों का अधिक प्रयोग करते हैं, अथवा इनके उपभोग्य पदार्थ-अखरोट, बादाम, अंगूर आदि मेवे बड़े कमनीय हैं, इसलिए इन्हें 'कम्बोज' कहा जाता है[1]। इससे स्पष्ट है कि यास्क के समय में भी पारसीक, वाल्हीकि और कम्बोज तक के क्षेत्रों में संस्कृत की विभाषाएँ ही बोली जाती थीं। आज भी फारसी में शव् धातु 'शूदन-शवद' (होना) सुप्रयुक्त है।

३. उदीच्य क्षेत्र के नगर, तीर्थ, आश्रम

कालिदास ने उदीच्य-पश्चिमोत्तर क्षेत्र के कछ नगर, तीर्थ व आश्रमों का भी उल्लेख किया है। तक्षशिला, पुष्कलावती इन ऐतिहासिक नगरों के सिवा कैलासपर्वत के पास बसी अलका और हिमालय की नगरी औषधिप्रस्थ की भी चर्चा की है।

तक्षशिला

पूर्वी गंधार की राजधानी तक्षशिला का पश्चिमोत्तरी क्षेत्र में अपना एक विशेष स्थान रहा है। बौद्ध-युग में और उसके बाद भी तक्षशिला की गणना भारत के प्रमुख शिक्षा-केन्द्र के रूप में की जाती थी। रावलपिण्डी से १८ कि०मी० पश्चिमोत्तर में इसके खण्डहरों की खोज सन् १९०३ में जनरल कनिंघम ने की थी। सर जान मार्शल ने सन १९११ से २५ तक उसकी व्यापक खुदवाई करवा कर सिरकप, सिरमुख तथा भीर का टीला नामक तक्षशिला के तीन प्राचीन नगर ढूंढ निकाले थे, जो एक के बाद एक करके बसे हुए थे।

कालिदास ने कहा है कि भरत ने अपने तक्ष और पुष्कल नामक पुत्रों को इन्हीं के नाम पर बसाई गई राजधानियों का शासक नियुक्त कर दिया। इसके बाद वे स्वयं श्रीराम के पास लौट आए—

स तक्षपुष्कलौ पुत्रौ राजधान्योस्तदाख्ययोः।
अभिषिच्याभिषेकार्हौ रामान्तिकमगात्पुनः॥[2]

---

२. निरुक्त, २-१

१. रघुवंश, १५-८९

वाल्मीकि रामायण में स्पष्ट रूप से तक्षशिला और पुष्कलावती नगरियों का नामोल्लेख हुआ है[1]। पाणिनि ने तक्षशिला के पश्चिमोत्तर में उद्भाण्डपुर ओहिंदपुर से १० कि० मी० दूर शलातुर ग्राम के निवासी थे। शलातुर को आजकल 'लहुर' कहा जाता है। पाणिनि भी तक्षशिला का उल्लेख किया है।[2]

पुष्कलावती

पेशावर के लगभग ४० कि० मी० पूर्वोत्तर में स्थित वर्तमान चारसद्दा ही प्राचीन पुष्कलावती है। इसके पास ही 'पुकेलावती' गांव भी विद्यमान है। यह 'पुकेलावती' नाम पुष्कलावती का ही अपभ्रंश है। यह नगरी सुवास्तु (स्वात्) और कुभा (काबुल) के संगम पर बसी हुई है। इस समय यहां बाला हिसार (बड़ा किला) या मीर जियारत भी है। आजकल कुभा और सुवास्तु का संगम कुछ पश्चिम में हट गया है।

कालिदास ने पुष्कलावती की चर्चा तक्षशिला के साथ ही जिस श्लोक में की है, उसे ऊपर उद्धृत कर दिया गया है। वाल्मीकिरामायण का प्रसंग भी ऊपर उद्धृत है।

अलका

कालिदास ने मेघदूत में अलका को यक्ष-नगरी बताते हुए कहा है—

गन्तव्या से वसतिरलका धाम यक्षेश्वराणाम्।[3]

कवि ने अन्यत्र भी कहा है कि अलका में यक्षगण अपनी पत्नियों के साथ भवनों के सुन्दर मणिकुट्टिमों में बैठे दिखाई देते हैं—

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः।[4]

कालिदास के यक्ष की यह अलका कहां थी इसके बारे में कवि ने बताया है कि अलकापुरी कैलास पर्वत की गोद में ऐसे ही वैठी है जैसे प्रियतमा अपने प्यारे की गोद में बैठी हो। उसके साथ ही गंगा बह रही है, जैसे कामिनी के

---

१. तक्षं तक्षशिलायां तु पुष्कलं पुष्कलावतेः।
—वा०रामा०, उ०का० १०१-११

२. सिंधुतक्षशिलादिभ्योऽणयौ—अष्टाध्यायी, ४-३-९३

३. मेघदूत, पूर्वमेघ ७

४. वही, उत्तरमेघ, ५

शरीर से सफेद साड़ी सरक रही हो। तुम अलकापुरी को देखते ही उसे पहचान न लोगे, ऐसी बात नहीं है। क्योंकि अलका के भवनों पर बरसात में बरसते हुए बादल ऐसे छाए रहते हैं जैसे सुन्दरियों के सिर पर मोतियों से गूंथे हुए जूड़े हों—

तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्॥[1]

अलका के साथ ही मंदाकिनी प्रवाहित हो रही है—

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि-
र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णा।[2]

आगे कहा गया है कि यक्ष की बातें सुनकर मेघ रामगिरि से चलकर अलका पहुंच गया—

तस्मादद्रेर्निगदितमथो शीघ्रमेत्यालकायाम्।[3]

उक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कालिदास की अलका कैलास पर्वत की गोद में बसी हुई थी।

औषधिप्रस्थ

कालिदास ने हिमालय की राजधानी के रूप में औषधिप्रस्थ का जो भव्य वर्णन किया है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि गंगा की उद्गम धाराओं से घिरा हुआ यह नगर यक्ष, किन्नर आदि जन-जातियों का निवास स्थान था। इसके आसपास के क्षेत्र में सदा अनेक प्रकार की औषधियां जगमगाती रहती थीं और यहां सर्वदा बादल छाए रहते थे। यह अलका से थोड़ी दूर पर बसा हुआ था और गंधमादन उपवन भी इसके पास में था। इस नगर की चर्चा कुमार सम्भव के निम्न स्थलों में हुई है—

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ, ६७
२. उत्तरमेघ-६
३. मेघदूत, उत्तरमेघ-५९

तत्प्रयातौषधीप्रस्थं सिद्धये हिमवत्पुरम् ।[१]

आसेदुरौषधिप्रस्थं मनसा समरहंसः ।[२]

अलकामतिबाह्यैव वसतिं वसुसम्पादम् ।
स्वर्गाभिष्यन्दवसनं कृत्वेवोपनिवेशितम् ॥[३]

गंगास्रोतं परिक्षिप्तं वप्रान्तर्ज्वलितोषधि ।
बृहन्मणिशिलासालं गुप्तावपि ? मनोहरम् ॥[४]

आगे कहा गया है कि औषधिप्रस्थ में रात में चमकती हुई जड़ी-बूटियां सारे वातावरण को प्रकाशित करती रहती थीं, इसलिए वहां की अभिसारिकाओं को घने बादलों से ढकी काली रातों का पता ही नहीं चल पाता था—

यत्रौषधिप्रकाशेन नक्तं दर्शितसंचराः ।
अनभिज्ञास्तमिस्त्राणां दुर्दिनेष्वभिसारिकाः ॥[५]

यह भी बताया गया है कि औषधिप्रस्थ की सुन्दरियों की मीठी-मीठी बातें सुनते हुए शिवजी हिमालय के अन्तःपुर में पहुंचे—

इत्योषधिप्रस्थविलासिनीनां श्रृण्वन्कथाः श्रोत्रसुखस्त्रिनेत्रः ।[६]

कह नहीं सकते कि ओषधिप्रस्थं कोई कल्पित नगर है, या ऐसा कोई सुन्दर नगर वास्तव में कहीं रहा था।

मारीच आश्रम

उदीच्य क्षेत्र के अन्तर्गत कवि ने मरीच ऋषि के पुत्र मारीच, प्रजापति कश्यप के हिमालय में स्थित आश्रम का वर्णन अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक के सप्तम अंक में किया है। इसके बारे में कहा गया है कि यह किंपुरुष वर्ष के हेमकूट पर्वत पर स्थित है और संसिद्ध क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। हेमकूट का विवेचन अन्यत्र किया गया है।[७]

सोमतीर्थ

कालिदास ने कहा है कि दुष्यन्त जब महर्षि कण्व के आश्रम में गए थे, उस समय कुलपति कण्व अतिथि सत्कार का काम शकुन्तला को सौंप कर स्वयं उसके अशुभ ग्रहों की शान्ति के लिए सोमतीर्थ गए थे :—

---

१. १ से ६ तक क्रमशः—कुमारसंभव, षष्ठ सर्ग, ३३, ३६, ३७, ३८ और ४३ व ६९
६ से ७. देखिये पृष्ठ ११६

वैखानसः—इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः।[1]

यह स्पष्ट नहीं है कि यह सोमतीर्थ कौन सा है। महाभारत में कुरुक्षेत्र के पास एक सोमतीर्थ बताया गया है।[2] गुजरात के प्रभास पट्टन का विख्यात सोमनाथ भी सोमतीर्थ कहा गया है। उस युग में अनिष्ट ग्रह की शान्ति के लिए कण्व का निकटवर्ती कुरुक्षेत्र के सोमतीर्थ में जाना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। कण्वाश्रम से गुजरात के सोमनाथ तक आने जाने में तीन चार मास से कम न लगते। इतने दिनों तक कुलपति का आश्रम से अनुपस्थित रहना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता।

४. उदीच्य क्षेत्र के पर्वत

कालिदास ने उदीच्य क्षेत्र के सुमेरु, कैलास, हेमकूट और हिमालय इन चारों की चर्चा की है, तथा निषध या मन्दर (हिन्दुकुश) का संकेत दिया है।

सुमेरु

'मेरु' या 'सुमेरु' यह अभिधान पौराणिक भुवन कोषों में निम्न दो भू-खण्डों के लिये प्रयुक्त हुआ है—

१. पामीर।

२. साईबेरिया के उत्तरवर्ती नार्वे, डेनमार्क आदि स्केन्डेनेवीय प्रदेश।

(१) विष्णुपुराण में इस मेरु को 'कनकपर्वत' कहा गया है और बताया गया है कि जम्बूद्वीप (एशिया) सातों महाद्वीपों के बीच में स्थित है और 'मेरु' जम्बूद्वीप के मध्यभाग में स्थित है[3]। कूर्मपुराण में भी स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि जम्बूद्वीप इन सातों महाद्वीपों के बीचोंबीच स्थित है और स्वर्णोज्ज्वल महामेरु जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित है[4]। यहां यह भी स्पष्ट कर

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-१३

२. महाभारत, शल्यपर्व ४१-५२

३. विष्णु पु०, २-२-२७

४. जम्बूद्वीपः समस्तानां मध्ये चैव व्यवस्थितः।
तस्य मध्ये महामेरुर्विश्रुतः कनकप्रभः॥
—विष्णु पु० २-२-७, कूर्म पु०, ४५-६

दिया गया है कि हिमवान्, हेमकूट और निषध (हिन्दुकुश) पर्वत इस सुमेरु पर्वत के दक्षिण में हैं और सुमेरु के उत्तर में नील, श्वेत और शृंगी पर्वत हैं[1]। साथ ही यह भी बता दिया गया है कि यदि इस भूमण्डल और उस पर स्थित द्वीपों को कमल की सात पंखुड़ियों के रूप में अंकित किया जाय तो सुमेरु की स्थिति इसकी मध्यवर्ती कर्णिका के रूप में बताई जा सकती है। वर्तमान एशिया महाद्वीप ही जम्बूद्वीप है और इस जम्बूद्वीप के ठीक बीचोंबीच स्थित होने के कारण सूर्य मानो अपनी दैनन्दिन और वार्षिक इन द्विविध गतियों के कारण सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करता सा प्रतीत होता है। जैसा कि द्वितीय अध्याय में कहा जा चुका है, आधुनिक पामीर ही मेरु'[3] है। यह समस्त प्रदेश अपनी सुवर्णराशि के लिए प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा है। इसीलिये इसे हेमाद्रि[4] (सुवर्ण पर्वत) भी कहा गया है। सुमेरु से पूर्व की ओर बहने वाली नदी सीता आधुनिक यारकंद है, जिसे चीनी भूगोल में 'से तो' कहा जाता था। सुमेरु के पश्चिम की ओर बहने वाली नदी को 'वंक्षु', इक्षु या चक्षु भी कहा गया है। 'वंक्षु' वर्तमान औक्सस नदी है। सीता और वंक्षु के उद्गम जिस बीच के पर्वत में थे, उस मध्यवर्ती मेरु की पहचान पामीर से ही संगत होती है। सुमेरु के पूर्व में देवकूट (थिएनशन) और जठर पर्वत, दक्षिण मे हिमवान् और कैलास पर्वत, पश्चिम में निषध और पारियात्र तथा उत्तर में शृंगवान् और जारुधि हैं।

कालिदास ने इसी मेरु या सुमेरु का अनेकत्र उल्लेख किया है। मेरु का वर्णन करते हुए कवि ने रघुवंश में कहा है कि महाराज दिलीप ने अपने अनु-

---

१. हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे।
नीलः श्वेतश्च शृंगी च उत्तरे वर्षपर्वताः॥
—विष्णु पु० २-२-११, कूर्म पु०, ४५-६

२. भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकात्वेन संस्थितः।
—विष्णु पु० २-२-१०, कूर्म पु०, ४५-८

३. पाजेब (पांव की शोभा) पामाल (पांव से मला या मसला गया) जैसे शब्दों के ही समान फारसी का 'पा-मीर' < पादमेरु ही है। फारसी में 'ए' का उच्चारण 'ई' भी किया जाता है और अन्त्य 'इ' 'उ' घिस जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि सं. 'पादमेरु' ही फारसी में पामीर बन गया।

४. मेरुः सुमेरुर्हेमाद्रीरत्नसानुः सुरालयः।
—अमरकोष, १-१-४६

पम तेज से सारी पृथ्वी को ऐसे व्याप्त कर लिया था, जैसे सुमेरु पृथ्वी को व्याप्त किए हुए है :—

स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना ।[1]

यहाँ कवि पुराणप्रतिपादित उपर्युक्त भौगोलिक तथ्य को ही अपने शब्दों में दुहरा रहा है कि—जैसे कर्णिका अपनी मध्यस्थिति के कारण कमल की सभी पंखुड़ियों में व्याप्त होती है, वैसे ही मेरु भी भूमण्डल(के सातों द्वीपों) के बीचो-बीच स्थित हैं।

दिन और रात सुमेरु की परिक्रमा करते रहते हैं, यह भौगोलिक तथ्य कालिदास के सामने इतना स्पष्ट था और यह बात बताना उसे इतना अच्छा लगता था कि इस तथ्य को प्रतिपादित करने वाला एक ही श्लोक उसने रघुवंश और कुमारसंभव दोनों में ज्यों का त्यों रख दिया। श्लोक है—

मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमान-
मन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्[2]।

मेरु और हिमालय की पृथक् स्थिति

सुमेरु हिमालय का कोई प्रदेश या शिखर नहीं है, अपितु इससे सर्वथा भिन्न है, जो इसके उत्तर में स्थित है।

कुमारसंभव के अष्टम सर्ग में कालिदास ने मेरु को हिमालय से पृथक् बताते हुए कहा है कि भगवान् शंकर ने विवाह के बाद एक मास तो हिमालय पर ही बिताया, उसके बाद वहाँ से वे मेरु पर चले गए—

शैलराजभवने सहोमया
मासमात्रमव सद्वृषध्वजः ।
सोऽनुमन्य हिमवन्तमात्मभूः
मेरुमेत्य मरुदाशुगोक्षकः ॥[3]

सुमेरु पर्वत से वे वापस कैलाश पर आ गए।

महाभारत के भीष्मपर्व के दूसरे अध्याय में सुमेरु की गणना शाकद्वीप (आधुनिक सीस्तान) के पर्वत के रूप में करते हुए इसकी भौगोलिक स्थिति का परिचय बिल्कुल सही रूप से मध्य एशिया में दिया गया है।

---

१. रघुवंश, १-१४
२. वही, ७-२४ और कुमारसंभव, ७-७६
३. कुमारसंभव, ८-२०

महाभारत एवं पुराणों में जम्बूद्वीप या एशिया के मध्यवर्ती सुमेरु, उसके दक्षिण में हिमवान्, दक्षिण-पश्चिम में शकस्थान(सीस्तान) तथा निषध (हिन्दुकुश) और हेमकूट आदि की सापेक्ष भौगोलिक स्थिति सही सही दर्शाई गई है।

(२) दूसरा 'सुमेरु' प्रदेश आधुनिक स्कैन्डेनेविया है। विष्णुपुराण में कहा गया है कि यह द्वीप सातों द्वीपों और वर्षों के धुर उत्तर में स्थित है[1] और यह भी कि यहाँ या तो दिन ही रहता है या रातें ही रहती हैं[2] तथा सूर्य के प्रभा मंडल से यहाँ रातें भी सदा जगमगाती रहती हैं। वाल्मीकिरामायण में भी स्पष्ट रूप से बताया गया है कि वह हेमाद्रि प्रदेश सूर्य के न रहने पर भी उसकी प्रभा से सदा प्रकाशित रहता है।[3] उत्तर कुरु (वर्तमान रूस तथा साइबेरिया) के उत्तर में स्थित इस सुमेरु को महाभारत में 'महामेरु' भी कहा गया है।

हेमकूट

हेमकूट पर्वत का उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्य व पुराणों में अनेकत्र हुआ है। कूर्मपुराण के पूर्वोक्त उद्धरण में हेमकूट की स्थिति हिमालय और सुमेरु के मध्य निर्दिष्ट है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यन्त मातलि से पूछता है—

राजा—मातले कतमोऽयं पूर्वापरसमुद्रावगाहः कनकरसनिस्यन्दी सांध्य इव मेघपरिघः सानुमानालोक्यते।

मातलिः—आयुष्मन् एषः खलु हेमकूटो नाम किंपुरुषपर्वतस्तपः-संसिद्धिक्षेत्रम्।[4]

(यह पूर्वसागर और अपरान्त समुद्रों के बीच फैला हुआ, सुनहरी

---

१. तस्माद्दिश्युत्तरस्यां वै दिवारात्रिः सदैव हि।
सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतो यतः॥

२. प्रभा विवस्वतो रात्रावस्तं गच्छति भास्करे।
विशत्यग्निमतो रात्रौ वह्निर्दूरात्प्रकाशते॥
—विष्णुपुराण २-८-२२-२३

३. स तु देशो विसूर्योऽपि तस्य भासा प्रकाशते।
—वा० रामा० किष्किंधाकाण्ड, ४३,५५

४. विक्रमोर्वशीय १-५

धारा बहाने वाला और सांध्य मेघों की दीवार की भाँति ऊँचा उठा हुआ कौन सा पर्वत दिखाई दे रहा है?

मातलि—यह हेमकूट नामक पर्वतशिखर है, जिस पर किन्नर लोग रहते हैं और जहाँ तपस्या करने वाले को शीघ्र सिद्धि प्राप्त हो जाती है।)

कालिदास ने विक्रमोर्वशीय में भी अन्यत्र हेमकूट का उल्लेख करते हुए कहा है कि कुबेरभवन से लौटती हुई उर्वशी और चित्रलेखा को कोई दानव ले उड़ा। पुरूरवा के पूछने पर उसकी सहेली कहती है कि हम आपकी प्रतीक्षा हेमकूट शिखर पर करेंगी—

एतस्मिन् हेमकूटशिखरे।[1]

इसके बाद उर्वशी को लेकर हेमकूट शिखर पर लौटते हुए पुरूरवा ने उसे बताया—

एताः सुतनु मुखम् ते सख्यः पश्यन्ति हेमकूटगताः।[2]

इस प्रकार कवि ने हेमकूट के बारे में जो संकेत दिए हैं, उनके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कवि का हेमकूट कुबेरभवन या अलकापुरी के कहीं आसपास ही है। और यह किन्नर तथा यक्ष आदि जातियों का निवासस्थान है। तपस्वीगण यहाँ तपस्या करते हैं और यह कुबेर की अलकापुरी, कैलास, मानसरोवर के निकट ही है। कालिदास ने कुमारसंभव में कैलाश के पर्यायों में 'कुबेरशैल' और 'एकपिंगलगिरि' इन दो शब्दों का भी प्रयोग किया है। कुबेर की राजधानी कैलास पर थी। अतः स्पष्ट है कि 'हेमकूट' कैलास के दक्षिण में स्थित हिमालय की उत्तरी पर्वत-श्ंखला है।

कैलास—

कालिदास का यक्ष मेघ से कहता है कि तब तुम उस कैलास पर्वत पर पहुंच जाओगे जिसके कुमुदोज्ज्वल शिखर आकाश में ऐसे फैले हुए हैं। मानो वे भगवान् शंकर के अट्टहास के मूर्तरूप हों। उन पर पड़ी हुई चमकीली बर्फ में देवांगनाएँ अपना मुख देखा करती हैं। इसी प्रकार कवि आगे कहते हैं कि—

---

१. विक्रमोर्वशीय, १-५
२. वही, १-१२

रावण ने अपने भुज-बल से इस कैलास के जोड़-जोड़ हिला दिये थे :—

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।
शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविषदैर्यो वितत्य स्थितः खम्
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥[1]

कैलास की यात्रा करने वाले यात्रियों ने हिमधवल कैलास के जो चित्र प्रस्तुत किए हैं, वे सब कालिदास द्वारा प्रस्तुत कैलास के उक्त चित्र की ही मानो प्रतिलिपि प्रस्तुत करते हैं।

वाल्मीकि ने सीधे सादे शब्दों में बताया है कि कैलास शुभ्रवर्ण है।[2] कालिदास यही तथ्य 'जो कैलास अपने कुमुद-शुभ्र शृंगो से भगवान् शंकर के अट्टहास की ढेरी के जैसा लगता है,' के द्वारा अलंकृत रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

महाभारत में भी अनेकत्र कैलास की चर्चा है।[3]

मन्दराचल

कवि ने कुमारसंभव के अष्टम सर्ग के—

'मन्दरस्य कटकेषु चावसत्' आदि २३वें श्लोक में मन्दर की चर्चा करते हुए इसकी स्थिति सुमेरु और कैलास के बीच बताई है। क्योंकि भगवान् शंकर पहले हिमालय से सीधे सुमेरु (पामीर) पहुंचे थे। वहां से वापसी में वे पहले 'मन्दर' के 'कटकों' (टीलों) पर रुके और वहां से आगे बढ़ते हुए कैलास पर पहुंचे थे।

हिमालय

वेदों में हिमालय के लिए 'हिमवान्' का बहुवचन रूप 'हिमवन्तः'[4]

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ, ६२

२. कैलासं पाण्डुरं प्राप्य हृष्टा यूयं भविष्यथ।
—वा० रामा० किष्किंधाकाण्ड, ४३-२०

३. अस्यातिक्रम्य शिखरं कैलासस्य युधिष्ठिर।
गतिः परमसिद्धानां देवर्षीणां प्रकाशते ॥
—महा०भा० वन०, १५९-२४१

अनेकत्र प्रयुक्त है।[1] महाभारत में भी इसी हिमवान् शब्द का प्रयोग हुआ है।[2] लगता है कि 'हिमवान्' का 'हिमालय' नामकरण सम्भवतः कालिदास ने ही किया। उसी ने कुमारसंभव के प्रथम श्लोक में इस पर्वतराज को 'हिमालय' के नाम से अभिहित किया, तो यही नाम चल निकला।

कवि ने हिमालय की सीमा निर्धारित करते हुए कुमारसंभव में बताया है कि हिमालय बगाल की खाड़ी से अरब सागर तक अथवा पश्चिम में हिंदुकुश पर्वत और सिंधु नदी से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी या असम तक फैला हुआ है। इसी प्रकार हिमालय दक्षिण में अपनी उपत्यकाओं में स्थित कनखल और हस्तिनापुर से आरम्भ होकर उत्तर में कैलास तक व्याप्त है। कालिदास द्वारा निर्धारित हिमालय की पूर्व-पश्चिम और उत्तर दक्षिण की ये सीमा-रेखाएं हिमालय के मानचित्र को प्रामाणिकता से प्रस्तुत करती हैं।

हिमालय के भौगोलिक वैशिष्ट्य

कालिदास ने हिमालय की प्रमुख विशेषताएं एक साथ बताते हुए कहा है—

धातुताम्राधरः प्रांशुर्देवदारुबृहद्भुजः।
प्रकृत्यैव शिलोरस्कः सुव्यक्तो हिमवानिति ॥[3]

अर्थात् (मुनियों ने देखते ही पहचान लिया कि) गेरु आदि धातुओं की चट्टानों के लाल होंठों वाला, देवदार वृक्षों की विशाल भुजाओं वाला और शिलाओं की चौड़ी छाती वाला यह हिमालय ही है।

यहां कालिदास ने हिमालय को खनिज-सम्पदा, वानस्पतिक समृद्धि, पथरीली चट्टानें तथा हिमराशि इन चारों भौगोलिक वैशिष्ट्यों को सूत्रबद्ध कर दिया है।

हिमसंघात

हिमवान्, हिमालय, हिमाचल, या हिमाद्रि नाम लेते ही इसकी जिस प्रमुख विशेषता की ओर ध्यान जाता है, वह हिम ही तो है। कालिदास ने

---

१. ऋग्वेद, अथर्ववेद, १२-१-१-१४

२. उपर्युपरि शैलस्य बह्वीश्च सरितः शिवाः।
पृष्ठं हिमवतः पुण्यं ययौ सप्तदशेऽहनि ॥
—महा० वन०, १५८-१८

३. कुमारसंभव, ६-५१

हिमालय के इस प्रमुख भौगोलिक वैशिष्ट्य की अनेकत्र चर्चा की है। जैसे—

हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।[1]

कह कर यह संकेतित किया है कि हिमालय की 'अन्तर्गिरि' पर्वत-शृंखला आद्यन्त हिमाच्छादित है। इसी प्रकार—

पदं तुषारस्रुतिधौतरक्तम्।[2]

आदि के द्वारा भी कवि ने बताया है कि जिन भूभागों पर सदा बर्फ जमी रहती है, वहां भी हाथी और सिंह आदि वन्य जीव-जन्तु सानन्द विचरते हैं। यही बात आगे—

मार्गे शिलीभूतहिमेऽपि यत्र।[3]

के द्वारा कही गयी है और बताया गया है कि हिमालय में किन्नर स्त्रियों को बर्फ की जमी हुई इन कठोर चट्टानों पर चलने का खूब अभ्यास है। और यह भी कि भगवान् शंकर का गर्वीला बैल नन्दी अपने खुरों से हिमालय की बर्फ की चट्टानों को खूंदता रहता है—

तुषारसंघातशिलाः खुराग्रैः
समुल्लिखन्दर्पकलः ककुद्मान्।[4]

मेघदूत में भी कवि ने उस हिमधवल पर्वतशृंखला का वर्णन किया है, जहाँ से गंगा प्रकट होती है—

तस्या एव प्रभवमचलम् प्राप्य गौरं तुषारैः।[5]

गौरीशिखर

हिमालय का सर्वप्रमुख भौगोलिक वैशिष्ट्य है—'गौरीशिखर' या 'एवरेस्ट'। यह संसार भर में सर्वोच्च पर्वत-शिखर है। कालिदास ने हिमालय के इस 'गौरीशिखर' शृंग का वर्णन करते हुए कहा है…

जगाम गौरीशिखरं शिखण्डिमत्।[6]

---

१. कुमारसंभव, १-३
२. वही, १-६
३. वही, १-११
४. वही, १-५६
५. मेघदूत, पूर्वमेघ, १-५६
६. कुमारसंभव, ५-७

अर्थात्—पार्वती तपस्या करने के लिए गौरीशिखर पर चली गयी। महाभारत में भी गौरीशिखर का वर्णन मिलता है।[1]

रन्ध्र या दर्रे

उदीच्य क्षेत्र के पश्चिमोत्तर में स्थित पर्वत-शृंखला पार कर पारसीक, कम्बोज, तिब्बत, कैलास और मानसरोवर आदि पड़ोसी क्षेत्रों में आने जाने के लिए कई दर्रे हैं। दर्रा शब्द फारसो के दर्रा दर+रा इन दो शब्दों के योग से बना है जिसका अर्थ है दर—राह 'द्वार-मार्ग'। फारसी का यह दर स्वयं भो संस्कृत के द्वार से विकसित है। अंग्रेजी डोर भी यही है। संस्कृत में, पहाड़ों के आर-पार जाने के लिए बने इन दर्रों के लिए, एक पारिभाषिक शब्द 'रन्ध्र' का प्रयोग हुआ है। कालिदास ने 'क्रौंचरन्ध्र' का उल्लेख मेघदूत में किया है। कवि मेघ को अलका का मार्ग बताते हुए कहता है—

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषान्
हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौंचरन्ध्रम्।[2]

अर्थात् हिमालय पर्वत के आसपास के रमणीय प्रदेशों में परशुराम जी के द्वारा बनाए गए 'हंसद्वार', 'क्रौंचरन्ध्र' में से होकर तुम हिमालय के पार चले जाने पर कैलास पर जा पहुंचोगे।

यहाँ कवि ने भौगोलिक दृष्टि से चार महत्त्वपूर्ण तथ्य एकसाथ प्रतिपादित किए हैं। पहला तो यह कि दर्रे के लिए प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द 'रन्ध्र' के साथ दर्रा शब्द के पूर्व पद फारसी 'दर' का मूलरूप 'द्वार' भी संस्कृत में दर्रे के लिए प्रयुक्त होता था। इसलिए कवि ने क्रौंच-रन्ध्र के साथ उसका दूसरा पर्याय 'हंसद्वार' भी दे दिया है। दूसरा यह कि क्रौंच-रन्ध्र किसी ऐसे स्थान पर था जहाँ प्रायः बर्फ जमी रहती थी।

कालिदास के इस 'क्रौंचरन्ध्र' को कुछ विद्वानों ने नीतिदर्रा माना है। किन्तु वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि यह कैलास तक जाने का प्रधान-मार्ग 'लीपूलेख दर्रा' ही कालिदास का क्रौंचरन्ध्र है[3]। तीसरा यह कि यह दर्रा हिमालय से कैलास की ओर जाने के लिए प्रयुक्त होता था। कवि ने मेघ को इसी क्रौंचरन्ध्र से पार होकर कैलास पर पहुंचने का मार्ग दिखाते हुए

---

१. महा भा०वन०, ८४-१५१
२. मेघदूत, पूर्वमेघ-६१
३. वही, वासुदेव शरण अग्रवाल कृत अनुवाद पृ० २३६

यही भौगोलिक तथ्य प्रतिपादित किया है। चौथा यह कि मध्य एशिया या इससे भी आगे साइबेरिया तक लम्बी उड़ान भरने वाले हंस जाति के पक्षी इसी क्रौंच-रन्ध्र से होकर भारत तक आया जाया करते थे। और आज भी आते-जाते हैं। इसीलिए इसे यह सार्थक नाम दिया गया था।

वाल्मीकिरामायण में कहा गया है कि सुग्रीव ने वानर सेना को सीता के अन्वेषणार्थ कैलास की ओर भेजते हुए क्रौंचरन्ध्र के बारे में बताया था।[1] यहीं क्रौंच के द्वारमार्गों, शिखरों और उपत्यकाओं के बारे में भी बताया गया है।[2]

५. उदीच्य क्षेत्र का नदियाँ

कालिदास ने उदीच्य क्षेत्र की नदियों में हिमालय से उद्गत भिद्य और उद्धच रावी की सहायक इन दो छोटी पर्वतीय नदियों का अप्रस्तुत रूप में विधान करने के साथ ही पश्चिमी सीमावर्ती सिंधुनद, सुमेरु या पामीर के पठार से निकलने वाली बलख के पश्चिमोत्तर में प्रवाहित मध्य एशिया की 'वंक्षु' तथा कैलास के पादमूलोद्गत मन्दाकिनी एवं हिमालयवाहिनी गंगा की चर्चा की है।

भिद्य और उद्धच

छोटी सी पहाड़ी उद्धच या उज्झ जम्बू क्षेत्र के जसरोटा जिले से प्रवाहित होकर गुरुदासपुर जिले में रावी से जा मिलती है। आजकल वई के नाम से जानी जाने वाली भिद्य भी जम्मू क्षेत्र में ही उद्धच से २४ कि०मी० पश्चिम में प्रवाहित होकर उज्झ के पास ही रावी में मिलती है। **'भिनत्ति कूलम्' इति भिद्यः** और **'उज्झति उद्गमम्'** इति उद्धचः', इन व्युत्पत्तियों के अनुसार अपने किनारो को तोड़ कर बहते रहना इन दोनों पहाड़ो नदियों का विशेष उल्लेखनीय स्वभाव है। इसी कारण इनका नाम भी भिद्य और उद्धच रखा गया था।

---

१. क्रौंचन्तु गिरिमासाद्य बिलं तस्य सुदुर्गमम्।
अप्रमत्तैः प्रवेष्टव्यं दुष्प्रवेशं ही तत् स्मृतम्॥
—वा० रामा०, किष्किं०, ४३-२०

२. क्रौंचस्य तु गुहाश्चान्याः सानूनि शिखराणि च।
दर्दराश्च नितम्बाश्च विचेतव्यास्ततस्ततः॥ —वही, ४३-२७
फारसी 'दर्रा' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के इस 'दर्दर' 'दृ-विदारणे' फारसी 'दरीदन्' चीरना-फाड़ना से भी हो सकती है।

यह ठीक है कि भिद्यव-उद्धच जैसे दो छोटे नदों या कुनदिकाओं का कालिदास के द्वारा अपनी कृति में राम लक्ष्मण के उपमान के रूप में उल्लेख अवश्य एक असाधारण सी बात है। जहाँ इसका सम्पूर्ण श्रेय पाणिनि और उनकी अष्टाध्यायी के **'भिद्योद्धचौ नदे'**[1] सूत्र को जाता है, वहाँ दूसरी ओर इन दोनों के सार्थक नामों ने भी कवि को अपनी ओर आकृष्ट किया है। राज-महलों के अहर्निश या अष्टयाम की नियमित क्रियाओं और परिपाटियों के परिपालन में जकड़े रहने वाले बालक राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र मुनि के साथ चलते हुए उन्मुक्त वातावरण में वैसे ही स्वतन्त्रतापूर्वक खेलने की छुट्टी मिल गई, मानो उमड़ते घुमड़ते भिद्य और उद्धच नदों को अपने किनारों से ऊपर उठकर बहने का यथेष्ट अवकाश मिल गया हो, सर्वथा सार्थक और सटीक है। कवि के द्वारा अप्रस्तुत रूप में भिद्य और उद्धच का यह उल्लेख :—

वीचिलोलभुजयोस्तयोर्गतं
शैशवाचपलमप्यशोभत।
तोयदागम इवोद्धचभिद्ययो—
र्नामधेयसदृशं विचेष्टितम् ॥[2]

अर्थात्—बचपन के कारण लहरों के समान चंचल बाहों वाले दोनों राजकुमारों का चुलबुलापन ऐसा सुन्दर लग रहा था मानो वर्षा ऋतु में भिद्य और उद्धच ये दोनों नदियाँ अपने नाम के अनुरूप लहराती इठलाती तटों को ढाती हुई चली जा रही हों।

भिद्य और उद्धच के प्रसंग में काशिकाकार के द्वारा उद्धृत **'भिद्येरा-वती'** आदि उदाहरण सहसा ध्यान में आ जाते हैं और इन्हीं दोनों नदियों के सहारे पाठक पंजाब के हृदय में बहने वाली नदी इरावती तक पहुँच जाते हैं।

सिन्धु

वैदिककाल से लेकर आज तक 'सिंधु' शब्द नदी और इसके दायें बायें तट के आसपास के प्रदेश, दोनों के लिए प्रयुक्त हो रहा है। कालिदास की कृतियों में 'सिंधुदेश' का विवेचन पहले किया जा चुका है। 'सिंधु' नदी की चर्चा अब यहाँ की जा रही है।

कैलास की एक शृंखला पश्चिमी तिब्बत में स्थित प्रधान हिमालय

१. अष्टाध्यायी ३-१-११५
२. रघुवंश, ११-८

श्रेणी के उत्तरी ढाल से सम्बद्ध ग्लेशियर बोखारुख से निकल कर सिंधु पहले उत्तर पश्चिम की ओर बहती है। गिलगित के पास यह दक्षिण-पश्चिम की ओर मुड़ती हुई हिमालय के पश्चिमी सीमान्त प्रदेश को पार करती है। इसके उत्तरी मार्ग में गिलगित और दूसरी नदियाँ कराकुर्रम पर्वत का हिमजल इसमें ले आती हैं। हिमालय की इस पश्चिमी शृंखला से नीचे उतरकर यह पाकिस्तान में प्रवेश करती है। इसके उद्‌गम से १३०० कि० मी० तथा मुहाने से लगभग १५०० कि०मी० दूर अटक के निकट कुभा (काबुल) तथा सुवास्तु (स्वात) का जल भी इसमें आ मिलता है। डेरा इस्माइल खां के पास क्रमु (कुर्रम) और गोमती (गोमल) भी अपनी सहायक छोटी-मोटी नदियों का जल लेकर इसमें आ मिलती हैं। यहाँ आते-आते इसके बहुत ऊंचे उठे हुए किनारे समाप्त हो जाते हैं और यह समतल में बहने लगती है। अटक से कालाबाग तक इसके जल में बहुत वेग दिखाई देता है। इसके बांयें तट से क्रमशः शतद्रु (सतलुज), विपाशा (व्यास), इरावती (रावी), चन्द्रभागा (चनाब) और वितस्ता (जेहलम) का जल संयुक्त रूप से ६० कि०मी० तक बहने के बाद इसमें आ मिलता है। लगभग २८०० कि०मी० लम्बा मार्ग तय कर हैदराबाद के नीचे यह डेल्टा बनाती हुई अरबसागर में जा गिरती है। कराची यहाँ से थोड़ी दूर पर पश्चिम में है।

मालविकाग्निमित्र में कवि अपने पाठकों को शुंग-नरेश पुष्यमित्र के अश्वमेघ के घोड़े के साथ सिंधु तट तक ले जाता है। वहाँ अश्व के रक्षक कुमार वसुमित्र की यवन सेनाओं के साथ भयंकर मुठभेड़ होती है और एक बड़े संघर्ष के बाद यवनों के द्वारा पकड़े गए घोड़े को वसुमित्र छुड़ा लेने में सफल हो जाते हैं। यह महान् ऐतिहासिक घटना (आज से लगभग साढ़े इक्कीस सौ वर्ष पूर्व) इसी सिंधु के दाहिने तट पर घटित हुई थी, ऐसा कवि हमें बड़े स्पष्ट शब्दों में बता रहा है—

राजा—(उपविश्य लेखं सोपचारं गृहीत्वा वाचयति) 'स्वस्ति यज्ञशरणात् सेनापतिः पुष्यमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मन्तमग्निमित्रं स्नेहात्परिष्वज्येदमनुदर्शयति। विदितमस्तु। योऽसौ राजयज्ञदीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृतं वसुमित्रं गोप्तारमादिश्य वत्सरोपात्तनियमो निरर्गलस्तुरंगो विसृष्टः सः सिंधोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनेन प्रार्थितः। ततः उभयोः सेनयोर्महानासीत्संमर्दः।"[1]

यहाँ कालिदास ने पुष्यमित्र की सेनाओं की सिंधुपार के उसके दायें

१. मालविकाग्निमित्र, पंचम अंक, —१४ के बाद का गद्य।

तट पर जिस यवन सेना के साथ मुठभेड़ की चर्चा की है, वह इतिहास प्रसिद्ध यूनानी आक्रान्ता मेनाण्डर है,[1] जो बाल्हीक के यूनानी राजा दिमित्र का सेनापति था, ऐसा कहा जाता है। ऋग्वेद में सिंधु नदी की अनेत्र चर्चा है।[2] वहां इसे सुषोमा भी कहा गया है।[3]

वंक्षु (ओक्सस, आमू)

हिंदुकुश पर्वत की उत्तरी श्रेणियों तक विस्तृत पामीर के दक्षिणी पठार से निकल कर वक्षु १५० कि०मी० के लगभग पश्चिम की ओर मुड़ जाती है और मध्य एशिया के भूभाग में लगभग २२०० कि०मी० का मार्ग तय कर अराल सागर में जा मिलती है। कालिदास ने 'वंक्षु' की चर्चा करते हुए कहा है—'वंक्षु के तट' पर पहुँच कर रघु की सेना के घोड़े उसकी रेत में लेट लेट-कर अपनी थकान मिटाने लगे और इस प्रकार उन्होंने अपने शरीर पर लगी बलख की केंसर की धूल को झाड़ डाला—

विनीताध्वश्रमास्तस्य वंक्षुतीरविचेष्टनैः।
दुधुवुर्वाजिनः स्कंधाल्लग्नकुंकुमकेसरान्॥[4]

महाभारत में कहा गया है कि महाराज युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ में वंक्षुतीर निवासियों ने बहुत तेज दौड़ने वाले अरबी घोडे और गधे भी भेंट किए थे। अरबी में वंक्षु को 'जीहुन' कहते हैं।

जैसा कि अन्यत्र स्पष्ट किया जा चुका है पौराणिक भुवनकोशों में 'वंक्षु' को केतुमाल वर्ष (मध्य एशिया) की नदी बताया गया है।

---

१. इतिहास साक्षी है कि यूनानी आक्रांता मीनाण्डर ने एक ओर चित्तौड़ के निकट माध्यमिका नगरी तक तो दूसरी ओर साकेत तक धावा बोला था। सम्राट् अग्निमित्र ने इसे मध्यक्षेत्र से खदेड़ दिया था। उसके बाद मीनाण्डर ने शाकल स्यालकोट में अपनी राजधानी बना ली और बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। बौद्ध-साहित्य में इसे मिलिन्द कहा गया है 'मिलिन्द पन्हो'—मिलिन्द प्रश्न नामक पुस्तक में मिलिन्द के धार्मिक किन्तु प्रश्न और नागसेन भिक्षु द्वारा उनके उत्तर दिए गए हैं।

यवन आक्रान्ता के साथ वसुमित्र के इस युद्ध की ऐतिहासिकता के लिए देखिए भूमिका।

२. त्वं सिंधो कुभया गोमतीं क्रमु मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे। —ऋग्वेद, १०-७५-६

३. देखिए पृ० पाद टिप्पणी ?

४. रघुवंश, ४-६७

कालिदास ने 'वंक्षु' को कम्बोज क्षेत्र में प्रवाहित दिखाकर इस प्रदेश के अन्यत्र प्रतिपादित भौगोलिक तथ्यों को ही उजागर किया है।

गंगा-हिमालयवाहिनी—

गंगा के बारे में पौराणिक परम्परा के अनुकूल कालिदास ने भी कहा है कि भगवान् विष्णु के चरणों में से निकल कर गंगा भगवान् शंकर के जटा-जूट में समा गई और वहीं से बहती हुई नीचे हिमालय में आई :—

विष्णुपादोदकोद्भूता ब्रह्मलोकादुपागता।
त्रिभिः स्रोतोभिरश्रान्तं पुनाना भुवनत्रयम् ॥[1]

और—

महेश्वरजटाजूटवासिनी पापनाशिनी।[2]

भौतिक या भौगोलिक दृष्टि से विचार करने पर यह तथ्य सामने आता है कि विष्णु (सूर्य) के चरण (किरणों) के द्वारा समुद्र से लाई गई मेघों में भरी जलराशि सर्वप्रथम हिमालय के गहन वन रूपी शिव-जटाजूट में समा जाती है और फिर वहीं पर गंगोत्तरी के आस-पास अनेक धाराओं में प्रकट होती है।

गंगा के सम्बन्ध में तीसरी पौराणिक परम्परा यह है कि अपने पूर्वज सगरपुत्रों के उद्धार के लिए भगीरथ गंगा को अपनी तपस्या के द्वारा हिमालय से नीचे लाए थे। कवि ने—

स सेनां महतीं कर्षन्पूर्वसागरगामिनीम्।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गंगामिव भगीरथः ॥[3]

के द्वारा इसी पुराणानुमोदित भौगोलिक तथ्य की ओर संकेत करते हुए यहां पर कहा है कि 'अपनी विशाल सेना के साथ रघु जब पूर्वसागर की ओर बढ़ रहे थे, तो ऐसे लग रहे थे मानो शंकर जी की जटा से निकली हुई गंगा जी को लिए हुए भगीरथ ही पूर्वी-समुद्र की ओर चले जा रहे हों।'

गंगा हिमालय के शिखर से निकलती है, इस भौगोलिक तथ्य का

---

१. कुमारसंभव १०-३१
२. कुमारसंभव, १०-३०
३. रघुवंश, ४-३२

उल्लेख कवि ने इस उक्ति के द्वारा किया है—

अवैमि पूतमात्मानं द्वयेनैव द्विजोत्तमाः।
मूर्ध्नि गंगाप्रपातेन धौतपादाम्भसा च वः ॥[१]

(ऋषिगण, मैं स्वयं को दो ही बातों से पवित्र मानता हूं, मेरे शिखर पर गंगा का प्रपात है, उद्गम क्षेत्र है और मैंने आप लोगों के चरणों की धोवन का जल अपने सिर पर धारण किया है।)

कुमारसंभव के दशम सर्ग के २४ से ३७वें तथा ४१ से ५१वें श्लोक तक २६ श्लोकों में गंगा के कई मनोहारी शब्दचित्र अंकित किए गए हैं। जैसे— "आकाश को छूने वाली सैकड़ों तरंगें उछल-उछल कर मानो यह बता रही थीं कि स्वर्ग में रहने वाले देवगण यहीं आकर दर्शन स्नान और आचमन किया करते हैं। किनारों पर कहीं कुशा के आसन पर पद्मासन लगाए, पट्टबंध धारण किए हुए सूर्य की ओर दृष्टि लगाए ब्रह्मर्षिगण वेदमन्त्रों का पाठ कर रहे थे आदि।

कालिदास ने गंगा को विष्णुपदी[२], त्रिस्रोता[३], त्रिमार्गगा[४], सुरापगा[५], स्वर्धुनी[६], दिवोधुनी[७], भागीरथी[८], जाह्नवी[९], जह्नुकन्या[१०], तथा मन्दाकिनी[११] आदि पुराण-प्रसिद्ध व लोकप्रचलित अनेक नामों से भी स्मरण किया है। स्पष्ट है कि कवि ने हिमालय में गंगा के प्रस्रवण-क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली 'भागीरथी' और 'मन्दाकिनी' नामों से प्रसिद्ध गंगा की निर्मायक दोनों नदियों की ओर कहीं कोई संकेत न कर इन दोनों नामों को गंगा के पर्यायवाची शब्दों के रूप में ही अपनाया है। कैलास के नीचे बहने वाली एक अन्य नदी 'मन्दाकिनी' का उल्लेख कवि ने अवश्य किया है। इसका विवरण आगे दिया जा रहा है।

मंदाकिनी

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है मन्दाकिनी, अलकापुरी और

---

१. कुमारसंभव, ६-५७
२. कुमारसंभव, १०-५०
३. से ६, वही-३१,२८,२६,२७ व ३४, ५१
७. रघुवंश, ७-३६, कुमारसंभव-१-१५, ११-३
८. रघुवंश, १०-२६
९. मेघदूत, पूर्वमेघ-५३
१०. कुमारसंभव, १-२८

गंधमादन के साथ प्रवाहित होने वाली नदी है, जो कैलास पर्वत के नीचे से प्रवाहित हो रही है। कालिदास ने इसकी भौगोलिक स्थिति विक्रमोर्वशीय के पूर्वोक्त संदर्भ में ठीक निर्धारित करते हुए बताया है कि गंधमादन वन में विहार करते समय पुरूरवा ने मन्दाकिनी के तट पर रेत में खेलती हुई विद्याधर कन्या को निहारा था। (देखिए पृष्ठ १३२)

गंधमादन अलका और कैलास के निकट-वाहिनी इस मंदाकिनी नदी की चर्चा कवि ने कई अन्य स्थानों पर भी की है।

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः ।[1]

आदि मेघदूत के श्लोक में कहा गया है कि मन्दाकिनी नदी की फुहारों से अलका की यक्ष कन्याएं आनन्दित होती हैं।

मन्दाकिनी-२

इसके अतिरिक्त चित्रकूट के नीचे प्रवाहित मन्दाकिनी की चर्चा भी कवि ने रघुवंश के त्रयोदश सर्ग के 'मन्दाकिनी भाति नगोपकंठे' आदि श्लोकों में की है।

उदीच्य क्षेत्र के सरोवर

कालिदास ने उदीच्य क्षेत्र के दो सरोवरो की चर्चा की है। इनमें से पहला है पुष्कर सरोवर और दूसरा मानससर। उदीच्य क्षेत्र के दक्षिण में स्थित 'पुष्कर' और धुर उत्तर में विद्यमान 'मानस' के उल्लेख के द्वारा मानो कवि ने इस क्षेत्र की दक्षिणोत्तर सीमाएं भी अनायास ही निर्धारित कर दी हैं।

त्रिपुष्कर

दिल्ली-अहमदाबाद रेल मार्ग पर अजमेर नगर से १० कि० मी० दूर अर्वली पर्वत शृंखला की दक्षिणोत्तर को फैली पश्चिमी शृंखला की उपत्यका में स्थित पुष्कर सरोवर ही कालिदास का 'त्रिपुष्कर' है। पच्चीस-तीस वर्ग कि० मी० में फैले पुष्कर और बूढ़ा पुष्कर नामक दो सरोवर तो आज भी विद्यमान हैं। सम्भवतः प्राचीन युग में इनके सिवा तीसरा सरोवर भी रहा हो, इसीलिए इसे 'त्रिपुष्कर' कहा जाता है।

सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा जी ने पुष्कर में यज्ञ किया था। पुष्कर सरोवर के तट पर स्थित पहाड़ी पर ब्रह्मा जी का भारतविख्यात प्राचीन

---

१. मेघदूत, उत्तरमेघ ४ देखिये पृ० १४६

२. रघुवंश, १३-४८

मन्दिर है। साथ ही पर्वत की एक दूसरी चोटी पर सावित्री का भी मन्दिर है। पुष्कर सरोवर पर गोघाट, वराह घाट आदि ४० पक्के घाट तथा अनेक मन्दिर हैं। यहाँ का अत्याधुनिक रमावैकुण्ठ मन्दिर अत्यन्त भव्य और विशाल है। पुष्कर के आस-पास पर्वतों में अनेक ऋषि-मुनियों की गुफाएँ तथा तपोभूमियाँ हैं, जिनमें अगस्त्य और भर्तृहरि की गुफाएं प्रसिद्ध है।

यहां गुर्जर गौड़ समाज का महर्षि गौतम का आश्रम भी प्रसिद्ध है।

पुष्कर की चर्चा करते हुए कवि ने कहा है कि रघुवंशी राजा ब्रह्मिष्ठ त्रिपुष्कर में स्नान कर स्वर्ग सिधार गए :—

उपस्पृशन्स्पर्शनिवृत्तलौल्यस्त्रिपुष्करेषु त्रिदशत्वमाप।[1]

कवि के कथन से ज्ञात होता है कि पुष्कर में स्नान का फल स्वर्ग-प्राप्ति माना जाता था। स्नान के समय पठनीय मन्त्र में तीर्थों में पुष्कर और नदियों में गंगा का सर्वप्रथम स्मरण किया जाता है।[2]

वाल्मीकिरामायण में विश्वामित्र द्वारा पुष्कर में तप करने का उल्लेख है[3]। और राजा नृग के पुष्कर में दान करने की चर्चा भी है[4]। महाभारत में पुष्कर को महान् तीर्थ माना है[5]। विष्णुपुराण में भी पुष्कर में कार्तिक-स्नान का उल्लेख है, जिससे पुष्कर का तीर्थ के रूप में जो महत्त्व है उसका पूर्वाभास मिलता है। पुष्कर का कार्तिक मास का मेला आज भी प्रसिद्ध है[6]। विष्णुपुराण में पुष्कर को प्रयाग और कुरुक्षेत्र के समान माना है।[7]

---

१. रघुवंश, १८-३१

२. पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्याःसरितस्तथा।
स्नानकाले पवित्राणि आगच्छन्तु सदा मम॥

३. वा० रामा० बा०का०, ६१-३ व ४

४. नृदेवो भूमिदेवेभ्यःपुष्करेषु ददौ नृपः।
—वा० रामा० उत्तरकाण्ड, ५३-८

५. पितामहसरः पुण्यं पुष्करं नाम नामतः। वैखानसानां सिद्धानामृषीणामाश्रमः प्रियः।
अप्यत्र संश्रयार्थाय प्रजापतिरथो जगौ। पुष्करेषु कुरुश्रेष्ठ गाधिंसुकृतिनांवर॥
मनसाप्यभिकामस्य पुष्कराणिम नस्विनः। विप्रणश्यन्ति पापानि नाकपृष्ठे च मोदते।
--महा०वन, ८९-१८ से १९

६. कार्तिक्यां पुष्करस्नाने द्वादशाहेन यत्फलम्। वि० पु०, १-२२-८९

७. प्रयागे पुष्करे चैव कुरुक्षेत्रें तथार्णवे। कृतोपवासः प्राप्नोति तदस्य श्रवणान्नरः।
—वही, ६-८-२९

मानससर

हिमालय के पार १५ हज़ार फुट ऊंचे तिब्बती पठार में कैलास से ३० कि० मी० दक्षिण तथा हिमालय के उत्तर में स्थित मानसरोवर नामक २५ कि० मी० लम्बा तथा १० कि० मी० चौड़ा अण्डाकृति, नीलम के समान स्वच्छ, निर्मल, मधुर जल से परिपूरित एक सौ किलोमीटर के लगभग क्षेत्र-फल वाला मानस सरोवर स्थित है। ब्रह्मसर भी इसी को कहा गया है। रावणह्रद या राक्षसताल नामक मानस से भी बड़ा कटे-फटे किनारों वाला एक दूसरा खारे पानी का तालाब भी इसी के साथ सटा हुआ है। मानस में श्वेत, मटमैले व काले लाल चोंच वाले नाना रूप-रंग व जातियों के हंसों के झुण्ड के झुण्ड तैरा और उड़ा करते हैं। किन्तु यह सरोवर इतना गहरा है कि यहाँ कमल पैदा ही नहीं हो सकते। हाँ किनारों के आस-पास पानी में लम्बी घास अवश्य उगी रहती है। पुराणों में मानस या ब्रह्मसर से ब्रह्मपुत्र की और सरयू नदी की उत्पत्ति मानी गयी है, किन्तु प्रत्यक्षतः इससे कोई नदी नहीं निकलती। इसकी अन्तःसलिला धाराओं में से भले ही उनका उद्‌गम हुआ हो। शतद्रु-शतलुज-राक्षस ताल से उद्‌गत है, ऐसा माना जाता है।

मेघदूत का यक्ष मेघ से अलका का मार्ग बताते हुए कहता है कि क्रौञ्च-रन्ध्र से हिमालय को पार कर लेने पर तुम सुनहरे कमलों से भरे मानस का जल लेकर कैलास की गोद में बसी अलकापुरी जा पहुँचोगे—

हेमाम्भोजप्रसविसलिलं मानसस्याददानः।[1]

कवि ने अन्यत्र कहा है कि मानसरोवर की ओर जाने वाले राजहंस कैलास तक तुम्हारा साथ देंगे—

आकैलासात्……भवतो राजहंसाः सहायाः।[2]

यहाँ कवि ने कैलास के दक्षिण में मानस सर की स्थिति का जो चित्रण किया है वह भौगोलिक तथ्यों के सर्वथा अनुरूप है।

कालिदास ने उत्तर मेघ में भी 'मानस' को अलका के निकट स्थित बताया है—

मानसं सन्निकृष्टम्।[3]

इसी प्रकार कुमारसंभव में भी मानस को अलका पुरी के उपवन गन्ध

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ-६२
२. वही, ११
३. वही, -१६

मादन के निकट स्थित दिखाया है—

......चलितमानसोर्मयः ।
......गन्धमादनवनान्तमारुताः ॥[1]

रघुवंश के—

पद्मान्तरं मानसराजहंसीम् ।[2]

में भी कमलपरिपूरित 'मानस' का उल्लेख है। वाल्मीकिरामायण में मानस के आसपास के क्षेत्र को जो वृक्षहीन कहा गया है, वह भौगोलिक तथ्यों के सर्वथा अनुकूल है, क्योंकि जिस तिब्बती पठार में मानस स्थित है वहाँ छोटी-मोटी झाड़ियों के सिवा कोई वृक्ष पैदा नहीं होता।

उदीच्य क्षेत्र के वन, वृक्ष, कृषि, खनिज तथा प्राणिज उपज

वन

हिमालय के सरल, देवदारु आदि अनेक वृक्षों की चर्चा करते हुए भी उदीच्य क्षेत्र के केवल एक मात्र गंधमादन वन का ही कवि ने नामोल्लेख किया है।

गंधमादन वन

गंधमादन वन का उल्लेख कालिदास ने विक्रमोर्वशीय तथा कुमारसंभव छठे सर्ग के अनेक स्थलों में किया है। विक्रमोर्वशीय में कवि ने बताया है कि उर्वशी परूरवा के साथ गंधमादन पर गयी थी—

चित्रलेखा—(सकरुणम्) उव्वसी किल तं रदिसहाअं राएसिं अमच्चेसु निवेसिदरज्जधुरं गोण्हिअ गंधमदनवणं विहरिंदु गदा।

उर्वशी किल तं रतिसहायं राजर्षि—
ममात्येषु निवेशितराज्यधुरं गृहीत्वा
गंधमादनवनं विहर्तुं गता ॥[3]

निश्चित ही यह गंधमादन वन ऐसा सुन्दर है जहाँ नव-विवाहित दम्पती रति-विहार के लिए जाया करते थे। सहजन्या इसीलिए तो कहती है

---

१. कुमारसंभव : ८-८६, देखिये पृ० १३२

२. रघुवंश, ६-२६

३. विक्रमोर्वशीय, ४-२

कि ऐसे सुन्दर स्थलों में रति-विहार ही तो वास्तविक 'हनीमून' मनाना है—

सः नाम सम्भोगो यस्तादृशेषु प्रदेशेषु ।[1]

इस गंधमादन की स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए कवि ने चित्रलेखा के मुख से कहलाया है, 'उर्वशी मन्दाकिनी के किनारे पर रेत के घरौंदे बना-बनाकर खेल रही थी, कि इसी बीच परूरवा उदयवती नामक विद्याधर कन्या की ओर निहारने लगे। इसलिए उर्वशी उन पर बिगड़ पड़ीं—

तत्र खलु मन्दाकिन्याः पुलिनेषु गता
सिकितापर्वतकेलिभिः क्रीडन्ती—
विद्याधरदारिकोदयवती नाम
तेन राजर्षिणा निध्याता तेन कुपिता उर्वशी ।[2]

इस प्रकार कालिदास ने स्पष्ट कर दिया है कि गंधमादन की स्थिति वस्तुतः कैलास के नीचे प्रवाहित मन्दाकिनी के आस-पास ही है। और यह भी कि विद्याधर नामक देवजाति भी इसी गंधमादन के पास रहती है। कुमार-संभव में भी कवि ने गंधमादन के बारे में कुछ संकेत दिए हैं। विक्रमोर्वशीय के उर्वशी और पुरूरवा की भाँति कुमारसंभव के शिव-पार्वती भी गंधमादन वन में रति-विहार करते हैं—

गंधमादनवनं व्यगाहत ।[3]

मानसरोवर की ठण्डी हवा के झोंके भी गंधमादन वन में पहुँचते हैं—

तौ क्षणं शिथिलितोपगूहनौ दंपती चलितमानसोर्मयः ।
पद्मभेदपिशुनाः सिषेविरे गंधमादनवनान्तमारुताः ।।[4]

इस प्रकार कालिदास ने 'गंधमादन वन' की भौगोलिक स्थिति के बारे में कहीं कोई सन्देह नहीं रहने दिया। पुराणों के अनुरूप कालिदास का गंध-मादन कैलास पर्वत और मानसरोवर के निकटवर्ती किसी प्रदेश में स्थित है।

महाभारत के वनपर्व[5] तथा स्कंद एव वराहपुराण में भी इसी क्षेत्र में

---

१. विक्रमोर्वशीय, ४

२. वही

३. कुमारसंभव, ६-४६

४. वही, ८-८६

५. गंधमादनमासाद्य तत्स्थानमजयत् प्रभुः ।
तं गंधमादनं राजन् अतिक्रम्य ततोऽर्जुनः ।।
—महा० वन० २-२८

गंधमादन की चर्चा की गयी है।

उक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि कालिदास की कृतियों में जिस गंधमादन वन का वर्णन किया गया है, बद्री-केदार क्षेत्र के आस-पास की फूलों की घाटी या किसी अन्य स्थान से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। कवि का गंधमादन कैलास-मानसरोवर के आसपास है।

वृक्ष

उदीच्य क्षेत्र का हिमालय पर्वत नानाविध औषधियों, वनस्पतियों, वृक्ष-लताओं का घर है। इसलिए कवि ने इसका वर्णन करते हुए कहा है कि हिमालय से हमें सब प्रकार की औषधियाँ, वृक्ष-लताएँ और रत्न प्राप्त होते हैं—

भास्वन्ति रत्नानि महोषधीश्च।[1]

हिमालय के वृक्षों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वहाँ अधिकतर सूई नुमा पत्तों वाले वृक्ष पाए जाते हैं, जिनके तनों की छाल के निचले भाग को काटकर एक द्रव पदार्थ निकाला जाता है, जिससे राल, बिरोजा और तारपीन का तेल जैसी बहुमूल्य और सुगन्धित वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं।

'सूच्यग्र' या 'शंकुल' कोनीफर जाति के ये वृक्ष हिमालय में तीन हजार फुट से लेकर दस बारह हजार फुट तक की ऊँचाई वाले बहिर्गिरि प्रदेश या वृक्ष-शृंखला में सर्वत्र सुलभ हैं। इनके सिवा कुछ ऐसे भी वृक्ष हैं, जिनके पत्ते सूईनुमा न होकर मैदानी वृक्षों की भाँति चौड़े हैं। अक्षोट 'अखरोट' भूर्ज (बर्च) और नमेरु जैसे कुछ वृक्ष इस प्रकार के चौड़े पत्तों वाले वृक्षों में उल्लेखनीय हैं।

सरल (चोड-देवदार आदि)

यह वृक्ष डेढ दो हजार फुट की ऊंचाई से लेकर आठ हजार फुट की ऊँचाई वाले हिमालय के प्रदेशों में सर्वत्र पाया जाता है। यह अपने स्राव (राल) और बिरोजे के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसकी पत्तियां सूई के समान नोकीली होती हैं, और यह कम ऊँचाई पर दूसरे मैदानी वृक्षों के साथ तथा ऊपर के भागों में देवदार आदि उन्नत क्षेत्रों के वृक्षों के साथ भी उग जाता है। कालिदास ने सरल वृक्ष का वर्णन अनेकत्र किया है। जैसे कि—

सरलासक्तमातंगग्रैवेयस्फुरितत्विषः।[2]

---

१. कुमारसंभव, १-५

२. रघुवंश, ४-७५

के द्वारा कवि ने हिमालय में भूर्जपत्रों के बाद देवदार और सरल (चीड़)की स्थिति दिखाई है। ठीक यही क्रम अपनाते हुए कुमारसंभव में भी —

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र
भूर्जत्वचः कुंजरबिन्दुशोणाः ।[१]

में भी भूर्ज वृक्षों का वर्णन प्रथम सर्ग के सातवें श्लोक में किया गया है और इसके बाद में 'कपोलकण्डु' आदि श्लोक में सरल वृक्षों की चर्चा की गई है। यहां भी कवि ने चीड़ के वृक्षों का मात्र नामोल्लेख ही न कर यह भी बता दिया है कि चीड़ के वृक्षों से एक प्रकार का सुगंधित क्षीर (बिरोजा) निकला करता है। क्योंकि इन सरल वृक्षों के साथ हाथी अपनी कनपटी खुजाने लगते हैं तो रगड़ से उन वृक्षों के तनों से निकले हुए क्षीर-राल-बिरोजे की महक से आस-पास का सारा वातावरण महक उठता है।

देवदारु

इस वृक्ष की उपयोगिता और महत्ता को भारतीय मनीषियों ने आज से हजारों वर्ष पहले पहचान लिया था। तभी तो इनका नाम 'देवदारु' रखा था। इस गगनचुम्बी, सांवले, सदाबहार, सूचीनुमा पत्रों वाले देवदारु वृक्ष का कालिदास ने अनेकत्र वर्णन तो किया ही है, यहाँ तक कहा है कि इस देवदारु पेड़ को पार्वती जी ने स्वयं अपने घट-स्तनो के पय से सींच-सींचकर पाल-पोसकर बड़ा किया है, इसलिए भगवान् शंकर इसे अपना पुत्र मानते हैं :—

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं
पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।
यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां
स्कंदस्य मातुः पयसां रसज्ञः ॥[२]

कालिदास ने अन्यत्र भी देवदारु की चर्चा अनेक प्रसंगों में की है। हिमालय के वानस्पतिक-वैशिष्ट्य में देवदारु वृक्षों का अपना स्थान है। कुमारसंभव के—

स देवदारुद्रुमवेदिकायाम्[३]

इत्यादि श्लोक में कवि ने बताया है कि कामदेव ने भूतभावन भगवान् शंकर

---

१. कुमारसंभव, १-७
२. रघुवंश, २-३६
३. कुमारसंभव, ३-४४

को देवदारु वृक्ष के नीचे पत्थर की चौकी पर बिछे बाघम्बर पर समाधिस्थ बैठे देखा। इससे भी ध्वनित होता है कि देवदार के वृक्ष हिमालय में बहुत ऊंचाई पर केदारखण्ड क्षेत्र जैसे प्रदेशों में ही उगा करते हैं। कवि ने देवदारुओं की स्थिति अन्यत्र भी भागीरथी के आसपास के क्षेत्र में विशेष रूप से बताई है—

भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः ।[1]

इसी प्रकार—

गंगाप्रवाहोक्षितदेवदारुः[2]

में भी भगवान् शंकर के तपस्या-स्थान के पास गंगा के उद्‌गम क्षेत्रों में देवदारुओं की स्थिति दिखाई गई है।

हिमालय के भौगोलिक वैशिष्ट्य के जीवन्त प्रतीक इस देवदारु का महत्त्व मेघदूत में भी कवि ने उतनी ही निष्ठा से दर्शाया है। जैसे—दक्षिण की पवन चन्दन-सुरभित बताई जाती है, वैसे ही हिमालय से आने वाली उत्तरी पवन का वर्णन करते हुए कवि ने उसे देवदारु के स्राव से सुरभित बताया है :—

भित्त्वा सद्यःकिसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ।
आलिंग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदंगमेभिस्तवेति ।।[3]

नमेरु

सामान्यतया प्रचलित कोषो में कहा गया है कि 'सुरपुन्नाग' या 'रुद्राक्ष' ही नमेरु है। इधर श्री एच० के० बसु ने कहा है कि नमेरु वास्तव में 'रोडाड्रेनड्रोन ग्रांडे' है। यह एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है 'गुलाबी वृक्ष'। हिमालय में सामान्यतया साढ़े तीन-चार हजार फुट से लेकर पांच-छह हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाने वाला, अपने लाल गुच्छेदार फूलों की सुषमा से सारे वातावरण को श्रीसम्पन्न बना देने वाला प्रसिद्ध 'बुरास' इसी जाति का एक छोटे आकार वाला वृक्ष है। इसी जाति के श्वेत पुष्पों वाले पौधे

---

१. कुमारसम्भव, १-१५
२. वही, १-५४
३. मेघदूत, उत्तरमेघ, ५०

अधिक ऊंचाई पर भूर्ज वृक्षों के साथ भी पाए जाते हैं, अतः इन्हें भी नमेरु माना जाना चाहिये।

कालिदास ने भी भूर्ज वृक्षों के साथ ही नमेरुओं की चर्चा की है—

विशश्रमुर्नमेरूणां छायास्वध्यास्य सैनिकाः।[1]

में इन नमेरु वृक्षों की स्थिति हिमालय के अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्र में बताई है। कुमारसंभव में नमेरु के सुन्दर फूलों का उल्लेख मिलता है—

गणा नमेरुप्रसवावतंसाः[2]

अर्थात् भगवान् शंकर के पास ही अपने सिर पर नमेरुओं के सुन्दर फूलों की माला बांधे उनके गण बैठे थे। अन्यत्र कहा गया है कि काम, भगवान् शंकर पर अपना बाण चलाने के लिए नमेरु की शाखाओं से घिरे उस स्थान में जा घुसा जहाँ वे समाधि लगाए बैठे थे—

प्रान्तेषु संसक्तनमेरुशाखं ध्यानास्पदं भूतपतेर्विवेश।[3]

भूर्ज-भोजपत्र-या-बर्च

हिमालय का एक अन्य उल्लेखनीय वृक्ष है भूर्ज। भूर्ज की विशेषता यह है कि हिमालय के अन्य वृक्षों की भांति यह न तो पिरामिड या पगोडा की तरह नुकीले शिखर वाला ही है और न इसके पत्ते 'सूई' जैसे नुकीले हैं। चीड़ जाति के वृक्षों की अपनी इन दोनों विशेषताओं के कारण बर्फ को अपने ऊपर न जमने देने में सहायता मिलती है, इसके विपरीत भूर्ज चौड़े पत्तों वाला ऊपर से फैला हुआ होते हुए भी दस-बारह हजार फुट के बर्फीले वातावरण में मजे से पनपता है और कभी-कभी तो देवदार जाति के 'फर' वृक्ष से भी ऊँचाई में बढ़-चढ़कर दिखाई दे जाता है। पहाड़ी ढलानों पर उगने वाले भूर्ज पत्र के तने चालीस से साठ फुट तक लम्बे और मोटे होते हैं। इसकी बारीक छाल की एक-साथ चिपकी हुई परतें स्वयं उतरती रहती हैं। उत्तरभारत में प्राचीन काल से भोजपत्र पर ग्रंथ लिखे जाते रहे हैं। ईसा की दूसरी और चौथी शती के मध्य लिखा गया ज्यामिति का भोजपत्र के ७० पृष्ठों पर लिखा हुआ एक ग्रंथ सन् १८८१ में खोज निकाला गया था।

भोजपत्र के जंगलों से आगे दूर्वा-क्षेत्र आरम्भ हो जाता है। यदि कोई

१. रघुवंश, ४-७४
२. कुमारसंभव, १-५५
३. वही ३-४३

यात्री कैलास, मानसरोवर या तिब्बत से हिमालय में प्रवेश करे तो भूर्ज ही उसे सबसे पहले मिलेंगे। जबकि भारत से जाने वाले को भूर्जवृक्ष सबसे ऊपर की श्रेणी में मिलेंगे, जहाँ से आगे वृक्षों के दर्शन ही दुर्लभ हो जाएंगे। कवि अपने पाठकों को इसी भौगोलिक तथ्य से अवगत कराता हुआ बताता है कि रघु और उसके सैनिकों को हिमालय में प्रवेश करने पर जो वृक्ष सबसे पहले दृष्टिगोचर हुए, वे भूर्ज ही थे—

भूर्जेषुमर्मरीभूताः कीचकध्वनिहेतवः।
गंगासीकरिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे॥[1]

यही भौगोलिक तथ्य मारसंभव में भी स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है। हिमालय की ढलानों से पिघलती हुई बर्फ का वर्णन करने के पश्चात् यहाँ भी कवि ने सर्वप्रथम भूर्ज वृक्ष से ही अपने पाठकों को परिचित कराया है—

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र
भूर्जत्वचः कुंजरविन्दुशोणाः।[2]

इससे स्पष्ट है कि कालिदास की कृतियों में भूर्ज वृक्षों का यह वर्णन स्वाभाविक रूप से यथास्थान हुआ है, साथ ही कवि ने कुमारसंभव और रघुवंश दोनों में अवसर मिलते ही अपने पाठकों को दस से बीस हजार फुट ऊँचाई वाली हिमालय की उपगिरि शृंखला के उस परिवेश या भौगोलिक परिस्थितियों से भलीभांति परिचित करा देने का प्रयत्न किया है, जहाँ भूर्ज वृक्ष उत्पन्न हुआ करते हैं।

कुंजरविन्दुशोणाः

इस विशेषण के द्वारा प्रतिपादित किया गया है कि भूर्ज वृक्ष की यह छाल-भोजपत्र-हाथी के माथे पर लगी वुंदकियों की तरह हल्की-सी ललाई लिए रहती है। और—

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन

तथा—

अनंगलेखक्रिययोपयोगम्।

के द्वारा भूर्जपत्रों के लेखन में उपयोग की बात भी बता दी गई है।

लेखन के साथ ही भोजपत्रों को वस्त्र की भांति शरीर पर लपेटने के

---

१. रघुवंश, ४-७३
२. कुमारसंभव, १-७

काम में भी लाया जाता था। कवि ने—

भूर्जत्वचः स्पर्शवतीर्दधनाः

के द्वारा भूर्जपत्र के इसी दूसरे उपयोग से सम्बद्ध एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य की जानकारी दी है।

कीचक-बांस

कालिदास ने हिमालय में उगने वाले वनस्पति-वर्ग का विवरण देते हुए भूर्ज, देवदार, सरल और नमेरु आदि वृक्षों के साथ कीचक (खोखले बांस) का उल्लेख भी अनेकत्र किया है। हिमालय की वन-सम्पदा में बांसों का अपना महत्त्व है ही। बांसों की प्रचुरता के कारण ही हिमालय की उपत्यका में बसे हुए एक नगर का नाम ही 'बांस बरेली' रख दिया गया। भाषा शास्त्रियों का मत है कि यह 'कीचक' चीन से आयातित शब्द है।

कालिदास ने कहा है कि गंगा के उद्‌गम स्रोत के आसपास ऐसी वायु जो कीचक बांसों के छेदों में घुस कर बांसुरी सी बजा रही थी, रघु के सैनिकों का मनोरंजन कर रही थी। श्लोक अन्यत्र उद्धृत है।[1]

अगरु

हिमालय में प्राप्त होने वाले कालागरु या अगर के वृक्षों की चर्चा कवि ने कामरूप और उसकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर के वर्णन के प्रसंग में—

चकम्पे तीर्णलौहित्ये

आदि श्लोक में की है। इसका विवेचन पहले किया जा चुका है[2]।

अक्षोट-अखरोट

उदीच्य क्षेत्र के एक मात्र फलदार जिस वृक्ष की चर्चा कवि ने की है, वह है हिमालय की पश्चिमी शृंखला 'हिंदुकुश पर्वत' तथा उसके आसपास के कम्बोज-जनपद में प्रचुरता से पाया जाने वाला अक्षोट।

कालिदास ने कहा है कि अखरोट के पेड़ों के साथ ही कम्बोज के वीर

---

१. देखिये पृष्ठ, १५२

२. देखिये पृष्ठ-४६

भी रघु के सामने नत हो गए—

अक्षोटैः सार्धमानताः ।[1]

द्राक्षा-अंगूर की बेलें

उदीच्य क्षेत्र के उपर्युक्त वृक्षों के साथ ही कवि ने पारसीक जनपद या ईरान में प्रभूत रूप से उगने वाली द्राक्षा-लताओं की चर्चा की है। कालिदास ने कहा है कि ईरान में द्राक्षालताओं से लदे रमणीय स्थलों में बैठे हुए रघु के सैनिक अंगूरी शराब पी पीकर अपनी थकान मिटा रहे थे—

विनयन्ते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम् ।
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु ॥[2]

उदीच्य क्षेत्र की कृषि उपज-केसर

कालिदास ने उदीच्य क्षेत्र की एकमात्र कृषि उपज बाल्हीक की प्रसिद्ध केसर का उल्लेख किया है। कवि कहता है कि वाल्होक में रघु के घोड़ों पर जो केसर चिपक गई थी वह उन्होंने वंक्षु के तटों पर लोट-लोट कर पोंछ डाली—

दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धांल्लग्नकुंकुमकेसरान् ।[3]

उदीच्य क्षेत्र के खनिज

कवि ने उदीच्य क्षेत्र से प्राप्त होने वाने वाले जिन खनिजों की चर्चा की है उनमें से स्फटिक, वैदूर्य, मनःशिला, शिलाजीत और अंजन व 'सैंधव लवण' उल्लेखनीय हैं।

वैदूर्य

वैदूर्य मणि को कहीं श्वेत, कहीं रक्त और कहीं हरित बताया गया है। वास्तव में आधुनिक संगमरमर ही वैदूर्य है। यह मुख्य रूप से श्वेत होता है, किन्तु लाल, पीला, नीला और हरा संगमरमर भी मिलता ही है। इस तथ्य का समर्थन महाभारत के उस प्रसंग से हो जाता है कि जहां वैदूर्य पर्वत

---

१. रघुवंश, ४-६९
२. रघुवंश, ४-६५
३. वही, ४-६७

की स्थिति नर्मदा के तटों पर दिखायी गयी है। निश्चित ही महाभारत में नर्मदा के साथ जिस वैदूर्य-पर्वत का उल्लेख किया गया है वह आज का प्रसिद्ध भेड़ाघाट—भृगुक्षेत्र—ही है।[1]

हिमालय में देहरादून आदि क्षेत्रों का रंगा-बिरंगा संगमरमर भी प्रसिद्ध है। कालिदास ने सम्भवतः—

विदूरभूमिर्नवमेघशब्दादुद्भिन्नया रत्नशलाकयेव।[2]

में हिमालय की इन्हीं 'विदूर' भूमियों या संगमर्मर की खानों की ओर संकेत किया है। इसी प्रकार अन्यत्र कहा गया है कि विवाह से पूर्व पार्वतीजी को उनकी सखियों ने 'वैदूर्य' शिला पर बैठाकर स्नान करवाया—

विन्यस्तवैदूर्यशिलातलेऽस्मिन्।[3]

इससे सिद्ध होता है कि वैदूर्य की शिलाएँ या चट्टानें होती हैं, वह कोई मणि या रत्न नहीं है।

सैंधव नमक

कवि ने सिंधुदेश या पश्चिमी पंजाब के सेंधे नमक के बड़े-बड़े ढेलों की चर्चा करते हुए कहा है कि इंदुमती के स्वयंवर में गए हुए अज ने कुंडिनपुर के बाहर उपवनों में उनके लिए लगाए गए खेमों में डेरा डाल दिया तो उनके ईरानी घोड़े चाटने के लिए रखे गए सैंधव नमक के बड़े-बड़े ढेलों को अपनी मुंह की भाप से मैला करने लगे।[4]

इस प्रकार कवि ने उदीच्य क्षेत्रों के वैदूर्य, स्फटिक, शिलाजीत, गैरी तथा सैंधव लवण आदि धातुओं की यथास्थान चर्चा की है।

---

१. वैदूर्यपर्वतं चैव नर्मदाञ्च महानदीम्।
देवानामेति कौंतेय तथा राज्ञां सलोकताम्॥
वैदूर्यपर्वतं दृष्ट्वा नर्मदामवतीर्य च।
—महा० वन०, १२१-१६, १९

२. कुमारसंभव, १-२४

३. वही, ७-१०

४. रघुवंश, ५-७३

शिलाजतु-शिलाजीत और मैंन्सिल

कवि ने हिमालय की प्रसिद्ध शिलाजतु के साथ ही मनःशिला की चर्चा भी करते हुए कहा है कि मैंन्सिल से अपना शरीर रंगे हुए शिवजी के गण शिलाजीत उगलती चट्टानों पर बैठे थे -

मनःशिलाविच्छुरिता निषेदुः
शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु ।[1]

स्फटिक (संगमर्मर)

हिमालय में स्फटिक शिलाओं से बने भवनों की चर्चा करते हुए कवि ने कहा है कि ओषधिप्रस्थ में स्फटिक के भवनों में सजे हुए मदिरालयों में जब रात को तारों के प्रतिबिंब चमकते थे तो ऐसा लगता था मानो वहां फूल बिखेर दिए गए हों—

यत्र स्फटिकहर्म्येषु नक्तमापानभूमिषु ।
ज्योतिषां प्रतिबिम्बानि प्राप्नुवन्त्युपहारताम् ।।[2]

स्फटिक शिला से बनी चौकी की भी चर्चा की गयी है—

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टिः ।[3]

गैरिक-गेरू

उदीच्य क्षेत्र के अंतर्गत हिमालय के गैरिक की चर्चा भी कवि ने यत्र-तत्र की है। हिमालय को गैरी आदि की लाल चट्टानों के होठ वाला बताया गया है—

धातुताम्राधरः[4]

हरिताल

इस पीले रंग के खनिज हरिताल या हड़ताल की उदीच्य क्षेत्र में चर्चा करते हुए कवि ने कहा है कि मस्तक में दमकता हुआ पीला-पीला तृतीय नेत्र ही वरवेशधारी भगवान शंकर के मस्तक पर हरताल के तिलक की शोभा

---

१. कुमारसंभव, १-५५
२. वही, ६-४२
३. मेघदूत, उत्तरमेघ, १६
४. कुमारसंभव, ६-५१

देने लगा—

हरतालमयस्तदेव जातं तिलकक्रियायाः।[1]

कालांजन

उदीच्य क्षेत्र के एक अन्य प्रसिद्ध खनिज अंजन या काले सुरमे का उल्लेख भी कवि ने किया है। पार्वती जी को वधू वेश में सजाते हुए 'शृंगार करने वाली' सुन्दर सखियों ने उनकी आंखों में मांगलिक कालांजन-सुरमा लगाया—

न चक्षुषोः कान्तिविशेषबुद्धया
कालांजनं मंगलमित्युपात्तम्।[2]

अर्थात् प्रसाधिकाओं ने पार्वती जी की सुन्दर आंखों में जो सुरमा लगाया वह इसलिए नहीं कि उससे उनकी आंखों की शोभा कुछ बढ़ जाएगी, अपितु इसलिए कि 'सुरमा' भी मांगलिक द्रव्य है।

प्राणिज द्रव्य

कालिदास ने बताया है कि उदीच्य क्षेत्र खनिज सम्पदाओं का भण्डार तो है ही, साथ ही यहां मृगमद या कस्तूरी जैसे प्राणिज द्रव्य भी प्राप्त होते हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। इसके अतिरिक्त देव-मन्दिरों और राजा महाराजाओं के सिरों पर ढुलाये जाने वाले सुन्दर चंवर भी जिन पशुओं की पूंछ के बालों से बनते हैं वे चमरी मृग भी हिमालय में ही देखे जा सकते हैं[3]।

मृगमद-कस्तूरी

मृग की नाभि से उत्पन्न होने वाले इस परमसुगंधित बहुमूल्य प्राणिज पदार्थ की चर्चा कवि ने अनेकत्र की है। कुमारसंभव में कवि ने शिव-पार्वती के कैलास विहार के प्रसंग में कहा है कि चन्द्रमा का कलंक स्फटिकोज्ज्वल कैलास पर ऐसे प्रतिबिम्बित हो रहा है मानो पार्वती जी ने उस पर कस्तूरी

---

१. कुमारसम्भव, ७-३३
२. वही, ७-२०
३. देखिये पृष्ठ-१४६

का छापा लगा दिया हो—

गौर्यार्पितस्येव रेसन यत्र
कस्तूरिकायाः शकलस्य लीलाम् ।[1]

यहां कवि ने कस्तूरी का श्यामवर्ण स्पष्ट शब्दों में बता दिया है।

अजिन-ऊन

कालिदास ने पारसीक और कम्बोज के प्रसंग में एक यह सूचना भी दी है कि वहां मृग और अज आदि की बहुत बढ़िया मुलायम खालें मिलती हैं।[2]

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है निरुक्तकार ने बताया है कि कम्बल आदि पश्मीने के बढ़िया शाल-दुशालों का उपभोग करने के कारण ही ये लोग 'कम्बोज' कहलाते हैं। इस प्रकार कम्बोज की चर्चा के साथ ही वहां के ऊनी और पश्मीने के बढ़िया वस्त्र भी अनायास ही ध्यान में आ जाते हैं।

इसी प्रकार कवि ने हिमालय की ऊन का उल्लेख करते हुए कहा है कि पार्वती जी के हाथ में बांधा गया विवाह के 'कंगन' का डोरा 'ऊन' का बना हुआ था—

ऊर्णामयं कौतुकहस्तसूत्रम्[3]

उदीच्य क्षेत्र के जीव-जन्तु

घोड़े

कवि ने उदीच्य या पश्चिमोत्तरी क्षेत्र के जीव-जन्तुओं से सम्बद्ध जानकारी देते हुए कहा है कि ईरान व कम्बोज आदि पश्चिमोत्तरी जनपद अपने श्रेष्ठ घोड़ों के लिए उस समय भी प्रसिद्ध थे। कालिदास का कथन है कि काम्बोज के शासकों ने रघु की सेवा में उस क्षेत्र के प्रसिद्ध घोड़े और बहुत-सा द्रव्य भेंट किया—

तेषां सदश्वभूयिष्ठास्तुंगा द्रविणराशयः ।
उपदा विविशुः शश्वन्नोत्सेकाः कोशलेश्वरम् ॥[4]

१. कुमारसंभव, ६-४२
२. पूर्वोक्त श्लोक, पृष्ठ १३६ रघुवंश, ४-६५
३. वही ७-२५ (देखिए पृ०-१५५)
४. रघुवंश, ४-७०

उष्ट्र और वामी खच्चर

सामान्यतया उदीच्य क्षेत्र के मैदानी भागों में सर्वत्र पाए जाने वाले ऊँट तथा खच्चर का उल्लेख करते हुए कवि ने कहा है कि रघु ने कौत्स को इतना धन दिया कि उसे वह ऊँट तथा वामी खच्चरों पर लाद कर ले गया—

अथोष्ट्रवामीशतवाहितार्थं[१]

सरघा-मधुमक्खी

कालिदास ने उदीच्य क्षेत्र-विशेषतः (ईरान व मध्य एशिया) के बढ़िया शहद और मधुमक्खियों की चर्चा—

सरघाव्याप्तैः स क्षौद्रपटलैरिव ।[२]

में की है।

उदीच्य क्षेत्रीय हिमालय के जीव-जन्तु

हिमालय का नाम लेते ही वहां के विशाल वृक्षों से आच्छादित घने जंगलों और उनमें विचरने वाले छोटे-बड़े नानाविध जीव-जन्तुओं का भी सहसा स्मरण हो आता है। वस्तुतः इन जीव-जन्तुओं की चर्चा किए बिना हिमालय के भौगोलिक वैशिष्टय का विवेचन अधूरा ही माना जायेगा। हिमालय के जंगलों में सिंह, व्याघ्र, रीछ, वानर, सर्प अजगर और हाथी जैसे वन्य जीव भरे पड़े हैं और इन सबका उल्लेख भी कालिदास ने हिमालय के प्रसंग में यथास्थान किया है।

सिंह

कवि ने हिमालय के सिंहों का यह चित्र खींचा है—हिमालय की गुफाओं में लेटे हुए सिंह रघु की सेना का कोलाहल सुनकर भी उसी प्रकार अविचल भाव से पड़े रहे। उन्होंने करवट बदलते हुए उनकी ओर देख भर लिया—

शशंस तुल्यसत्त्वानां सैन्यघोषेऽप्यसम्भ्रमम् ।
गुहाशयानां सिंहानां परिवृत्त्यावलोकितम् ।।[३]

१. रघुवंश, ४-३२
२. वही, ४-६३
३. वही, ४-७०

किन्तु ऐसे जीवों को हम हिमालय के भौगोलिक वैशिष्टय के रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकते, क्योंकि ये सब तो हिमालय के सिवा विंध्य आदि अन्य पर्वतों के वनों में भी पाए जा सकते हैं। हिमालय के भौगोलिक वैशिष्टय को व्यक्त करने वाले कोई जीव यदि कहे जा सकते हैं, तो वे हैं चमरी-मृग, याक और कस्तूरी मृग। ये दोनों वन्य प्राणी ऐसे हैं, जिनका नाम लेते ही हिमालय का स्मरण हो आता है। हिमालय में पाए जाने वाले चमरी मृग-याक के बालों से ही चंवर बनते हैं।

कस्तूरी मृग

सामान्यत: कस्तूरी देने वाले पशु को 'कस्तूरी मृग' कहा जाता है, किंतु यह मृग नहीं है। शाकाहारी कस्तूरी मृग की नाभि से कस्तूरी निकलती है। पूरे वयस्क कस्तूरी मृग की नाभि में कस्तूरी यथेष्ट मात्रा में उत्पन्न हो जाने पर उसके मलमूत्र भी सुगन्धि से वासित हो जाते हैं। कालिदास ने हिमालय के वर्णन के प्रसंग में वहां के प्रमुख भौगोलिक वैशिष्टय के प्रतीक कस्तूरी मृग का भी यथास्थान वर्णन किया है।

मेघदूत का यक्ष मेघ से कहता है कि हिमालय में तुम उन चट्टानों पर बैठ कर अपनी थकान मिटा लेना जो कस्तूरी मृगों के वहाँ बैठने से सुगन्धित हो गई हैं—

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगंधैर्मृगाणाम्।[1]

रघुवंश में भी कवि ने कस्तूरी मृगों के बैठने से वासित चट्टानों की चर्चा की है—

दृषदो वासितोत्संगा निषण्णमृगनाभिभिः।[2]

अर्थात् रघु के सैनिक उन चट्टानों पर बैठकर सुस्ताने लगे, जो कस्तूरी मृगों के बैठने से सुगंधित हो गई थी।

चमरी मृग

हिमालय के चमरी मृग तो कवि को इतने भले लगे कि उनका सजीव

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ-५६
२. रघुवंश, ४-७४
३. कुमारसंभव, १-१३

चलचित्र एक पूरे श्लोक में अंकित किया है—

लांगूलविक्षेपविसर्पिशोभै-
रितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौरैः।
यस्यार्थयुक्तं गिरिराजशब्दं
कुर्वन्ति बालव्यजनैश्चमर्यः ॥[1]

इसी सर्ग के ४८वें श्लोक में कवि ने फिर कहा कि यदि मनुष्य के समान पशु-पक्षियों में भी लज्जा का भाव होता तो अपने बालों पर इतराने वाली चमरी हिरणियाँ भी पार्वती जी के केश-कलाप को देखकर अपने चमरों पर इठलाना भूल जातीं—

तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य कुर्युर्बालप्रियत्वं शिथिलं चमर्यः।[2]

मेघदूत का यक्ष मेघ से कहता है कि हिमालय के सरल-चीड़ वृक्षों को पारस्परिक घर्षण से उत्पन्न जंगल की आग यदि चमरी मृगों के पूंछ के सुन्दर बालों को जलाने लगे तो तुम उस आग को तत्काल बुझा देना –

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कंधसंघट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः।[3]

कस्तूरी मृग और चमरी मृग के साथ गवय या नीलगाय याक भी हिमालय का विशिष्ट पशु है। कालिदास ने कुमार सम्भव में—

दृष्टः कथंचिद् गवयैर्विविग्नैरसोढसिंहध्वनिरुन्ननाद।[4]

में इन गवय-नीलगाय अथवा याक का वर्णन कर हिमालय के जीवजन्तु-सम्बन्धी भौगोलिक वैशिष्ट्य का सम्यक् प्रतिपादन किया है।

शरभ

शरभ को अमरकोश में मृग जैसी पशु जाति का जीव बताया है[5] और रामाश्रमी टीका में "अष्टापद" कहा गया है। कालिदास ने यक्ष के मुख से कहलाया है कि "हे मेघ, यदि हिमालय के शरभ तुम पर बिगड़ने लगें तो तुम

१. कुमारसम्भव १-१३
२. वही, १-४८
३. मेघदूत, पूर्वमेघ ५७
४. कुमारसंभव १-५६
५. अमरकोष, २,५-११

ओले बरसा कर उन्हें तितर-बितर कर देना—

सपदि शरभा लंघयेयुर्भवन्तम् ।[1]

इस प्रकार हमने देखा कि कालिदास ने उदीच्य क्षेत्र के घोड़े, खच्चर, ऊंट, सिंह और विशेष रूप से हिमालय में पाए जाने वाले कस्तूरी मृग, चमरी मृग, गवय-याक, और शरभ का उल्लेख अपने काव्यों में किया है।

उदीच्य क्षेत्र का जन-जीवन

कालिदास ने उदीच्य क्षेत्र के जन-जीवन का चित्रण करते हुए यवन (यूनानी) पारसीक (ईरानी) तथा हिंदुकुश से पामीर के पठार तक के क्षेत्र में फैले हुए हूण और कम्बोज इन पांच 'पश्चिमोत्तर जनों' के साथ ही साथ गन्धर्व, किन्नर और किरात व उत्सवसंकेत इन पांच हिमालय में रहने वालों की भी चर्चा की है।

यवन

यवन या यूनानियों के साथ भारतवासियों का सम्बन्ध बहुत पुराना है। कालिदास ने निर्देश किया है कि उसके समय में भी भारतीय राजाओं के महलों में सुन्दर यवन प्रतिहारी या अन्य परिचारिकाएँ रहा करती थीं। ये यवनियां फूलों के गजरों की शौकीन तो थीं ही, धनुषबाण भी धारण किए रहती थीं। महाराज दुश्यन्त के साथ रहने वाली एक ऐसी ही यवनी का चित्र अभिज्ञानशाकुन्तल में अंकित किया गया है—

एष बाणासनहस्ताभिर्यवनीभिर्वनपुष्पमालाधारिणीभिः परिवृत इत एवागच्छति प्रियवयस्यः ।[2]

इसके अतिरिक्त कवि ने मालविकाग्निमित्र में भी यवनों की चर्चा की है। वहां कहा गया है कि सिन्धु नदी के दाहिने तट पर घुड़सवार सेना वाले 'यवन' ने सम्राट् पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़ लिया था। कुमार वसुमित्र ने उसके हाथों से उसे वापस छुड़ा लिया।[3]

रघु की पारसीक विजय के प्रसग में ईरानी सुन्दरियों को 'यवनी' कहा गया है। कवि के इस साक्ष्य से ज्ञात होता है। 'यवन' शब्द के अर्थ-

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ—५८

२. अभिज्ञानशाकुन्तल, द्वितिय अंक, विदूषक-कथन

३. देखिये आगे विदिशा

विस्तार की प्रक्रिया बहुत पहले से आरम्भ हो चुकी थी। यवन शब्द अपने सामान्य अर्थ में ईरान से लेकर रोम तक के निवासियों के लिए प्रयुक्त होता था। भारत में मुसलमानों के बस जाने के बाद उन्हें ही यवन कहा जाने लगा।

यवन स्त्रियों का वीरता

कालिदास के उक्त साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि यवन पुरुष ही नहीं, उनकी स्त्रियां भी वीर बहादुर होती थीं। यहां तक कि वे वीर-वेश भी धारण किए रहती थीं।

पारसीक ईरानी लोग

कालिदास ने कहा है कि अपरान्त विजय के बाद रघु 'पारसीक' लोगों के देश पर विजय प्राप्त करने के लिए स्थल मार्ग से आगे बढ़ गए—

पारसीकान्स्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना।[1]

इसी प्रसंग में कवि ने 'ईरानियों' को सभी पश्चिम वासियों के लिए प्रयुक्त "पाश्चात्य" नाम से भी अभिहित किया है—

पाश्चात्यैरश्वसाधनैः[2]

ईरानी रमणियों के सुन्दर मुखकमल

कालिदास मूलतः सौन्दर्योपासक कवि है। नारी की रूप-माधुरी और उसके सौन्दर्यव्यंजक वैशिष्ट्य को उसने यथाप्रसंग बड़ी खूबी के साथ चित्रित किया है। केरल-सुन्दरियों के प्रमुख आकर्षण अलकें या घुंघराले बालों की चर्चा पहले की जा चुकी है। अमरकोषकार का कथन है कि "अलक" शब्द घुंघराले बालों के लिए ही प्रयुक्त होता था।[3]

इसी प्रकार 'आर्याणाम्' से बने ईरान के आर्यजन भी अपने आकर्षक सुन्दर व्यक्तित्व के कारण जगद्विख्यात हैं। इसी भौगोलिक तथ्य को ध्यान में रखते हुए कालिदास ने ईरानी सुन्दरियों के मुखों को कमल के समान सुन्दर बताया है— **यवनीमुखपद्मानाम्**[4]

---

१. रघुवंश, ४-६०
२. वही, ४-६२
३. 'अलकाश्चूर्णकुन्तला', "द्वे कुटिलकेशानाम्"—अमरकोष तथा रामाश्रमी टीका, २-६-९६
४. रघुवंश, ४-६१

काम्बोज

काम्बोजों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि काम्बोज लोग रघु के सामने ठहर नहीं पाए—

काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वराः ।[1]

ईरानी घुड़सवार

रघु और पारसीकों के युद्ध का वर्णन करते हुए कालिदास ने पाश्चात्य ईरानियों के लिए कहा है कि वे 'अश्वसाधन' थे—

पाश्चात्यैरश्वसाधनैः[2]

इस प्रकार कवि ने प्रकट किया है कि ईरानी लोग अच्छे घुड़सवार होते थे।

छत्तेनुमा दाढियां

पश्चिमोत्तरी क्षेत्र के निवासियों की मधुमक्खियों से भरे शहद के छत्तेनुमा दाढ़ियों की भी चर्चा कवि ने की है—

भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम् ।
तस्तार सरघाव्याप्तैः स क्षौद्रपटलैरिव ॥[3]

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के ध्वंसावशेषों से प्राप्त मानव-मूर्ती के मुख पर भी ठीक ऐसी ही छत्तेनुमा दाढ़ी है। महाभारत में भी ऐसी ही दाढ़ी का उल्लेख किया गया है।

ईरानी कुल्ले या नुकीली टोपियां

कालिदास ने कहा है कि युद्ध में बचे हुए ईरानी लोग अपने कुल्ले उतार-उतार कर रघु की शरण में आ गए—

अपनीतशिरस्त्राणाः शेषास्तं शरणं ययुः ।[4]

---

१. रघुवंश, ४-५६

२. वही ४-६२

३. वही, ४-६३

४. वही, ४-६४

अंगूरी शराब और मधुशालाएँ

कालिदास ने पश्चिमोत्तरी क्षेत्र का प्रमुख भौगोलिक वैशिष्ट्य यह बताया है कि वहाँ अंगूर इतनी बहुतायत से पैदा होता है कि पुरुष ही क्यों वहाँ की स्त्रियाँ भी अंगूरी शराब की शोकीन हैं।अंगूरी बेलों से बने लता-मण्डपों में पानगोष्ठियों का आयोजन वहाँ होता ही रहता है—

द्राक्षावलयभूमिषु[1]

ईरान या मध्य एशिया के रेगिस्तान

कालिदास ने कहा है कि रघु-पारसीक युद्ध में इतनी रेत उड़ी की उसके कारण कहीं कुछ दिखाई नहीं देता था। यहां तक कि सैनिक भी एक दूसरे को धनुष की टंकार सुनकर ही पहचान पाते थे —

शार्ङ्गकूजितविज्ञेये प्रतियोधे रजस्यभूत् ।[2]

इस प्रकार कवि ने इस क्षेत्र के प्रमुख भौगोलिक वैशिष्ट्य 'रेगिस्तान' का यथास्थान चित्रण किया है।

हिमालय के जन

कालिदास ने हिमालय-वासियों को सामान्यत: 'पर्वतीयगण' जैसे साधारण शब्दों से अभिहित किया है। जैसे कि रघुवंश के—

तत्र जन्यं रघोर्घोरं पर्वतीयगणैरभूत् ॥[3]

में कवि द्वारा हिमालय में रहने वालों के लिए यह "पर्वतीयगण" शब्द वैसा ही है जैसे कि वर्तमान में इन लोगों के लिए प्रयुक्त'पहाड़ी' शब्द।

अमरकोष में हिमालय वासी विद्याधर, अप्सर, रक्ष, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध और भूतों को 'देवयोनियां' कहा गया है[4]। भूतों या हिमालय की 'भूत' भोटिया नामक जाति का निवास ही वर्तमान 'भूटान'—भूतानाम्—है।

इनके अतिरिक्त कवि ने किरात और उत्सवसंकेत नामक पहाड़ी जातियों का भी यथास्थान उल्लेख किया है।

---

१. रघुवंश, ४-६५
२. वही, ४-६२
३. वही ४-७७
४. अमरकोष, १-११

यक्ष

मेघदूत का नायक "यक्ष" स्पष्टतः यक्ष जाति का ही है। यक्ष जाति के लोग प्रमुखतः अलकापुरी के आसपास रहा करते थे। इसकी चर्चा करते हुए कवि ने स्पष्ट कहा है—

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि।[१]

अल्मोड़ा और उसके आसपास के क्षेत्रों में अब भी 'जाखिया' लोग रहते हैं। ये "जाखिया" वास्तव में "यक्ष" ही हैं।

किन्नर

किंपुरुष या "किन्नर" जाति का उल्लेख कवि ने--

जयोदाहरणं बाह्वार्गोपयामास किन्नरान्।"[२]

आदि श्लोक में किया है। वर्तमान शिमला के नीचे प्रवाहित शतलुज नदी की घाटी में बसा हुआ 'किन्नोर' प्रदेश इन्ही किन्नरों का मुख्य आवास स्थान है।

किरात

असम तथा अन्य पूर्वोत्तरी क्षेत्रों के मूल निवासी किरातों का उल्लेख कवि ने रघुवंश में किया है। इसका उल्लेख पूर्व क्षेत्र के प्रसंग में पहले किया जा चुका है[३]।

उत्सवसंकेत

हिमाचल प्रदेश के "त्रिगर्त" कुल्लू-कांगड़ा में बसे हुए संसप्तकगणों को सामूहिक रूप से 'उत्सवसंकेत' कहा गया है। इन लोगों में वर-वधू के 'संकेत' या पूर्वनिश्चित स्थान में मिल कर 'गांधर्व' 'विवाह' की प्रथा प्रचलित थी, इसीलिए इन्हें 'उत्सवसंकेत' कहा जाता था। ऐसी प्रथा इस क्षेत्र के लाहोल-स्फीति जैसे कई क्षेत्रों में अब भी प्रचलित है।

कालिदास ने उत्सवसंकेतों की चर्चा करते हुए—

तत्र जन्यं रघोर्घोरं पर्वतीयगणैरभूत।
शरैरुत्सवसंकेतान् स कृत्वा विरतोत्सवान्॥"[४]

---

१. रघुवंश, ४-७७
२. मेघदूत, उत्तरमेघ-५
३. देखिए पृष्ठ ४७
४. रघुवंश ४-७७,७८

में उन्हें पर्वतीयगण कहकर संसप्तकगण की ही सूचना दी है । महाभारत में कहा गया है कि अर्जुन ने उत्सवसंकेतगणों को जीता था।[1]

मध्य एशिया के हूण

कवि ने वंक्षु नदी के आसपास पड़ाव डाले हुए हूणों की चर्चा करते हुए कहा है :—

तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम् ।[2]

निष्कर्ष

पूर्वोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कालिदास ने अपने काव्यों में "उदीच्य"—पश्चिमोत्तरी क्षेत्र के केकय, सिन्धु, कारापथ पारसीक, वाल्हीक, और कम्बोज जैसे जनपदों तथा पारसीक, यवन, हूण, कम्बोज, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, किरात, और उत्सवसंकेत आदि इस क्षेत्र के निवासी जनों की चर्चा की है।

सुमेरु, कैलास, हेमकूट, मन्दर, और हिमालय जैसे पर्वतों और उनसे निकलने वाली वंक्षु, मन्दाकिनी, सिन्धु, भिद्य, उद्ध्य और गंगा जैसी छोटी-बड़ी नदियों के साथ ही मानस तथा पुष्कर सरोवरों का उल्लेख भी कवि ने किया है।

इस क्षेत्र की वन-सम्पदा में अखरोट, भूर्ज, देवदारु, नमेरु, सरल, कीचक, द्राक्षा और केसर जैसी कृषि उपज और लवण, (सेन्धा नमक) अंजन, शिलाजतु, हरताल, मैन्सिल और वैदूर्य आदि खनिज व कस्तूरी जैसे प्राणिज द्रव्यों का ब्यौरा भी कवि ने दिया है।

इनके अतिरिक्त ईरान और कम्बोज के प्रसिद्ध अश्व तथा हिमालय के कस्तूरी मृग, चमरी मृग, एवं शरभ, जैसे इस क्षेत्र के विशिष्ट जीवों की भी चर्चा की गई है ।

इस प्रकार कवि ने अपने तीन काव्यों और तीनों नाटकों में पूर्व में असम से लेकर पश्चिम में 'वंक्षुतटवर्ती' कम्बोज और हिन्दुकुश तथा दक्षिण में पुष्कर से लेकर उत्तर में सुमेरु तक फैले उदीच्य क्षेत्र और हिमालय की बहिर्गिरि नामक वृक्ष श्रेणी, उपगिरि नामक पुष्प-दूर्वा श्रेणी तथा अन्तर्गिरि नामक हिमश्रेणी की वस्तुस्थिति के सही और प्रामाणिक चित्र खींचे हैं।

---

१. गणानुत्सवसंकेतानजयत् सप्त पाण्डवः । —महा० सभा० २७.१६
२. वही, ४-६८

षष्ठ अध्याय

कालिदास-निर्दिष्ट भारतवर्ष का मध्यक्षेत्र-आर्यावर्त

उ० अक्षांश—२२ से ३१

पूर्वदेशांतर—७६ से ६०

ब्रह्मावर्ताश्च कुरवः शूरसेनाश्च कोशलाः।
काशिनिषिधवत्साश्च दशार्णावन्त्यनूपकाः ॥
विषयाः कालिदासोक्ता मध्यक्षेत्रगता दश ।

कालिदास-निर्दिष्ट मध्यक्षेत्र—मध्यदेश-आर्यावर्त

मध्यक्षेत्र का भौगोलिक वैशिष्ट्य तथा सीमाएं

अमरकोष में कहा गया है कि उत्तर भारत के 'मध्यक्षेत्र' या मध्यवर्ती भाग को 'मध्यदेश' कहा जाता है।[1] आज का मध्यदेश तो मालवभूमि, बुन्देलखण्ड और छत्तीसगढ़ के आस-पास तक के क्षेत्रों में सीमित होकर रह गया है, किन्तु प्राचीनकाल में पूर्व में प्रयाग से लेकर पश्चिम में सरस्वती के विनशन-अम्बाला-कुरुक्षेत्र तथा दक्षिणोत्तर में विन्ध्य से हिमालय तक फैले हुए क्षेत्र के लिए 'मध्यदेश' यह पारिभाषिक संज्ञा प्रयुक्त होती थी, यह मनुस्मृति में स्पष्टतया प्रतिपादित है।[2]

आचार्य पतंजलि ने महाभाष्य में 'मध्यदेश' को ही 'आर्यावर्त' बताया है और कहा है कि आर्यावर्त के किसी भी विद्या में पारंगत ब्राह्मणों का आचार ही शिष्टानुमत है। आचार्य ने आर्यावर्त की सीमा सरस्वती के विनशन से कालकवन (राजमहल बिहार की पहाड़ियां) तथा हिमालय से पारियात्र (अर्वली) तक निर्धारित की है।[3]

मध्यक्षेत्र के जनपद

मध्यक्षेत्र के जनपदों का वर्णन करते हुए मत्स्य पुराण में कहा गया है कि कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, जंगलदेश, शूरसेन (मथुरा), भद्रकार, बाहरी पटच्चर, मत्स्य, किरात, कुल्य, कुन्तल, काशि, कोशल, आवन्त, (अनूप भी इसी में सम्मिलित है), कलिंग, मूकों के साथ अन्धक ये जनपद प्रायः मध्यदेश

---

१. मध्यदेशस्तु मध्यमः।

—अमरकोष, २-१-७

२. हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥

—मनुस्मृति, २-२१

३. कःपुनरार्यावर्तः? प्रागदर्शनात् प्रत्यक् कालकवनाद्, दक्षिणेन हिमवन्तम्, उत्तरेण पारियात्रम्। एतस्मिन्नार्यावर्ते ये ब्राह्मणा.........कस्याश्चिद् विद्यायाः पारंगतास्तत्रभवन्तः शिष्टाः।

—महाभाष्य, ६-३-१०९

के अन्तर्गत समझे जाते हैं।[1] साथ ही यह भी कहा गया है कि यह **मध्यदेश सम्पूर्ण भूमण्डल पर सबसे सुन्दर और श्रेष्ठ है।**[2]

इस प्रकार मध्यदेश की व्याप्ति और उसके अन्तर्गत आने वाले जनपदों के सुनिर्धारण हो जाने के बाद अब देखना यह है कि कालिदास ने अपनी कृतियों में इस मध्यदेश की प्रकृति और जन-जीवन की—नदी, वन, पर्वत, सरोवर, ग्राम, नगर और जनपदों आदि तथा यहां के निवासियों और उनके रहन सहन की, इस क्षेत्र में पाए जाने वाले वन्य प्राणी और वनस्पतियों की कैसी चर्चा किस रूप में और कहाँ-कहाँ की है। इस सम्बन्ध में विचार करते हुए हम पाते हैं कि कवि ने भारतवर्ष के पूर्वी, दक्षिणी, पश्चिमी और उत्तरी क्षेत्रों की भांति इस मध्यदेश के विविध तत्त्वों का भी उसी निष्ठा के साथ तथ्य-परक प्रतिपादन किया है। कवि की अपनी जन्मभूमि-अवन्ती या उज्जैन भी इसी मध्यक्षेत्र में पड़ती है। इसलिए मालवभूमि की विशेषताओं का ब्योरा कवि की अमर लेखनी के द्वारा बड़े विस्तार के साथ अंकित हुआ है। आगामी पृष्ठों में कालिदास-द्वारा प्रतिपादित मध्यक्षेत्र के प्रमुख वैशिष्टय के विवेचन का प्रयत्न किया जा रहा है। पश्चिमोत्तर में ब्रह्मावर्त से दक्षिण की ओर अवन्ती क्षेत्र तक बढ़ने वाले यात्री के समक्ष इस क्षेत्र के एक के बाद दूसरे ये प्रदेश सामने आते हैं।

ब्रह्मावर्त और कुरु जनपद

पहले सरस्वती और दृशद्वती के बीच की भूमि 'ब्रह्मावर्त' कहलाती थी।[3] यह स्थान इतना पवित्र समझा जाता था कि इसे देवनिर्मित देश कहा

---

१. तास्विमे कुरुपांचालाः शाल्वाश्चैव सजांगलाः।
शूरसेना भद्रकारा बाह्याः सहपटच्चराः॥
मत्स्याः किराताः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः।
आवन्ताश्च कलिंगाश्च मूकाश्चैवान्धकैः सह॥
मध्यदेशजनपदाः प्रायशः परिकीर्तिताः।
सह्यस्यानन्तरे चैते तत्र गोदावरी नदी॥

२. पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः।
—मत्स्य पु० ११३-३४-३७

३. सरस्वतीदृशद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥
तस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥ —मनुस्मृति, २-१७-१८

गया है। ब्रह्मावर्त को पुण्यभूमि का विस्तार ब्रह्मर्षि देश के रूप में हुआ, जिसमें कुरुक्षेत्र, मत्स्य (जयपुर अलवर आदि), शूरसेन (मथुरा, आगरा, अलीगढ़,) और पाञ्चाल-कन्नौज फर्रुखाबाद, बरेली के जनपद सम्मिलित हुए। गंगा यमुना के ऊपरी काँठे के इस क्षेत्र को मनु ने अत्यन्त पवित्र कहा है। कहा गया है कि यहां के शिष्ट अग्रजन्मा पुरुषों का सदाचार पृथ्वी के समस्त मानवों के लिए शिक्षा का मानदण्ड था।[1]

कुरु जनपद

पूर्वी पंजाब की सबसे बड़ी भौगोलिक इकाई कुरु जनपद थी। वस्तुतः इसके तीन भाग हैं—कुरुराष्ट्र, कुरुक्षेत्र और कुरुजांगल। ये तीनों एक दूसरे से सटे हुए हैं। थानेश्वर के चारों ओर का प्रदेश कुरुक्षेत्र या ब्रह्मावर्त, हिसार का कुरुजांगल और हस्तिनापुर का कुरु राष्ट्र है। मोटे तौर पर सरस्वती से गंगा तक का प्रदेश कुरु जनपद के अन्तर्गत समझा जाता था। गंगा यमुना के बीच का मेरठ के आस पास का क्षेत्र असलो कुरुराष्ट्र था, जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी।

कालिदास ने मेघदूत में यक्ष द्वारा मेघ के मार्गदर्शन के प्रसंग में ब्रह्मावर्त और कुरुक्षेत्र इन दोनों का पृथक्-पृथक् उल्लेख कर यह स्पष्ट कर दिया है कि 'ब्रह्मावर्त' सरस्वती और दृशद्वती तक सीमित ब्रह्मावर्त के पश्चिम का कुरुजांगल तथा पूर्व का कुरुराष्ट्र एवं कुरुक्षेत्र से मिलकर 'कुरुजनपद' कहलाता था। ब्रह्मावर्त और कुरुक्षेत्र के ऐतिहासिक महत्त्व एवं वैशिष्ट्य का वर्णन भी कवि ने निम्न श्लोक में एक साथ ही किया है—

ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः।
राजन्यानां सितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥[2]

अर्थात् हे मेघ, वहां (दशपुर क्षेत्र) से आगे बढ़ते हुए अपनी छाया से ब्रह्मावर्त जनपद का अवगाहन करते हुए तुम उस कुरुक्षेत्र की ओर अग्रसर हो जाना जो कौरव-पाण्डवों के आपसी युद्ध के कारण आज तक कुख्यात है,

---

१. एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥
—मनुस्मृति, २-२०

२. पूर्वमेघ-५२

वहीं पर गाण्डीवधारी अर्जुन ने शत्रु राजाओं के मुखों पर वैसे ही अनगिनत बाण बरसाए थे, जैसे तुम कमलों पर अपनी जलधारा बरसाते हो।

यहां कवि के 'कुरुक्षेत्र' में कुरुजांगल से हस्तिनापुर तक का प्रदेश सम्मिलित है। इसी प्रकार ब्रह्मावर्त का विस्तृत रूप 'ब्रह्मर्षिदेश' भी कवि के ब्रह्मावर्त में सम्मिलित है।

शूरसेन

ब्रह्मावर्त और कुरु जनपद से दक्षिण की ओर आगे बढ़ने पर प्राचीन यात्री शूरसेन प्रदेश या व्रजभूमि में प्रवेश करता है। कवि ने रघुवंश के छठे सर्ग में सुषेण राजा के वर्णन के प्रसंग में कहा है कि वह उस शूरसेन देश का शासक है जिसके बीचोंबीच यमुना नदी प्रवाहित होती है—

सा शूरसेनाधिपतिं सुषेण-
मुद्दिश्य लोकान्तरगीतकीर्तिम् ।
आचारशुद्धोभयवंशदीपं
शुद्धान्तरक्ष्या जगदे कुमारी ॥[1]

वत्स जनपद

वत्स जनपद की भौगोलिक स्थिति शूरसेन और कोशल के बीच में पड़ती है। प्रयाग से ४० कि० मी० दक्षिण-पश्चिम में यमुना-तटवर्ती कोशाम्बी (आधुनिक 'कोसम') नगरी वत्सदेश की राजधानी थी। वाल्मीकिरामायण में कहा गया है कि वन-गमन के समय श्रीराम महानदी गंगा को पार कर वत्स देश में पहुँचे[2]। इससे ज्ञात होता है कि वत्स देश उत्तर में गंगा तक फैला हुआ था और गंगा कोशल तथा वत्स के बीचोंबीच बहती थी।

विष्णुपुराण में यह कहा गया है कि—हस्तिनापुर के गंगा की बाढ़ में बह जाने के बाद परीक्षित के वंशज निचक्षु ने वत्स देश की कोशाम्बी नगरी को अपनी राजधानी बनाया था[3]।

बुद्ध के समय में कोशाम्बी का बड़ा वैभव था, किन्तु मौर्य युग में

---

१. रघुवंश, ६-४५

२. तीर्त्वा महात्मा वरदो महानदीम् ।
.........वत्सान् मुदितानुपागमत् ॥ —वा०रामा० अयो०, ५२-१०१

३. अधिसीमकृष्णान्निचक्नुर्यो गंगयापहृते हस्तिनापुरे कोशाम्ब्यां निवत्स्यति।
—वि० पु०, अंश ४-२१-७८

कोशाम्बी श्रीहीन हो चुकी थी। गुप्त युग में श्रावस्ती आदि अन्य बौद्ध केन्द्रों के समान कोशाम्बी भी अपना महत्त्व खो बैठी। यही कारण है कि कालिदास ने कोशाम्बी की चर्चा न कर उदयन को वत्सराज बताते हुए—

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे।[1]

में 'वत्सदेश' का प्रासंगिक निर्देशमात्र किया है। इससे यह भी स्पष्ट है कि कवि के समय में 'वत्स' अपनी स्वतन्त्र सत्ता खो कर मगध में मिल चुका था।

काशिजनपद

विक्रमोर्वशीय में महाराज पुरूरवा की पटरानी औशीनरी को 'काशिराजपुत्री' बताते हुए कवि ने वत्स और कोशल के मध्यवर्ती काशि-जनपद की प्रासंगिक चर्चा की है।

ततः प्रविशति सपरिवारा काशिराजपुत्री देवी चेटी च।[2]

काशिजनपद का कवि के द्वारा गौण रूप से किया गया यह उल्लेख बताता है कि वत्स के समान 'काशि' जनपद भी गुप्त-युग में मगध में मिल चुका था।

कोशल

शूरसेन तथा वत्स के पूर्वोत्तर में कोशल (अवध) का क्षेत्र आता है। यह क्षेत्र उत्तर में नेपाल की तराई से लेकर दक्षिण में विन्ध्य शृंखला या विदर्भ की सीमा तक तथा पूर्व में मगध (बिहार) की पश्चिम सीमा से लेकर पश्चिम में शूरसेन तक फैला हुआ था। प्रशासनिक दृष्टि से यह क्षेत्र उत्तर-कोशल तथा दक्षिणकोशल इन दो भागों में बँटा हुआ था। अयोध्या वस्तुतः उत्तरकोशल की राजधानी थी। कौशल्या दक्षिणकोशल प्रदेश के शासक की पुत्री थी। यही बात कवि ने—

मगधकोशलकेकयशासिनां
दुहितरो हितरोपितमार्गणम्।[3]

में बतायी है।

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ
२. विक्रमोर्वशीय २-१८
३. रघुवंश, ६-१७

दशार्ण

निषध के दक्षिण तथा वत्स के दक्षिण पश्चिम में प्रवाहित वेत्रवती—बेतवा और दशार्ण आधुनिक 'ढसान' नदी से सिंचित पूर्वी मालवा तथा बुन्देलखण्ड ही प्राचीन 'दशार्ण' जनपद है। विदिशा दशार्ण की राजधानी थी[1]।

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है कि पाणिनीय अष्टाध्यायी के 'एत्येधत्यूठसु' (६-१-८९) पर कात्यायन के "प्रवत्सतर" आदि वार्तिक में पठित 'दशार्ण' शब्द 'दशैकादश' पद्धति या दस-दस की किश्तों में चुकाया जाने वाला ऋण इस यौगिक अर्थ में ही प्रयुक्त है[2]। किन्तु देशवाचक दशार्ण का उल्लेख, महाभारत के गुप्त युग में संकलित आधुनिक रूप में भी मिलता है। निश्चित ही यहाँ ऋण शब्द का अर्थ जल या नदी है कर्जा नहीं[3]।

कालिदास ने वर्षाऋतु में काले-काले जामुनों से लदे वनों से भरपूर दशार्ण जनपद का वर्णन करते हुए यह भी कहा है कि बसेरा डाले हुए हंस अब वहाँ से मानसरोवर की ओर उड़ रहे होंगे—

त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः।[5]

अवन्ति जनपद

दशार्ण से दक्षिण पश्चिम में उसके साथ सटा हुआ है मालवा के नाम से प्रसिद्ध 'अवन्ति' जनपद। अवन्ति जनपद की राजधानी अवन्ती या अवन्तिकापुरी (उज्जैन) थी[6]। कालिदास ने—

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्।[7]

में अवन्ति जनपद का नामोल्लेख किया है। इसी प्रकार कवि ने

---

१. देखिए पृष्ठ—
२. पाणिनीकालीन भारतवर्ष, ले० वा० श० अग्रवाल, पृष्ठ—२७२
३. महाभारत, सभा० २९-४-५१
४. 'ऋणे देये जले दुर्गे' इति हैमः। —अमरकोष २-९-२ की रामाश्रमी टीका
५. मेघदूत, पूर्वमेघ—२५
६. देखिये पृष्ठ-१७६
७. मेघदूत, पूर्वमेघ-३२

रघुवंश के :—

अवन्तिनाथोऽयमुदग्रबाहुः[1]

में भी अवन्ति-जनपद के राजा की चर्चा की है।

महाभारत में अवन्ति जनपद के विन्द और अनुविन्द को सहदेव के द्वारा पराजित किये जाने को चर्चा की गई है[2]। षोडश महाजनपदों में अवन्ति जनपद की भी गणना की गयी है। जनपद वाचक अवन्ति शब्द पुंलिंग और बहुवचन है तथा नगरी वाचक स्त्रीलिंग है।[3]

अनूप

अमरकोष में कहा गया है कि जलप्राय देश को 'अनूप' कहा जाता है।[4] तदनुसार नर्मदा तटवर्ती ओंकारेश्वर मान्धाता और महेश्वर के आस-पास के क्षेत्र को 'अनूप' देश और इसकी राजधानी का नाम माहिष्मती बताया गया है।

कालिदास ने अवन्ति-नरेश के साथ अनूपराज की भी चर्चा की है—

अनूपराजस्य गुणैरनूनाम्।[5]

इस प्रकार कालिदास ने अवन्ति और अनूप इन दोनों पड़ोसी जनपदों की सहस्थिति से सम्बद्ध भौगोलिक तथ्य भी स्वतः उद्घाटित कर दिया है।

निषध

ग्वालियर से ६० कि०मा० दक्षिण-पश्चिम में स्थित वर्तमान 'नरवर' ही प्राचीन 'निषध' जनपद की राजधानी है। इस प्रकार सिन्धु चम्बल के आसपास का मालवा का उत्तरी पठार ही प्राचीन निषध है। कालिदास ने महाराज अतिथि की पटरानी को निषधराज की पुत्री बताया है:—

स नैषधास्यार्थपतेः सुतायाम्[6]

---

१. रघुवंश, ६-३२
२. महा० सभा०, ३१-१०
३. देखिये पृष्ठ—
४. जलप्रायमनूपं स्यात्। अमरकोश २-१-१०
५. रघुवंश, ६-३७
६. रघुवंश, १८-१

महाभारत में नल और उनके पिता वीरसेन को 'निषध' का राजा बताया गया है[1]।

दक्षिण कोशल

कवि ने यद्यपि दक्षिण कोशल का नामोल्लेख नहीं किया तथापि रघुवंशियों के लिये:—

काकुत्सशब्दं.........दधत्युत्तरकोशलेन्द्राः ।[2]

में 'उत्तर कोशलेन्द्र' शब्द का प्रयोग कर यह स्पष्ट कर दिया है कि कोशल जनपद 'उत्तर' और 'दक्षिण' इन दो भागों में बँटा हुआ था। श्रीराम ने अपने पुत्र कुश को दक्षिण कोशल का राज्य दिया था। यहाँ उसने अपने नाम से 'कुशावती' नामक एक नई राजधानी बसाई थी:—

स निवेश्य कुशावत्यां रिपुनागांकुशं कुशम् ।[3]

मध्यक्षेत्र के नगर, ग्राम, वन, उपवन, तीर्थ और आश्रम

मध्यक्षेत्र के कुरुक्षेत्र, कनखल, हस्तिनापुर, मथुरा, प्रतिष्ठानपुर-(प्रयाग), अयोध्या (साकेत), शरावती (श्रावस्ती) विदिशा, माहिष्मती, कुशावती, कुण्डिनपुर, उज्जयिनी, और दशपुर (मन्दसौर) इन चौदह नगरों के साथ ही अयोध्या के निकटवर्ती नन्दीग्राम व शृंगवेरपुर एवं अयोध्या, मथुरा, विदिशा तथा उज्जयिनी के उपवनों की भी चर्चा कालिदास ने की है। कण्वाश्रम, वसिष्ठाश्रम, च्यवन-आश्रम, वाल्मीकि-आश्रम, और शरभंग, सुतीक्ष्ण व अत्रि ऋषि के आश्रमों के सिवा वरतन्तु के आश्रम, कामाश्रम एवं मथुरा के आस-पास अनेक ऋषियों के आश्रमों के अतिरिक्त शक्रावतार, शची तीर्थ तथा अप्सरस्तीर्थ का उल्लेख भो कवि की कृतियों में मिलता है।

कुरुक्षेत्र

प्राचीन ऐतिहासिक स्थान पवित्र तीर्थ कुरुक्षेत्र दिल्ली-अम्बाला रेल

---

१. निषधेषु महीपालो वीरसेन इति श्रुतः।
तस्य पुत्रोऽभवन्नाम्ना नलो धर्मार्थकोविदः ॥ महा०, वन०, ५२-५५

२. रघुवंश, ६-७१

३. वही, १५-९७

मार्ग पर स्थित रेलवे जंक्शन है। आजकल तो रेलवे स्टेशन के निकटवर्ती ब्रह्मसर, ज्योतिसर और 'सन्निहित' या सेनाहत नामक तीन सरोवरों के आसपास तक ही 'कुरुक्षेत्र' सीमित हो गया है, किन्तु प्राचीन युग में लगभग ८० कि० मी० तक का क्षेत्र 'कुरुक्षेत्र' माना जाता था। कुरुक्षेत्र के सरोवर कमलों से सुशोभित हैं तथा अनेक मंदिरों व धार्मिक संस्थाओं के अतिरिक्त कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के कारण यह इस क्षेत्र का प्रमुख शिक्षा-केन्द्र भी बना गया है।

कालिदास ने मेघदूत में यक्ष के मुख से कहलाया है—

क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथा ।[1]

अर्थात् हे मेघ, (दशपुर से आगे बढ़ते हुए) तुम उस कुरुक्षेत्र में जा पहुंचोगे, जो (परशुराम जी के द्वारा किए गए) क्षत्रिय-संहार के कारण आज तक भी कुख्यात है।

महाभारत में कुरुक्षेत्र की चर्चा अनेकत्र हुई है। श्रीमद्भगवद्गीता के आरम्भ में ही कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र कहा गया है।[2]

कनखल

हरद्वार से ४ कि० मी० नीचे गंगा के पश्चिमी तट पर कनखल नगर बसा हुआ है। मायापुर भी कनखल और हरद्वार के मध्य बसा हुआ प्राचीन नगर है। पुराणों में मोक्षदायिनी सातपुरियों की गणना के प्रसंग में हरद्वार या कनखल का नाम न लेकर इसी मायापुरी को परिगणित किया गया है।[3] कनखल में गंगा-तट पर कई पक्के घाट बने हुए हैं। यहां साधु संन्यासी तथा महात्माओं के अनेक मठ-मन्दिर भी हैं। कनखल में गंगा का प्रवाह हरद्वार की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से प्रवाहित हो रहा है। प्रसिद्ध 'गंग-नहर' यहीं से निकाली गयी है। स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित आर्य संस्कृति तथा संस्कृत प्रचार प्रसार का प्रमुख केन्द्र गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय तथा पं० मदनमोहन मालवीय जी द्वारा स्थापित ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम और गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर आदि शैक्षणिक संस्थाओं के कारण

---

१ मेघदूत, पूर्वमेघ-५२

२. गीता, १-१

३. अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

ज्वालापुर, मायापुरी, व हरद्वार का शिक्षा-जगत् में भी अपना एक विशेष स्थान है।

कहा जाता है कि दक्ष-प्रजापति ने अपना प्रसिद्ध यज्ञ यहीं किया था, जिसकी स्मृति में कनखल में एक दक्षेश्वर महादेव का प्राचीन मन्दिर अब भी विद्यमान है। दोनों नगरों के भवनों और मन्दिरों को देखने से भी यह बात स्पष्ट होती है कि हरद्वार की अपेक्षा कनखल बहुत प्राचीन है।

कालिदास के मेघदूत का यक्ष मेघ को हिमालय में प्रवेश करने का मार्ग दिखाते हुए कहता है कि ब्रह्मावर्त जनपद में कुरुक्षेत्र और सरस्वती नदी को पार कर तुम 'कनखल' जा पहुंचना, जहां गंगा पर्वतराज हिमालय से उतर कर पहले-पहल मैदान में प्रवेश करती है—

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम् ।[1]

कनखल का उल्लेख वाल्मीकिरामायण के उत्तरकाण्ड में भी मिलता है।[2] स्कन्दपुराण के गंगा-महात्म्य में कनखल का उल्लेख है।[3] महाभारत में कहा गया है कि कनखल में स्नान कर लेने के बाद पुनर्जन्म नहीं होता।[4] यही बात हरिवंशपुराण में भी कही गयी है। इससे ज्ञात होता है कि हिमालय से उतर कर गंगा जहां मैदानों में प्रवेश करती है, उस स्थान पर कनखल नगर बहुत प्राचीन समय में बस चुका था। मोनियर विलयम्स ने अपने कोष में कनखल का अर्थ छोटा गर्त बताते हुए इसकी व्युत्पत्ति दी है जो सर्वथा सार्थक है। कनखल के साथ नीलकेश्वर (नीलधारा), बिल्वकेश्वर[5], कुशावर्त (घाट) और हरद्वार का प्रातः स्नान के समय स्मरण किया जाता है।[5]

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ-५४

२. वा० रामा०, उ० का०, ३३-११

३. खलः को नात्र मुक्तिं वै भजते नात्र मज्जनात्।
अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रुः मुनीश्वराः॥
—स्कंद पु०, गंगा-महात्म्य

४. स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते।
—महा० अनु०-२५-३०

५. हरद्वारे कुशावर्ते नीलके बिल्वकेश्वरे।
स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते॥

हस्तिनापुर

कनखल के समीप आर्यावर्त के मैदानों में स्थित हिमालय के उपत्यकावर्ती प्रदेश में प्रवेश करने के बाद गंगा पूर्वाभिमुख बहती हुई हस्तिनापुर तक हिमालय के पाद-प्रदेशों में ही प्रवाहित होती रहती है। गंगा-प्रवाह के साथ पूर्व की ओर चलने वाले यात्री को गंगा तट पर बसा हुआ जो प्राचीन नगर पहले मिलता है, वह है हस्तिनापुर। मेरठ से ३५ कि० मी० उत्तरपूर्व में स्थित यह एक पुराना नगर है। यहां अनेक प्राचीन अवशेष भी मिले हैं।

हस्तिनापुर के निकटतम रेलवे स्टेशन का नाम खतौली है। निचक्षु के समय में हस्तिनापुर पहली बार गंगा की बाढ़ में बह गया था। उसके बाद यह नगर तीन बार बसा और उजड़ा, ऐसा इस स्थान की प्राचीन खुदाइयों से ज्ञात हुआ है। जैन तीर्थ के रूप में हस्तिनापुर की मान्यता सदा बनी रही। 'गजपुर', 'नागपुर', 'नागसाह्वय' और हस्तिग्राम आदि के साथ 'आसन्दीवत्' भी इसका प्राचीन नाम है।

पहले हस्तिनापुर गंगा के तट पर बसा हुआ था, किन्तु अब गंगा इस नगर से कई किलोमीटर दूर हट गयी है। हां, बूढ़ी गंगा (गंगा की एक पुरानी धारा) इसके पुराने टीलों के समीप अब भी बहती है।

हस्तिनापुर का उल्लेख कालिदास ने महाराज दुष्यन्त की राजधानी के रूप में अभिज्ञानशाकुन्तल में किया है। प्रथमांक में दुष्यन्त हस्तिनापुर से ही मृगया के लिए वन की ओर जाता है। द्वितीय अंक में कहा गया है कि हस्तिनापुर से माताओं का संदेश लेकर अर्भक आया है।[1]

कवि ने दुष्यन्त की राजधानी का नामोल्लेख न कर 'नगर', 'पुर' या 'राजधानी' जैसे शब्दों का ही प्रयोग किया है, किन्तु चतुर्थांक में एक स्थान पर प्रियवंदा कहती है—

अनसूये, त्वरस्व त्वरस्व एते खलु
हस्तिनापुरगामिनः ऋषयः शब्दायन्ते।[2]

यहां 'हस्तिनापुर' के स्पष्ट नामोल्लेख से कालदोष है, किन्तु महर्षि व्यास ने भी महाभारत के शाकुन्तलोपाख्यान में दुष्यन्त की राजधानी का नाम 'गजसाह्वय' या 'हस्तिनापुर' ही बताया है। महाभारत तथा श्रीमद्भागवत में हस्तिनापुर तथा गजसाह्वय इन दोनों का अनेकत्र प्रयोग

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल, अंक-२, श्लोक-१६ से आगे गद्य

२. वही, अंक-४, श्लोक-४ से आगे गद्य

हुआ है। महाभारत के उक्त प्रसंग में भी कहा गया है कि 'महर्षि कण्व के आश्रम से ऋषिगण शकुन्तला को अपने साथ लेकर दुष्यन्त की राजधानी 'गजसाह्वय' हाथी के नाम वाले 'हस्तिनापुर' की ओर चल पड़े।'[1]

प्रतीत होता है कि दुष्यन्त की राजधानी 'गजपुर' या 'हस्तिनापुर' का सम्बन्ध राजा 'हस्तिन्' से न होकर हिमालय की उपत्यकाओं के एक प्रमुख वैशिष्टय हस्ति या हाथियों के बाहुल्य या नागों की प्रधानता से रहा होगा। परवर्ती काल में राजा हस्तिन् के कारण ही हस्तिनापुर नाम वैसे ही प्रसिद्ध हो गया, जैसे भरणशील और 'भरत' अग्नि के नाम पर पड़ा हुआ 'भारत' नाम क्रमशः आर्षभ और दौष्यन्ति भरत के नाम पर जाना जाने लगा।

मथुरा

कुरुजनपद के साथ सटा हुआ दक्षिणपूर्वी भूभाग शूरसेन के नाम से प्रसिद्ध है। मथुरा शूरसेन 'जनपद' की राजधानी के रूप में अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। यह नगरी आगरा-दिल्ली मार्ग पर दिल्ली से १५० कि० मी० पूर्व तथा आगरा से ५० कि० मी० पश्चिम में रेलवे का प्रसिद्ध जंक्शन है। गोकुल, वृन्दावन और गोवर्धन आदि व्रजभूमि के अन्य प्रसिद्ध तीर्थ और नगर भी इसी के आसपास बसे हैं। पुरातत्त्व विभाग की ओर से की गयी खुदाइयों से पुरानी मथुरा के जो अवशेष मिले हैं, उनसे इस नगर की प्राचीनता प्रमाणित होती है। सम्राट् हर्ष के समय में आये चीनी यात्री ह्यूनसांग ने मथुरा तथा यमुना तट पर बने घाटों का वर्णन किया है। इससे पूर्व गुप्तकाल में आने वाले चीनी यात्री फाह्यान ने भी मथुरा के 'अभ्रंलिह' प्रासादों की चर्चा की है। आज भी मथुरा में यमुना पर दशाश्वमेध, चक्रतीर्थ, वसुदेव, घटभरण, उत्तरकोट, अरिमुख घाट तथा विश्रामघाट और ध्रुवघाट दो किलोमीटर तक बने हुए हैं। इनके साथ मन्दिरों और भव्य भवनों की शोभा देखते ही बनती है।

कालिदास ने मथुरा नगरी तथा उसके साथ बहती हुई यमुना की शोभा का यथास्थान वर्णन किया है—

शत्रुघातिनि शत्रुघ्नः सुबाहौ च बहुश्रुते।
मथुरा विदिशे सून्वोर्निदधे पूर्वजोत्सुकः॥[2]

---

१. तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे प्रातिष्ठन्त महौजसः।
शकुन्तलां पुरस्कृत्य सपुत्रां गजसाह्वयम्॥ —महा० आदि० १७-१३

२. रघुवंश, १५-३६

में कवि वाल्मीकि के बताए हुए तथ्य को स्वीकार करते हुए शत्रुघ्न के एक पुत्र को इसका शासक बताता है।

इन्दुमती के स्वयंवर में आए हुए राजाओं के वर्णन के प्रसंग में भी शूरसेन प्रदेश के महाराज शुषेण की राजधानी के रूप में इसका वर्णन किया गया है—

सा शूरसेनाधिपतिं सुषेणमुद्दिश्य लोकान्तरगीतकीर्तिम् ।[1]

अन्यत्र कहा गया है कि मथुरा के साथ बहने वाली यमुना का जल रानियों के स्तनों के चन्दनों के घुल जाने के कारण जब सफेद हो जाता है तो लगता है कि जैसे प्रयाग के स्थान पर मथुरा में ही गंगा और यमुना का संगम हो गया—

कलिंदकन्या मथुरां गतापि गंगोर्मिसंसक्तजलेव भाति ।[2]

वाल्मीकिरामायण में कहा गया है कि शत्रुघ्न ने लवणासुर को मार कर यमुनातट पर उसकी राजधानी मधुघ्न के स्थान पर इसे बसाया था और अपने दोनों पुत्रों में से एक सबाहु को उसका शासक नियुक्त किया था।[3]

यह भी कहा जाता है कि—'मथुरा' मधुरा से विकसित प्राकृत रूप है। दक्षिण की 'मदुरा' भी 'मधुरा' ही है। कालिदास ने 'मधुरा' और 'मथुरा' इन दोनों नामों का प्रयोग किया है।

श्रावस्ती-शरावती

उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले में बलरामपुर स्टेशन से १५ कि० मी० दक्षिण पश्चिम में स्थित वर्तमान 'सहेत-महेत' ग्राम के पास में राप्ती नदी के निकट प्राचीन श्रावस्ती के खण्डहर विद्यमान हैं। बौद्ध युग में कोसल नरेश प्रसेनजित की राजधानी श्रावस्ती अपने चरमोत्कर्ष पर थी। वाल्मीकिरामायण में कहा गया है कि लव ने अपनी राजधानी अयोध्या से हटाकर श्रावस्ती में बना ली थी।[4]

कालिदास ने भी—

शरावत्यां सतां सूक्तैर्जनिताश्रुलवं लवम् ।[5]

---

१. रघुवंश, ६-४५

२. वही, ६-४८

३. सुबाहुर्मधुरां लेभे शत्रुघाती च वैदिशम् । —वा०रामा०, उ०का०, १०८-१०

४. श्रावस्तीति पुरी रम्या श्राविता च लवस्य ह । —वा०रामा०, उ०का०, १०८-५

५. रघुवंश, १५-९७

में यही तथ्य व्यक्त किया है। कवि श्रावस्ती का मात्र उल्लेख करके ही आगे बढ़ गया, इससे ज्ञात होता है कि कालिदास के गुप्तयुग में अन्य बौद्ध केन्द्रों के समान श्रावस्ती भी उपेक्षित हो गयी थी। गुप्तयुग में भारत आने वाले चीनी यात्री फाह्यान का श्रावस्ती-सम्बन्धी विवरण भो यही बताता है कि श्रावस्ती तब तक उजड़ चुकी थी।

प्रतिष्ठानपुर-प्रयाग

शूरसेन प्रदेश को लांघकर पूर्व की ओर बढ़ने पर गंगा-यमुना की अन्तर्वेदी की सीमा पर जो नगर मिलता है, वह है प्रतिष्ठानपुर या प्रयाग।

प्रयाग का वर्णन प्राचीन साहित्य में अनेकत्र उपलब्ध है। वास्तव में प्रतिष्ठानपुर और प्रयाग नगर साकेत और अयोध्या की भांति एक ही नगर के दो भाग रहे हैं जो किसी नदी के दायें-बायें तट पर बसे हैं। जल-समुद्र या नदी के दो किनारों पर बसे एकही नगर के दो भागों के दो पृथक् नाम प्राचीन युग की भांति आज भी देखे जाते हैं। प्रयाग के सामने गंगा के दूसरी ओर 'झूसी' का क्षेत्र ही प्राचीन 'प्रतिष्ठानपुर' है। झूसी के समीप दक्षिण में गंगा-तट से उपलब्ध भवनों, किलों और मन्दिरों के ध्वंसावशेषों से सिद्ध होता है कि प्राचीन 'प्रतिष्ठानपुर' यही था। यहां प्राप्त गुप्तकालीन सिक्कों के आधार पर कहा जाता है कि इसी स्थान पर सम्राट् समुद्रगुप्त का बनवाया हुआ किला भी था। किले के ऊंचे टीले पर 'समुद्र कूप' के नाम से प्रसिद्ध एक प्राचीन कूप अब भी विद्यमान है।

कालिदास ने विक्रमोर्वशीय नाटक में पुरूरवा की राजधानी 'प्रतिष्ठान पुर' का तो नामोल्लेख किया ही है, साथ हो उसकी वास्तविक स्थिति स्पष्ट करते हुए यह भी बताया है कि यह प्रतिष्ठानपुर गंगा-यमुना के संगम पर बसा हुआ है—

एतद्भगवत्या भागीरथ्या यमुनासंगमे······प्रतिष्ठानस्य शिखाभरणभूतं तस्य राजर्षेर्भवनम्।[1]

गंधमादन पर्वत पर विहार करते हुए पुरूरवा को उर्वशी कहती है कि हे प्रियंवद महाराज, आपको प्रतिष्ठान से आए हुए बहुत दिन हो गये। शायद

---

१. विक्रमोर्वशीय, २-१४

लोग इसके लिए मुझे ही कोस रहे होंगे। इसलिए चलो वापस लौट चलें—

'प्रियवंद, महान्खलु कालस्तव प्रतिष्ठानान्निर्गतस्य कदाचिदासूयिष्यन्ति मह्यं प्रकृतयः। तदेहि निवर्तावहे।'[1]

कवि ने विदूषक के मुख से भी कहलाया है—

अद्य तिथिविशेष इति भगवत्योर्गंगायमुनयोः संगमे देवीभिः सह कृताभिषेकः साम्प्रतमुपकार्यां प्रविष्टः।[2]

इस प्रकार कालिदास ने प्रयाग के सामने बसे हुए प्रतिष्ठानपुर की भौगोलिक स्थिति का स्पष्ट निर्देश करते हुए यह बताया है कि यह नगर गंगा-यमुना के संगम पर बसा हुआ था। गंगा-यमुना के इस संगम का वर्णन भी रघुवंश में सजीव रूप से हुआ है।[3]

वाल्मीकि-रामायण में इला के पुत्र पुरूरवा के साथ उसकी राजधानी प्रतिष्ठान का भी उल्लेख हुआ है।[4]

अयोध्या-साकेत

प्रयाग से आगे बढ़ने पर प्राचीन युग में यात्री को जो प्रसिद्ध महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक नगरी मिलती थी, वह थी अयोध्या। यह सरयू नदी—आधुनिक घाघरा-नदी के तट पर स्थित है। वर्तमान फैजाबाद इसी के पास बसा हुआ है।

रेलवे और सड़क दोनों मार्गों से अयोध्या नगरी जुड़ी हुई है। प्राचीन काल में अनेक राजवंशों की राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित अयोध्या नगरी सातवीं शताब्दी के लगभग अपना प्राचीनवैभव खो बैठी और एक वैष्णवतीर्थ के रूप में ही जानी जाने लगी। अब भी यहां वैष्णव-मन्दिरों का बाहुल्य है। बौद्धकाल में श्रावस्ती की भांति 'साकेत' नगरी भी बौद्ध धर्म और व्यापार के प्रमुख केन्द्र के रूप मे विख्यात थी। इसकी पूर्वी तथा पश्चिमी सीमाएँ प्राचीन नगरी से सम्बद्ध हैं। अयोध्या के दक्षिण में भरतकुण्ड है। प्राचीन नगर का क्षेत्रफल लगभग ६ कि०मी० है। सरयू को पार करने के लिए पक्का पुल बन गया है। जैसाकि स्वाभाविक है वाल्मीकिरामायण में अयोध्या का विशद एवं विस्तृत वर्णन हुआ है। वहाँ बताया गया है कि यह नगरी १२ योजन

---

१. विक्रमोर्वशीय, ४-७-५

२. वही, अंक-५, विदूषक का प्रथम वाक्य

३. देखिये आगे के पृष्ठ

४. वा०रामा०, उ०का०; १०-२१,२३

लम्बी और ३ योजन चौड़ी थी।[1]

कालिदास के अयोध्या-वर्णन की एक विशेषता यह है कि उन्होंने वाल्मीकि की भांति वर्णन करने के लिए ही अयोध्या की चर्चा नहीं की। यहां तक कि रघुवंश के पहले पांच सर्गों में तो अयोध्या का नाम तक नहीं लिया गया।

पांचवें सर्ग में—

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्वौ।[2]

को यदि अपवाद मान लिया जाये तो कवि ने अयोध्या का नाम सर्वप्रथम ग्यारहवें सर्ग की समाप्ति के —

पुरमविशदयोध्यां मैथिलीदर्शिनीनां
कुवलयितगवाक्षां लोचनैरंगनानाम्।[3]

अर्थात्—फिर वे अयोध्यापुरी में आये जहां झरोखों में सीताजी के दर्शनों के लिये उत्सुक सुन्दरियों के नयनकमल खिले हुए थे।
में हो लिया है।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि आदिकवि ने जिसके वर्णन में कलम तोड़ दी, उस अयोध्या जैसी सुन्दर नगरी का कालिदास ने कहीं वर्णन ही नहीं किया। उचित अवसर आते ही कवि ने अयोध्या नगरी ही क्यों उसके वन-उपवनों और सरित्-सरोवरों का भी वर्णन किया है। और यह अवसर कवि को श्रीराम के लंका विजय के बाद अयोध्या लौटने पर ही मिल पाया। कवि ने इसी प्रसंग में श्रीराम के साथ आने वाले विशाल जन-समाज के लिए निर्मित खेमों या तम्बुओं की छावनी का वर्णन तो किया ही है साथ ही यह भी बता दिया है कि इस छावनी का निर्माण-कार्य शत्रुघ्न की देखरेख में योजना-बद्ध ढंग से हुआ था—

शत्रुघ्नप्रतिविहितोपकार्यामार्यः
साकेतोपवनमुदारामध्युवास।[4]

इसके बाद रघुवंश के सोलहवें सर्ग में अयोध्या और उसके उपवनों

१. आयता दश च द्वे च त्रीणि विस्तीर्णयोजना।
—वा०रामा०, बा०का० ५-६

२. रघुवंश, ५-३१

३. वही, ११-९३

४. वही, १३-७९

का वर्णन कवि ने अयोध्या की नगरदेवी क मुख से बड़ी ही सजीवता के साथ करवा कर अपने अद्भुत काव्य-कौशल का परिचय दिया है। श्रीराम के पुत्र कुश ने कुशावती को अपनी राजधानी बना लिया, तो श्रीहीन अयोध्या ने महाराज कुश के सामने अपनी प्राचीन सुषमा और समृद्धि के साथ ही वर्तमान दुरवस्था का सम्पूर्ण वर्णन किया है।

रघुवंश के चौदहवें सर्ग में भी अयोध्या की संक्षिप्त किन्तु सजीव झांकी प्रस्तुत की गयी है। अन्यत्र कवि ने बताया है कि लवणासुर को मारकर शत्रुघ्न उस अयोध्या में जा पहुंचे जहां की सड़कें और गली-बाजार उनके स्वागत के लिए सुन्दर ढंग से सजाए गए थे—

वशी विवेश चायोध्यां रथ्यासंस्कारशोभिनीम्।[1]

श्रीराम के अयोध्या प्रवेश करते समय भी कवि को इस नगरी के उल्लेख का अवसर प्राप्त हुआ—

विवेश सौधोद्गतलाजवर्षामुत्तोरणामन्वयराजधानीम्।[2]

अर्थात्—श्रीराम ने अपनी उस राजधानी अयोध्या में पदार्पण किया जो चारों ओर से ऊँचे-ऊँचे तोरणों (सजावट के लिये बनाये गये द्वारों) द्वारा सजायी गयी थी और जहां-तहां चमकते हुए श्वेत भवनों पर से खीलें बरस रही थीं।

प्रासादवातायनदृश्यबन्धैः साकेतनार्योऽञ्जलिभिः प्रणेमुः।[3]

आदि श्लोक में अयोध्या के लिए 'साकेत' शब्द का प्रयोग भी किया गया है। इसी प्रकार—

अनाथदीनाः प्रकृतीरवेक्ष्य साकेतनाथं विधिवच्चकार।[4]

में भी अयोध्या के लिए 'साकेत' नाम प्रयुक्त हुआ है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् के निम्न प्रसंग में भी साकेत का उल्लेख हुआ है—

देव इदानीमेव साकेतस्य श्रेष्ठिनो दुहिता निवृत्तपुंसवना जायास्य श्रूयते।[5]

---

१. रघुवंश, १५-३८
२. वही, १४-१०
३. वही, १४-१३
४. वही, १८-३६
५. अभिज्ञानशाकुन्तल, अंक-६, श्लोक-२२ से आगे गद्य

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कवि ने यद्यपि अयोध्या के पर्याय के रूप में 'साकेत' का प्रयोग अवश्य किया है, किन्तु वह प्रमुखता अयोध्या को ही देता है। क्योंकि रघुवंश के चार स्थानों में 'साकेत' का नामोल्लेख मात्र हुआ है। इसके विपरीत जहां भी नगरशोभा के वर्णन का प्रसंग आया है, वहां सर्वत्र 'अयोध्या' नाम ही प्रयुक्त हुआ है।

काशि

काशि जनपद और काशी नगरी दोनों का ऐतिहासिक महत्त्व है।

कुरु-पांचाल की भांति 'काशि-कोसल' जनपदों का नाम भी प्राचीन भारतीय भूगोल में जुड़वां प्रदेशों के रूप में लिया जाता रहा है। कालिदास ने काशि का वर्णन गौण रूप में ही किया है। विक्रमोर्वशीय नाटक में महाराजा पुरूरवा की पटरानी औशीनरी को काशीराजपुत्री बताया है और कहा है कि—

निपुणिके विज्ञापय मम वचनेन काशिराजदुहितरम्।[1]

कालिदास ने जैसे काशि का मात्र चलता सा और गौण रूप में उल्लेख किया है, वैसे ही काशी के प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग 'विश्वनाथ' का भी एक स्थान पर नामोल्लेख मात्र किया है—

विश्वेश्वरं समाराध्य[2]

—भाव यह कि महाराज व्युषिताश्व ने भगवान् विश्वनाथ की आराधना से पुत्र प्राप्त किया।

विदिशा

दक्षिण की ओर से माहिष्मती महेश्वर उज्जैन होते हुए कोशम्बी जाने वाले प्राचीन मार्ग पर प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगरी विदिशा आती है। यह 'दशार्ण' जनपद की राजधानी थी। यह बेतवा नदी के तट पर स्थित है। भोपाल से ४० कि०मी० उत्तर पूर्व में स्थित विदिशा के पास ही वह प्रसिद्ध सांची नगर है जहां के बौद्ध-स्तूप जगत् प्रसिद्ध हैं।

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
...............गत्वा वेत्रवत्याश्चलोर्मि।[3]

---

१. विक्रमोर्वशीय
२. रघुवंश, १८-२४
३, मेघदूत, पूर्वमेघ-२६

में कवि ने यह तो कहा ही है कि विदिशा दशार्ण की राजधानी है और इससे सम्बद्ध यह भौगोलिक तथ्य भी साथ ही बता दिया है कि विदिशा वेत्रवती नदी के तट पर बसी है।

यद्यपि मालविकाग्निमित्र का सम्पूर्ण घटनाचक्र विदिशा में ही घटित होता है, तथापि कवि ने अग्निमित्र की इस प्रादेशिक राजधानी का नामतः उल्लेख केवल निम्न दो प्रसंगों में ही किया है—

परिव्राजिका—स इमां तथागतभ्रातृकां मया सार्धमपवाह्य भवत्सम्बन्धापेक्षया, पथिकैः सार्धं विदिशागामिनमनुप्रविष्ठः।[1]

और—

राजा—स्वस्ति यज्ञशरणात्सेनापतिः पुष्यमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मन्तमग्निमित्रं स्नेहात्परिष्वज्येदमनुदर्शयति ॥[2]

रघुवंश तथा रामायण में शत्रुघ्न के पुत्र शत्रुघाती को विदिशा का शासक बनाए जाने की बात कही गयी है[3]। महाकवि बाण ने कादम्बरी के पूर्वार्ध में विदिशा का मालव की राजधानी के रूप में वर्णन किया है[4]। मुगलकाल में इसका नाम 'भेलसा' पड़ गया था। किन्तु स्वतंत्रता के बाद पुनः प्राचीन नामों के अपनाये जाने से 'विदिशा' कर दिया गया है। उदयगिरि नाम से प्रसिद्ध ऐतिहासिक पहाड़ियां यहां से ५-६ कि०मी० दूर हैं।

उज्जयिनी

नागदा, भोपाल, इन्दौर और फतेहबाद से आने वाली रेलवे लाइनों का जंक्शन उज्जैन नगर मध्य क्षेत्र का ही क्यों सम्पूर्ण भारत का एक प्रमुख धार्मिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक केन्द्र है। महाकालेश्वर की कृपा से महाभारत-काल से लेकर आज तक इस नगरी का महत्त्व बराबर बना हुआ है। सिप्रा नदी इसकी सहचरी है। मन्दिर में महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग नाग-वेष्ठित चांदी की जलहरी में विराजमान हैं। मन्दिर के साथ कोटि-सरोवर नामक कुण्ड है। उसके पास ही 'रुद्र सरोवर' के तट पर 'बड़े गणेश' का मंदिर

---

१. मालविकग्निमित्र, ५-९
२. वही, ५-१४
३. देखें पृष्ठ-१८७
४. वेत्रवत्या सरिता परिगता विदिशाभिधाना नगरी राजधान्यासीत्।
—कादम्बरी-कथामुख।

तथा सरोवर के दूसरे तट पर महाकालेश्वर मन्दिर के ठीक सामने हरसिद्धि देवी का प्राचीन मन्दिर है। आरम्भ से ही उज्जयिनी देश का प्रमुख शिक्षा-केन्द्र रही है। भगवान् श्रीकृष्ण ने यहीं संदीपनि ऋषि के आश्रम में शिक्षा ग्रहण की थी। आज भी विक्रम-विश्वविद्यालय के कारण शिक्षा-जगत् में भी इसका अपना एक विशिष्ट स्थान है।

मौर्य युग से लेकर गुप्त युग तक और उसके वाद भी उज्जयिनी कभी प्रान्तीय गवर्नरों की तो कभी स्वतन्त्र नरेशों की राजधानी रही है। भरुकच्छ (भड़ौंच) से पाटलिपुत्र जाने वाले प्रमुख राजमार्ग पर स्थित होने के कारण व्यापार का भी यह प्रमुख केन्द्र रही थी।

कालिदास ने उज्जैन को 'उज्जयिनी', 'अवन्ती' तथा 'विशाला' इन तीनों नामों से स्मरण किया है। मेघदूत का विरही यक्ष मेघ से कहता है कि इस रामगिरि से चलकर उत्तर में विदिशा तक पहुंच जाने के बाद वापस थोड़ा दक्षिण-पश्चिम की ओर मुड़ने में तुम्हें कुछ चक्कर तो अवश्य काटना पड़ेगा, फिर भी हे मेघ, तुम उज्जयिनी गए बिना आगे मत बढ़ना—

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ।[1]

कवि आगे कहता है—

वास्तव में विशाला के नाम से विख्यात अवन्तिकापुरी स्वर्ग का ही एक ऐसा देदीप्यमान टुकड़ा है, जिसे स्वर्ग में सुख भोगने वाले लोग अपने अवशिष्ट पुण्यों का फल भोगने के लिए यहां धरती पर उतार लाए हैं :—

पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ।[2]
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गांगतानाम् ।
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ।

उज्जैन की समृद्धि के बारे में कवि का कथन है—

हारां स्तारांस्तरल गुटिकान्कोटिशः शंखशुक्तीः
शष्पश्यामान्मरकतमणीन्मुन्मयूखप्ररोहान् ।
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणाञ्चभंगान्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः ।।

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ-२८
२. वही, ३२

(उज्जैन के हाट बाजारो में कहीं तो करोड़ो मोतियो की ऐसी मालाएं सजी हुई दिखाई देंगी जिनके बीच-में बहुमूल्य रत्न गुथे होंगे तो, कहीं दूब के समान हरे मरकत या पन्ने अपनी दमक से वातावरण को चमका रहे होंगे और कहीं मूंगों के ढेर बिखरे पड़े होंगे। वहां ऐसा लगेगा कि रत्नों को निकालकर उनके यहां ढेर लगा दिए गए हैं, अतः अब समुद्र में तो केवल पानी ही बचा रहा है।[१])

यक्ष ने केवल यही नहीं कहा कि उज्जैन में महाकालेश्वर के दर्शन करना, अपितु यह भी आदेश दिया है कि महाकालेश्वर की सांध्य आरती में भी उपस्थित होकर भगवान् पर मन्त्रपुष्पांजलि भी चढ़ाना—

अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः ॥[२]

इस प्रकार पूर्वमेघ के २८ तथा ३२ से ४३ तक १३ मन्दाक्रान्ता तथा रघुवंश के षष्ठ सर्ग के इन्दुमती स्वयंवर से सम्बद्ध ४ इन्द्रवज्रा छन्दों में उज्जयिनी का वर्णन कर कवि ने अपनी मातृभूमि तथा भगवान् महाकालेश्वर के प्रति अपनी भक्ति-भावना प्रदर्शित की है।

उज्जयिनी के महाकालेश्वर

उज्जैन के महाकालेश्वर भगवान् शंकर महाकवि कालिदास के इष्ट-देव हैं। मेघदूत के यक्ष के मुख से मेघ के बहाने सम्पूर्ण मानव-समुदाय को भगवान् शिव की शरण में जाने को कहा है। उज्जैन हो या हिमालय कवि का संदेश एक ही है 'शिव को भजो'। यक्ष कहता है कि पहले तुम उज्जयिनी में त्रिलोकनाथ महाकालेश्वर के पवित्र मन्दिर में जाकर भगवान् का दर्शन करना—

पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य ।[३]

और फिर हो सके तो उत्तर में हिमालय तक पहुचकर वहां भी भक्तिभाव से कैलाश में शिवजी की पूजा व परिक्रमा करना—

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमोलेः
शश्वत्सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः ॥[४]

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ ३४
२. वही, ३८
३. वही, ३६
४. वही, ५९

दशपुर-मन्दसौर

गुप्तकाल में दशपुर—वर्तमान मंदसौर-दक्षिण-पश्चिम के व्यापारिक मार्ग द्वारा उज्जयिनी और मथुरा से जुड़ा हुआ था। यहां प्राप्त एक अभिलेख में कहा गया है कि गुप्त सम्राट् कुमार गुप्त के समय में कुछ रेशमी वस्त्रों के बुनकर लाट देश से यहां आकर बस गए थे। वे लोग बड़े समृद्ध थे और उन्हें अपने व्यवसाय पर बड़ा अभिमान था[1]। शिवना नदी के तट पर १००० वर्ष प्राचीन मन्दिर तथा छठी शताब्दी के महाराज यशोधर्म के ३० फूट ऊंचे प्रस्तर स्तम्भ तथा उस पर अंकित हूण आक्रान्ता मेहरकुल पर उनकी विजय-लेख आदि से गुप्तकाल में बसे इस नगर की समृद्धिशालिता प्रत्यक्ष प्रमाणित होती है। 'दशपुर' वास्तव में दस पुरों या आसपास बसे उपनगरों का एक संयुक्त नाम है। दशपुर से ही पहले दसौर और फिर मंदसौर शब्द विकसित हुए हैं। यह नगर शिवना नदी के दोनों तटों पर बसा हुआ था, किन्तु वर्तमान मंदसौर इसके बायें तट पर ही बसा हुआ है। जिले का मुख्यालय और रतलाम-चित्तौड़ रेलमार्ग पर रतलाम से ८० कि०मी० पश्चिमोत्तर में प्रमुख रेलवे स्टेशन है। नगर के सामने नदी के दूसरे तट पर प्राचीन मन्दिर और घटा बने हुए हैं। गुप्तकालीन अष्टमुखी विशाल शिवलिंग को औरंगजेब ने शिवना नदी में डाल दिया था। अब पुनः उसे नदी पर नवनिर्मित भव्य मंदिर में प्रतिष्ठित कर दिया गया है। कालिदास ने मेघदूत में मेघ के मार्ग में पड़ने वाले दशपुर की सुन्दरियों की चर्चा—

पात्रीकुर्वन्दशपुरवधू नेत्रकौतूहलानाम् ।[2]

के द्वारा की है।[3]

---

१. दशपुरपट्टवायश्रेण्याः अभिलेखः। यह अभिलेख पहले उद्धृत है।

२. मेघदूत, पूर्वमेघ-५१

३. दशपुर के प्रसंग में आश्चर्य की बात तो यह है कि मन्दसौर जिस शिवना नदी के तट पर बसा हुआ है, यशोधर्मन् तथा वत्स भट्टी के अभिलेखों में उसकी कोई चर्चा नहीं है, इसके विपरीत दोनों ने मन्दसौर के पास सरवरों का वर्णन किया है। कालिदास ने तो प्रासंगिक रूप से ही दशपुर और सो भी वहां की सुन्दरियों के कटाक्षों की रसस्निग्ध चर्चा ही की है, किन्तु अभिलेखों में तो दशपुर और उसके पास के सरोवरों का ब्यौरेवार वर्णन दिया गया है, फिर भी यह नहीं कहा गया कि वह शिवना या किसी भी सजला (बारहमासी) नदी के तट पर बसा हुआ है, इसका क्या कारण है, इस ओर विद्वानों को ध्यान देना चाहिए। साथ ही यह भी कि शिवना नदी का यह नाम क्यों है ? मेरा अपना विचार है कि यह वैदिक स्योना

कुशावती

वाल्मीकिरामायण में कहा गया है कि भगवान राम ने विंध्य पर्वत की ढलानों में कुश के लिए कुशावती नामक एक सुन्दर राजधानी का निर्माण किया।[१]

विन्ध्याचल की दक्षिणी घाटियों में स्थित यह प्राचीन नगरी आज नाम-शेष रह गयी है। पुरातत्त्व विभाग का ध्यान भी अभी इसके अवशेषों को भूगर्भ से खोज निकालने की ओर नहीं गया है। कवि ने—

कुशावतीं श्रोत्रियसात् स कृत्वा[२]।

कहकर संभवतः इसी ओर संकेत किया है, कि उसके समय में भी कुशावती का नाम केवल श्रोत्र-गोचर ही होता था। यद्यपि कवि ने स्पष्ट रूप से तो यहाँ यह ही कहा है कि कुश ने कुशावती श्रोत्रिय ब्राह्मणों को दान कर दी।

सामान्यतः विन्ध्य पर्वतमाला में नर्मदा के दक्षिण में स्थित चांदा-इलिचपुर, अमरावती व नागपुर के आसपास ही कहीं प्राचीन कुशावती की स्थिति मानी जा सकती है। कवि ने कुश के सदलबल कुशावती से वापस लौट आने के प्रसंग में विन्ध्याचल और उसमें रहने वाले पुलिन्द, भील तथा घरघर शब्द से सम्पूर्ण वातावरण को गुंजाती हुई नर्मदा का वर्णन करते हुए कहा है कि कुश की सेना के कोलाहल से विंध्याचल की गुफाएं वैसे ही मुखरित हो उठीं जैसे नर्मदा के प्रवाह से होती हैं[३]। आगे कवि ने कुश की सेनाओं द्वारा विन्ध्य पर्वत पार करते समय वहां गेरू आदि धातुओं के उड़ने से रथों की नेमी के लाल हो जाने की चर्चा करते हुए कहा है :—

स धातुभेदारुणयाननेमिः।[४]

माहिष्मती-महेश्वर

इन्दौर और खण्डवा के बीच में नर्मदा-तटवर्ती सुप्रसिद्ध 'ओंकारेश्वर मान्धाता' स्टेशन के पास बड़वाहा रेलवे स्टेशन से ५५ कि०मी० दूर नर्मदा

(कल्याणकारिणी) का ही रूप है। स्योन शब्द का प्रचलन उठ जाने पर वह शिवना के रूप में परिवर्तित हो गया लगता है।

१. वा० रामा०, उ० का०, १०८-४
२. रघुवंश, १६-२५
३. वही, १६-३१
४. वही, १६-३२

के उत्तरी तट पर प्राचीन माहिष्मती नगरी बसी हुई है। आजकल यह 'महेश्वर' कहलाती है।

कार्तवोर्य सहस्रबाहु अर्जुन आदि हैहयराजाओं की राजधानी यही थी। इंदौर के होल्कर राजाओं की पुरानी राजधानी भी यह रही है। आद्य शंकराचार्य के साथ शास्त्रार्थ करने वाले मण्डनमिश्र यहीं के निवासी माने जाते हैं। कालिदास ने यहां के राजा प्रतीप या प्रदीप के लिए लिखा है कि वह आगमवृद्धसेवी है—

तस्यान्वये भूपतिरेष जातः
प्रतीप इत्यागमवृद्धसेवी ॥

और उधर सन् ६४० के लगभग यहां पहुंचने वाले चीनी यात्री च्वान चाँग ने लिखा है कि माहिष्मती में ब्राह्मण राजा राज्य करता था। कालिदास यहां के जिस नृपति को 'आगमवृद्धसेवी' कहता है उधर च्वान चांग स्पष्ट रूप से वहां के राजा को ब्राह्मण कह रहा है। कहीं ऐसा तो नहीं कि मण्डन मिश्र और उनके पूर्वजों को इस नगरी का शासनाधिकार भी प्राप्त हो। बौद्ध साहित्य में माहिष्मती को दक्षिण अवन्ति जनपद का एक विशिष्ट नगर भी कहा गया है। इससे ज्ञात होता हैं कि कभी 'अनूप' जनपद अवन्ति में भी सम्मिलित रहा था, किन्तु कालिदास के समय में इसकी स्वतंत्र सत्ता स्वीकृत थी और यहा का शासक भारत के प्रमुख नृपतियो में अन्यतम माना जाता था। इन्दौर से पहले होल्कर राजाओं की राजधानी यही थी। कभी महारानी अहल्याबाई के द्वारा नर्मदा के उत्तरी तट पर बनवाए गए घाट आज भी उनकी यशो-गाथा गा रहे हैं। यहां नर्मदा के बीच में स्थित माहेश्वर शिवलिंग के दर्शन गर्मियों में ही हो सकते हैं। कालिदास ने—

अस्यांकलक्ष्मोर्भव दोर्घबाहो
र्माहिष्मतीवप्रनितम्बकांचीम् ।
प्रासादजालैर्जलवेणिरम्यां
रेवां यदि प्रेक्षितुमस्ति कामः ॥[1]

अर्थात् यदि तुम महलों के झरोखों में बैठकर जल की वेणो से रमणीय उस नर्मदा का मनोहारी दृश्य देखते रहना चाहती हो जो तगड़ी के समान माहिष्मती नगरी के चारों ओर घूम गई है तो इस महाबाहु राजा का वरण कर लो।

---

१. रघुवंश, ६-४३

में माहिष्मती के परकोटे के नीचे कांची या तगड़ी की भांति सुशोभित नर्मदा का मनोरम चित्र अंकित किया है।

महाभारत में सहदेव के हाथों माहिष्मती-नरेश नील के पराजय का उल्लेख है।[1]

कुण्डिनपुर

मध्यक्षेत्र के धुर दक्षिणी छोर पर बसे अमरावती से ६० कि०मी० पूर्व में वर्धा नदी के तट पर स्थित कुण्डिनपुर-वर्तमान कुन्दनपुर-का उल्लेख जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है,[2] कवि ने रघुवंश के—

तस्मादपावर्तत कुण्डिनेशः।[3]

में किया है।

शक्रावतार या शची तीर्थ

अभिज्ञानशाकुन्तल में कहा गया है कि कण्वाश्रम से हस्तिनापुर जाते समय मार्ग में शकुन्तला के हाथ की अंगूठी शक्रावतार में गिर पड़ी थी—

गोतमी—नूनं ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिले प्रभ्रष्टमंगुलियकम्।[4]

आगे छठे अंक में इस शचीतीर्थ को स्पष्ट रूप से गंगा के प्रवाह पर स्थित बताया गया है—

राजा—शचीतीर्थं वन्दमानायाः सख्यास्ते हस्ताद् गंगास्रोतसि परिभ्रष्टम्।[5]

कहा जाता है कि उत्तर प्रदेश के मुजफ्फर नगर से १५ कि०मी० दूर गंगा-तट पर स्थित वर्तमान (शुक्करताल) ही प्राचीन शक्रावतार है। महाभारत में निर्दिष्ट (शक्रावर्त) भी सम्भवतः यही शक्रावतार है[6]।

---

१. ततो रत्नान्युपादाय पूरीं माहिष्मतीं ययौ।
तत्र नीलेन राज्ञा स चक्रे युद्धं नरर्षभः॥
—महाभारत, सभापर्व, ३२-२१

२. देखिए पृष्ठ-६८

३. रघुवंश, ७-३३

४. अभिज्ञानशाकुन्तल, ५-२१

५. वही, ६-१२

६. शक्रावर्तं च तर्पयन् देवान् पितॄंश्च।
विधिवत् पुण्यलोके महीयते॥ —महाभारत, वनपर्व, ८४-२९

'शक्रावतार' का 'शक्र' बन गया और 'व' घिस गया तथा 'तार' बन गया 'ताल' इस प्रकार शक्रावतार—शुक्करताल हो गया। उसके बाद 'शुक्कर' का सम्बन्ध नाम साम्य से 'शुक्र' (व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी) से जोड़ दिया गया और यह प्रसिद्ध हो गया कि शुकदेव जी ने यहाँ तपस्या की थी तथा यहीं उनका आश्रम भी था। इस प्रकार शक्र (इन्द्र) पहले शुक्र और फिर शुकदेव बन गया।

अप्सरस्तीर्थ

कालिदास ने कहा है कि दुष्यन्त-द्वारा प्रत्यादिष्ट शकुन्तला हस्तिनापुर से बाहर निकली ही थी कि कोई ज्योति उसे अप्सरस्तीर्थ की ओर ले उड़ी—

अप्सरस्तीर्थमारादुत्क्षिप्यैनां
ज्योतिरेकं जगाम।[1]

इस अप्सरस्तीर्थ की भौगोलिक स्थिति निर्धारित नहीं हो पाई। कांगड़ा कुल्लू के प्रदेश में एक 'इच्छरा कुंड' अप्सराकुंड है, जहां स्नान करने से सन्तानहीनस्त्रियों को सन्तान-प्राप्ति की बात कही जाती है। किन्तु यह अप्सराकुंड तो हस्तिनापुर से बहुत दूर पड़ता है। अतः किसी अन्य अप्सरस्तीर्थ की खोज की जानी चाहिए।

कण्वाश्रम

कनखल और हस्तिनापुर से होते हुए हिमालय की उपत्यकाओं में हस्तिनापुर से कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर मालिनी नदी के तट पर स्थित कण्वाश्रम मिलता है। कण्व का आश्रम किसी समय एक बहुत बड़े शिक्षा केंद्र के रूप में प्रसिद्ध था।

कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल के पहले चार अंकों का सम्पूर्ण घटना-व्यापार कण्वाश्रम में ही घटित होते दिखाया है। आगे छठे अंक में फिर राजा दुष्यन्त कण्वाश्रम का मुंह बोलता चित्र अंकित करते हुए कहते हैं—

'मुझे इस चित्र में अभी मालिनी नदी बनानी है, जिसकी रेत में हंसों के जोड़े बैठे हों, उसके दोनों ओर हिमालय की तलहटी दिखानी है, जहां हरिण विचर रहे हों। मैं कण्वाश्रम के ऐसे वृक्ष भी दिखाना चाहता हूँ जिनकी शाखाओं पर मुनियों के वल्कल वस्त्र सुखाने के लिए डाल दिए गए हों और

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल, ५-३०

जिनके नीचे हरिणी अपनी बांयी आंख काले हरिण के सींग से रगड़कर खुजला रही हो—

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृंगे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्॥[1]

महाभारत में भी कण्वाश्रम का वर्णन एक विशिष्ट विद्याकेंद्र के रूप में किया गया है और शकुन्तला के पालक पिता महर्षि कण्व को उसका कुलपति कहा गया है[2]।

वसिष्ठाश्रम

हिमालय की उपत्यका में स्थित एक अन्य जिस ऋषि-आश्रम का कवि ने चित्रण किया है, वह है वसिष्ठ-आश्रम। इस वसिष्ठ-आश्रम का वर्णन कवि ने रघुवंश के प्रथम सर्ग ४८ से ५३ तक के छः श्लोकों में बड़े ही मनोयोग के साथ किया है। पुत्र-प्राप्ति की कामना से महाराज दिलीप वसिष्ठाश्रम में पहुंचते हैं। आश्रम में सायंकालीन दृश्य का सजीव चित्र अंकित करते हुए कवि कहता है—

स दुष्प्रापयशा प्रापदाश्रमं शान्तवाहनः।
सायं संयमिनस्तस्य महर्षेर्महिषीसखः॥
वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः।
पूर्यमाणमदृश्याग्निप्रत्युद्यातैस्तपस्विभिः॥
आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः।
अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगैः॥
सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्।
विश्वासाय विहंगानामालवालाम्बुपायिनाम्॥
आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु निषादिभिः।
मृगैर्वर्तितरोमन्थमुटजांगनभूमिषु॥

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल, ६-१७

२. स काश्यपस्यायतनं महाव्रतैर्वृतं समन्तादृषिभिस्तपोधनैः।
विवेशसामात्यपुरोहितारिहा विविक्तमत्यर्थमनोहरं शुभम्॥
—महा० भा० आदि०, ७०-५१

अभ्युत्थिताग्निपिशुनैरतिथीनाश्रमोन्मुखान् ।
पुनानं पवनोद्धूतैर्धूमैराहुतिगन्धिभिः ॥

अर्थात्—साँझ होते-होते यशस्वी राजा दिलीप अपनी रानी के साथ संयमी महर्षि वसिष्ठजी के आश्रम में पहुंच गए। सुबह से अब तक दौड़ते-२ उनके रथ के घोड़े भी बुरी तरह थक गए थे। यहां पहुंच कर उन्होंने देखा कि सायंकाल के हवन के लिए अपने हाथों में समिधा, कुशा और फल आदि लिए हुए मुनिगण पास से जंगल के आश्रम की ओर लौट रहे हैं। पर्णकुटियों के द्वारों पर कुछ हिरण बैठे या खड़े थे, जिन्हें अपने बच्चों की भांति पाला पोसा गया था। मुनि-कन्याएं वृक्षों को सींचकर वहां से हट गई थी, ताकि पक्षी गण उनके थावलों से बेखटके पानी पी लें। दिन में धूप में सुखाए गए नीवार तिन्नी या सट्ठी की आंगन में ढेरियां लगा दी गई थीं, जहां पास ही में बैठे हिरण आराम से जुगाली कर रहे थे। हवा के झोकों के साथ चारों ओर फैल रहे आहुतियों की सुगन्धि से भरा हुआ वातावरण को पवित्र करता जा रहा धूआँ अतिथियों को बता रहा था कि यज्ञशाला में सायंकालीन यज्ञाग्नि प्रज्ज्वलित हो चुकी है।[१]

आगे द्वितीय सर्ग में बताया गया है कि महाराज दिलीप जब वसिष्ठ की सुरभि गौ को चराने के लिए जंगल में जाते थे तो पहाड़ी झरनों की ठण्डी फुहारों से लदी हुई और लहराते हुए वृक्षों के पुष्पों की सुगन्धि से सुगन्धित वायु, सिर पर छत्र न होने के कारण धूप से क्लांत महाराज दिलीप का पसीना सुखा दिया करती थी :—

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणा
मनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी ।
तमातपक्लान्तमनातपत्र—
माचारपूतं पवनः सिषेवे ॥

इससे ज्ञात होता है कि वसिष्ठ का यह आश्रम हिमालय की तलहटी में ही कहीं स्थित था।

---

१. रघुवंश, २-१३

२. वाल्मीकिरामायण में भी वसिष्ठ-आश्रम का चित्र छः श्लोको में अंकित है—
प्रशान्तहरिणाकीर्णं द्विजसंघनिषेवितम् ।
ऋषिभिर्बालखिल्यैश्च जपहोमपरायणैः ॥
वसिष्ठस्याश्रमपदं ब्रह्मलोकमिवापरम् ।
—वा० रामा० बालकाण्ड ५१-२४-२८

इस प्रकार कालिदास ने वसिष्ठाश्रम की स्थिति बताते हुए स्पष्ट कर दिया है कि उनके द्वारा प्रतिपादित यह वसिष्ठाश्रम रघुवंशियों की राजधानी से कुछ दूरी पर (अयोध्या से उत्तर में हिमालय की तलहटी में) कहीं था। अयोध्या-फैजाबाद-या लखनऊ से हिमालय अल्मोड़ा नैनीताल को ओर जाने के लिए कम से कम १५० कि०मी० तक मैदानी भागों में चलना पड़ता है।

आश्रम से चरती-चरती वसिष्ठ की गौ सुरभि हिमालय की ढलानों तक जा पहुंचती तथापि रघुवंश के द्वितीय सर्ग में उल्लिखित 'गंगा-प्रपात' प्रसिद्ध गंगा नदी का उद्गम स्रोत या कोई प्रपात नहीं है।

वाल्मीकि-आश्रम

तमसा-तटवर्ती वाल्मीकि-आश्रम का वर्णन कालिदास ने रघुवंश के चौदहवें सर्ग के :—

तपस्विसंसर्गविनीतसत्वे...[1]

से लेकर—

तत्राभिषेकप्रयता वसन्ती प्रयुक्तपूजाविधिनातिथिभ्यः।[2]

श्लोक तक विस्तारपूर्वक किया है।

वसिष्ठाश्रम '**समित्कुशफलाहर**' तपस्वियों से युक्त है तो यहां स्वयं वाल्मीकि ही '**कुशेध्माहरणाय यातः**' दिखाए गए हैं। यूं वसिष्ठाश्रम जैसे— पूर्यमाणं-तपस्विभिः है तो वाल्मीकि आश्रम को भी—**तपस्विसंसर्गविनीत सत्व**' कहा गया है। वसिष्ठाश्रम के वृक्षों को तपस्वि-कन्याएं सीचतीं हैं तो बाल्मीकि भी सीताजी से कहते हैं कि बेटी तू यहां घड़ों से पौधे सींचती रहना—

पयोघटैराश्रमबालवृक्षान्संवर्धयन्ती

वसिष्ठाश्रम 'मृगैर्वर्तितरोमन्थमुटजांगनभूमिषु निषादिभिराकीर्णम्' है तो वाल्मिकी आश्रम भी 'सायं मृगाध्यासित वेदिपार्श्वं' है। हां वाल्मिकी आश्रम की कुटियाएं सायं इंगुदी तैल से भरे दीपकों से जगमगा रही हैं और उनमें मृगचर्म भी बिछे हुए हैं—

ता इंगुदीस्नेहकृतप्रदीपमास्तीर्णमेध्याजिनतल्पमन्तः।

१. रघुवंश, १४-७५
२. वही, १४-८२

अत्रि ऋषि का आश्रम

रघुवंश में चित्रकूटस्थ अत्रि ऋषि के आश्रम की चर्चा करते हुए कवि ने श्रीराम के मुख से कहलाया है :—

वनं तपः साधनमेतदत्रेराविष्कृतोदग्रतरप्रभावम् ।[1]

शरभंग-आश्रम

इटारसी-इलाहाबाद लाइनपर मानिकपुरसे २० कि०मी० पर विराध कुंड के निकटवर्ती शरभंग मुनि के आश्रम का वर्णन :—

अदः शरण्यं शरभंगनाम्नस्तपोवनं पावनमाहिताग्नेः ।
छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठसम्भाव्यफलेष्वमीषु ।
तस्यतिथीनामधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषुः[2] **।**

रघुवंश के इन दो श्लोकों में किया है ।

च्यवन-आश्रम

कालिदास के निर्देशानुसार प्रतिष्ठान के दक्षिण में कुलपति च्यवन का आश्रम स्थित था :—

कंचुकी :—देव च्यवनाश्रमात् कुमारं गृहीत्वा सम्प्राप्ता तापसी ।[3]

इस आश्रम की भौगोलिक स्थिति निर्धारित नहीं हो पाई है ।

वरतन्तु-आश्रम

कवि ने रघुवंश के पांचवें सर्ग के पांचवें श्लोक से नवें श्लोक तक वरतन्तु आश्रम का यह सजीव चित्र अंकित किया है—

आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः संवर्धितानां सुतनिर्विशेषम् ।
कच्चिन्न वाय्वादिरुपप्लवो वः श्रमच्छिदामाश्रमपादपानाम् ।
तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः ।
तान्युञ्छशिष्टाङ्कितसैकतानि शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित् ।
नीवारपाकादि कंडगरीयैरामृश्यते जानपदैर्न कच्चित् ।
कालोपपन्नातिथिकल्प्यभागं वन्यं शरीरस्थितिसाधनं वः ।।

---

१. वहीं, १३-५८
२. वही, १३-४५, ४६
३. विक्रमोर्वशीय, ५८

कवि ने यहां भी आश्रम के प्रमुखतत्त्वों के रूप में मृगों और फलफूल देने वाले वृक्षों की विशेष रूप से चर्चा की है और यह भी बताया है कि कभी कभार आस-पड़ोस के गांवों के पशु आश्रमों के पेड़ों के फलों और पत्तों आदि को चर जाया करते थे।

इस आश्रम की भी भौगोलिक स्थिति अनिर्णीत है।

पत्तन

पत्तन दो प्रकार के होते थे —

१. जलपत्तन और २. स्थलपत्तन। जल-पत्तन में नौकाओं और जहाजों से माल लादाउतारा जाता था। स्थलपत्तन में माल गाड़ियों आदि अन्य वाहनों से लाया ले जाता था। सं० "पत्तन" ही प्राकृत व हिन्दी का पट्टन है। पंजाब का "पाकपट्टन" और गुजरात के सौराष्ट्र का प्रभासपट्टन व पाटन तथा आन्ध्रप्रदेश का विशाखापत्तनम् प्रसिद्ध स्थल व जल पत्तन हैं। अमरकोष में "पत्तन" का एक पर्याय "पुटभेदन" बताया गया है[1]। वास्तव में "पुटभेदन" ऐसे पत्तन को कहते थे, जहां से बाहर से आये माल की गांठों की मुहर तोड़कर गांठे खोली जाती थीं[2]। कालिदास ने पत्तन को व्यापार व्यवसाय का केन्द्र मानते हुए कहा है कि पत्तन के रहते हुए भला गांवों में कौन रत्नों की परख करवाएगा —

परिव्राजिका—पत्तने सति ग्रामे रत्नपरीक्षा।[3]

ग्राम

कालिदास के उपर्युक्त कथन से सिद्ध होता है कि 'ग्राम', 'पत्तन' की अपेक्षा छोटी इकाई थी। उक्त उद्धरण में तो ग्राम का उल्लेख हुआ ही है साथ ही मेघदूत में भी उदयन की कहानी सुनाने वाले गांव के बड़े-बूढ़ों की चर्चा है :—

उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्।[4]

रघुवंश में दिलीप के द्वारा ब्राह्मणों को दान में दिए गए ग्रामों का

---

१. पत्तनं पुटभेदनम्-अमरकोष, २, २-१।

२. सार्थवाह, ले० डा० मोतीचन्द्र, पृष्ठ-१६

३. मालविकाग्निमित्र, १-१५

४. मेघदूत, पूर्वमेघ-३२

उल्लेख हुआ है--

ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु यज्वनाम् ।[५]

नन्दीग्राम

ग्राम-सामान्य की चर्चा के साथ ही कवि ने जिस विशेष ग्राम का उल्लेख किया है, वह है—अयोध्या का उपनगर नन्दीग्राम । कवि ने कहा है कि चित्रकूट से लौट कर भरत जी नन्दीग्राम में रहने लगे और श्रीराम के दिए राज्य को उनकी धरोहर मानकर उसकी देखभाल करते रहे—

नन्दीग्रामगतस्तस्य राज्यं न्यासमिवाभुनक् ।[१]

वाल्मीकिरामायण में भी यथाप्रसंग अनेकत्र इसका उल्लेख हुआ है ।

घोष या खेड़ा

मानव-समुदाय के आवास की सबसे छोटी इकाई "घोष" या खेड़ा थी । अमरकोश में "घोष" को "आभीरपल्ली" या दूध बेचने वाले घोसी-ग्वालों का "खेड़ा" बताया गया है[२] । कालिदास ने भी कहा है कि दिलीप जब अयोध्या से गुरु वसिष्ठ के आश्रम की ओर जा रहे थे तो घोष के बड़े-बूढ़े लोग उन्हें भेंट करने को ताजा मक्खन की मटकियां लिए हुए मार्ग में खड़े हुए थे—

हैयंगवीनमादाय ग्रामवृद्धानुपस्थितान् ।
नामधेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम् ॥[३]

अर्थात्—गांवों के जो बड़े-बूढ़े लोग, गाय का तुरत निकला हुआ मक्खन लेकर उन्हें भेंट करने के लिए आते थे, उनसे महाराज दिलीप और रानी सुदक्षिणा जंगल के पेड़ों के नाम पूछ कर उनके बारे में जानकारी प्राप्त करते जा रहे थे ।

मध्यक्षेत्र के पर्वत

मध्यक्षेत्र के कालिदास-निर्दिष्ट पर्वतों के विवेचन के प्रसंग में सर्व--

---

५. रघुवंश, १-४४
१. रघुवंश, १२-१८
२. अमरकोश, २-२०
३. रघुवंश, १-४५

प्रथम हमारा ध्यान आर्यावर्त की दक्षिणोत्तर सीमा के निर्धारक—

आर्यावर्तं पुण्यभूमिः मध्यं विंध्यहिमालयोः ।[1]

अमर कोष की इस उक्ति की ओर खिच जाता है। उत्तर में हिमालय और दक्षिण में विंध्याचल इन दोनों पर्वत-श्रृंखलाओं के बीच के मैदान का नाम जब आर्यावर्त है, तो यहां के पर्वतों के प्रसंग में सर्वप्रथम इन्हीं दोनों पर्वतों की चर्चा समीचीन होगी। इनमें से हिमालय का वर्णन पहले (पृष्ठ —) किया जा चुका है[2]।

विंध्याचल

आर्यावर्त की दक्षिणी सीमा का निर्धारक होने के नाते ही नहीं, भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक आदि अन्य अनेक कारणों से भी विंध्याचल का भारत-भूमि और यहाँ के जन-जीवन के लिए अत्यधिक महत्त्व है।

पूर्व में चित्रकूट से लेकर पश्चिम में गुजरात तक फैली हुई विंध्याचल और इसी की पश्चिमी श्रेणो पारियात्र (अर्वली) की शृंखलाएं उत्तर में दिल्ली तक फैली हुई हैं। नर्मदा घाटी के दोनों ओर यह फैला हुआ है। क्योंकि ऋक्षवान् या सतपुड़ा भी इसी का दक्षिणी भाग है। वास्तव में सात कुल-पर्वतों में से तीन विंध्याचल से ही सम्बद्ध हैं[3]। विंध्य पर्वत-शृंखला पूर्व में बुन्देलखंड, कैमूर श्रेणी और बिहार की राजमहल पहाड़ियों तक फ़ैली हुई है। सदाबहार घने जंगलों से आच्छादित रहने तथा नर्मदा, शोण, चम्बल, बेतवा, बनास और साबरमती जैसी अनेक छोटो-बड़ी नदियों का उद्‌गम-स्रोत होने के नाते विंध्याचल का भारत की आर्थिक समृद्धि में भी पर्याप्त योगदान है।

कालिदास ने रघुवंश, मेघदूत, ऋतुसंहार और मालविकाग्निमित्र में विंध्याचल की यथेष्ट चर्चा की है।

अनपोढस्थितिस्तस्थौ विन्ध्याद्रिः प्रकृताविव ।[4]

में कवि ने उस पौराणिक मान्यता की ओर ध्यान दिलाया है जिसमें कहा गया है कि पहले विंध्याचल पर्वत के शिखर ऐसे ऊंचे उठते जाते थे कि वे सूर्य को ढक लेंगे। इसलिए महर्षि अगस्त्य ने उसके सिर पर लात मारकर उसे

---

१. अमरकोष, २-१-८

२. देखिए पृष्ठ—

३. देखिए पृष्ठ—१६३

४. रघुवंश, १२-३०

वही रुक जाने के लिए कहा। फलतः तब से इसकी चोटियां और अधिक ऊंची नहीं उठीं।

विंध्यस्य संस्तम्भयिता महाद्रे—
निःषेपीतौज्झितसिंधुराजः ॥[1]

अर्थात् जिन महर्षि अगस्त्य ने महान् पर्वत विंध्य को और ऊपर उठने से रोक दिया और समुद्र का पीकर फिर (अपने मूत्र' के रूप में) उसे वापिस निकाल दिया।

के द्वारा भी इसी पौराणिक परम्परा का पुनः समर्थन किया गया है।

विंध्य पर्वत-शिखरों पर प्रभूत जलवृष्टि होती है। कवि ने उपमालंकार के माध्यम से इस भौगोलिक तथ्य का परिचय इस श्लाक में बड़े ही सुन्दर ढंग से दिया है—

तस्यापतन्मूर्ध्नि जलानि जिष्णो—
विन्ध्यस्य मेघप्रभवा इवापः ॥[2]

अर्थात्—श्रीराम के राज्याभिषेक के समय देश के कोने-कोने में पहुंचकर वानर ऋक्ष आदि के द्वारा लाए गए अभिषेक जल की धाराएं उनके सिर पर वैसे ही पड़ रही थी, जैसे विंध्याचल पर मेघ से बरसाई गई वर्षा की झड़ियां लगा करती हैं।

ऋतुसंहार में भी कवि विंध्य पर बादलों की अजस्र झड़ियों का परमहृदयग्राही अलंकृत चित्र अंकित करते हुए कहता है कि—ये पानी के बोझ के मारे नीचे झुक रहे बादल गर्मियों की आग बरसाने वाली लूओं की लपटों से झुलसे हुए इस विंध्य की तपन को अपने शीतल जल की झड़ियों से यह समझ कर बुझा रहे हैं कि जब हम पानी के बोझ से लदे हुए आते हैं तो यही हमें आश्रय देता है—

जलभरनमितानामाश्रयोऽस्माकमुच्चै
रयमितिजलसेकैस्तोयदास्तोयनम्राः।
अतिशयपुरुषाभिर्ग्रीष्मवह्नेः शिखाभिः
समुपजनिततापं ह्लादयन्तीव विन्ध्यम् ॥[3]

---

१. वही, ६-६१
२. वही, १४-८
३. ऋतुसंहार २-२८

इसी प्रकार मालविकाग्निमित्र में घनघोर घटाओं के द्वारा बिजलियां गिरा-गिराकर विंध्य शिखरों के तोड़े जाने की बात भी अप्रस्तुत रूप में कही गयी है :—

विद्युद्दाम्ना मेघराजीव विन्ध्यम् ।[1]

विंध्य पर्वत पर उगे घने जंगलों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि कुशावती से वापिस लौटते हुए कुश ने स्थान-स्थान पर पुलिन्दों की भेंट स्वीकार करते हुए विन्ध्य पर्वत शृंखला को पार कर लिया—

व्यलंघयद् बिन्ध्यमुपायनानि—
पश्यन्पुलिन्दैरुपपादितानि ॥[2]

मेघदूत में यद्यपि कवि ने विन्ध्याचल का कहीं प्रत्यक्षतः नामोल्लेख नहीं किया, फिर भी उसके 'आम्रकूट' शिखर तथा "ऋक्षवान्" और "पारियात्र" जैसी विन्ध्य की दक्षिण-पूर्वी और पश्चिमी शृंखलाओं का नामोल्लेखपूर्वक वर्णन तो किया ही है, साथ ही विंध्य के एक भाग रामगिरी में अपने शाप की अवधि का एक-एक दिन काटता हुआ यक्ष, मेघ से इसी विंध्य पर्वत से विदा लेने के लिए कहता है :—

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुंगमालिंग्य शैलम्
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरंकितं मेखलासु ॥[3]

आदि श्लोक में कवि ने भले ही स्पष्टतः विन्ध्य का नामोल्लेख न किया हो, किन्तु बिना नाम लिए भी यक्ष जो यह कह रहा है कि "हे मित्र, अब तू इस ऊंचे शिखर वाले पर्वत से विदा ले ले, जिसकी घाटियाँ श्रीराम के चरणचिह्नों से अंकित हैं", वह पर्वत विंध्याचल ही है।

विन्ध्य की सप्तकुल पर्वतों में प्रमुखतया गणना करते हुए (पृष्ठ—) मत्स्य, कूर्म, विष्णु व श्रीमद्भागवत आदि पुराणों तथा महाभारत में इसका उल्लेख अनेकत्र किया गया है। वाल्मीकिरामायण में गृध्रराज सम्पाति कहता है कि मैं पहले सूर्य की किरणों से झुलसकर इस विंध्य शिखर पर आ गिरा।[4] विष्णुपुराण में यह भी बताया गया है कि नर्मदा आदि अनेक

---

१. मालविकाग्निमित्र, ३-२१

२. रघुवंश, १६-३२

३. मेघदूत, पूर्वमेघ- ९

४. अस्य विन्ध्यस्य शिखरे पतितोऽस्मि पुरानघ ।
सूर्यतापपरीतांगो निर्दग्धः सूर्यरश्मिभिः ॥ —वा० रामा० किष्किन्धा ६०-४

नदियां विन्ध्य से निकलती हैं।[१] अगस्त्य ने विन्ध्य को ऊपर उठने से रोक दिया था, इस रूपक को स्पष्ट शब्दों में समझाते हुए कहा गया है कि अत्यन्त दुरूह दुर्गम एवं बहुत ऊंचे उठे हुए विन्ध्य को पार कर महर्षि अगस्त्य सर्वप्रथम दक्षिण में पहुँचे थे। उनके इस साहसिक अभियान को देखकर यह कवि कल्पना फूट पड़ी कि मानो अगस्त्य ने विन्ध्य की ऊँचाई को समाप्त कर दिया।[२]

रामगिरि

नागपुर से ४० कि० मी० पूर्वोत्तर में रामटेक तक रेलगाड़ी जाती है। कहा जाता है कि 'रामटेक' के पास 'रामगिरि' है। सरोवर के पास से पर्वत पर जाने के लिये सीढ़ियां बनी हुई हैं। मार्ग में स्थान-स्थान पर विश्राम स्थान और छोटे-छोटे मन्दिर तथा एक बावड़ी है। पर्वत-शिखर पर श्रीराम-मन्दिर में राम-लक्ष्मण सीता जी की मूर्तियां हैं, तथा मन्दिर के सामने वराह भगवान् की विशाल प्रतिमा है। रामटेक के पास रामसागर तथा अंबला सागर नामक दो सरोवर हैं।

कवि ने

जनकतनया-स्नानपुण्योदक

तथा घने वृक्षों की छाया वाले रामगिरी के आश्रमों का वर्णन किया है :—

यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥[३]

आगे भी इस पर्वत की तलहटी को सर्वजनवन्द्य भगवान् श्रीराम के चरण-चिह्नों से सुशोभित बताया गया है :—

शैलं वन्द्यैः पुसां रघुपतिपदैरंकितं मेखलासु।[४]

यक्ष का मेघ को विदिशा तक सीधे उत्तर में चलते रहने तथा वहां से उज्जयिनी के लिए कुछ दक्षिण-पश्चिम में मुड़ जाने के लिए कहने से

---

१. नर्मदा सुरसाद्याश्च नद्यो विन्ध्याद्रिनिर्गताः। —विष्णुपुराण २-३-११

२. अगस्त्यो दाक्षिणमाशामाश्रित्य नभसि स्थितः।
वरुणस्यात्मजो योगी विन्ध्यवातापिमर्दनः॥ —ब्रह्मपुराण

३. पूर्वमेघ-१

४. मेघदूत, पूर्वमेघ-१२

"रामटेक" को ही "रामगिरि" माना जाता है इसी प्रकार श्री बी० के० परांजपे व श्री एम० वैंकटरमैया आदि विद्वानों ने सरगुजा की रामगढ़ पहाड़ियों में स्थित गुफाओं को रामगिरि सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। क्योंकि चित्रकूट विदिशा के दक्षिण में न होकर कुछ पूर्वोत्तर में है। और रामगढ़ भी दक्षिण में न होकर विदिशा से पूर्व में है। किन्तु विदिशा का देशान्तर ७७.८है जबकि रामगढ़ की स्थिति ८२ देशान्तर पर है।

अत: यह लगता है कि चित्रकूट और सरगुजा की पहाड़ियां शायद कवि के रामगिरि नहीं हैं। इस सम्बन्ध में एक अन्य मत भी है।

नीचगिरि

विंध्याचल और उसकी दक्षिण-पूर्वी शृंखला "ऋक्षवान्", "सतपुड़ा" एवं पारियात्र या अरावली की चर्चा के बाद अब ऐसे छोटे पर्वतों की चर्चा समीचीन होगी जिनका उल्लेख कालिदास ने अपनी कृतियों में किया है। इनमें से प्रथम है नीचगिरि। कालिदास ने मेघदूत में कहा है—

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो
स्त्वत्संपर्कात्पुलकितमिव प्रौढ़पुष्पैः कदम्बैः ॥[1]

यहां कवि ने दशार्ण देश, उसकी राजधानी विदिशा और चंचल लहरों वाली वेत्रवती नदी के बाद इस नीच पर्वत का उल्लेख किया। शिलावेश्मों-चट्टानों को काटकर बनाई गई इसकी भव्य गुफाओं—में रसिकों को मौज मनाते दिखाया गया है। नीचगिरि किसी पर्वत विशेष का नाम न होकर उसकी कम ऊंचाई का द्योतक विशेषण मात्र है। कवि ने इस श्लोक में विदिशा के पास ही में स्थित आजकल 'उदयगिरि" के नाम से अभिहित थोड़ी सी ऊंची पहाड़ी का ही वर्णन किया है, जहां गुप्तकाल में बनी अजन्ता जैसी २० गुफाएं हैं। देवी-देवताओं की सुन्दर मूर्तियों से ये गुफाएं सुशोभित हैं। गुफा संख्या १० में गुप्त संवत् १०६ (ईस्वी ४२५-२६) में कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल का यह अभिलेख है :—

नमः सिद्धेभ्यः श्रीसंयुतानां गुणतोयधीनां
गुप्तान्वयानां राज्ये कुलस्याधिवविर्धमाने
षड्भिर्युतैः वर्षशतेऽथ मासे
सुकार्तिके बहुल दिनेऽथ पंचमे।[2]

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ-२७

२. गुप्तसाम्राट और उनका युग

निश्चित ही कालिदास ने—

उद्दामानि प्रथयति शीलावेश्मभिर्यौवनानि ।[1]

में उदयगिरि की इन्हीं प्रसिद्ध गुफाओं का वर्णन किया है।

कुमारगुप्त से पूर्व चन्द्रगुप्त द्वितीय के भी दो शिलालेख इन गुफाओं में विद्यमान हैं। प्रथम अभिलेख जिस गुफा में अंकित है उसमें भगवान् विष्णु की प्रतिमा अंकित है और संस्कृत गद्य में लिखित इस लेख के लिए गुप्त संवत् ८२, (ईस्वी ४०१) के आषाढ़ शुक्ल एकादशी तिथि दी गयी है। एक अन्य गुफा का अभिलेख शैव धर्म से सम्बद्ध है। इसे चन्द्रगुप्त द्वितीय के सांधिविग्रहिक सचिव शाब[2] उपनामक वीरसेन ने उत्कीर्ण करवाया था। इस अभिलेख की अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—

व्यापिचन्द्रगुप्ताख्यमद्भुतम्…भक्त्या भगवतः शम्भोः गुहामेतामकारयत् ।[3]

इससे कालिदास का स्थितिकाल भी स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

देवगिरि

कालिदास ने यक्ष-द्वारा मेघ का मार्गदर्शन कराते हुए कहा है कि आगे बढ़ते हुए तुम कीर्तिकेय के परमपावन तीर्थ देवगिरि पहुंच जाना—

नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
शीतोवायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥[4]

अर्थात् वहां से आगे तुम्हें चम्बल नदी मिलेगी। कवि ने "देवगिरि" का वर्णन पूर्वमेघ के ४६-४७वें श्लोक में किया है और अगले दो श्लोकों में चम्बल की चर्चा की है। इसी आधार पर मालवप्रदेश के वर्तमान देवगढ़ को कालिदास का "देवगिरि" माना जाता है।

किन्तु इसका सुनिश्चित किसी भौगोलिक स्थान-विशेष के साथ प्रत्यभिज्ञान ठीक से निर्धारित नहीं हो पाया है।

मालक्षेत्र

कालिदास ने आम्रकूट से रामगिरि तक आजकल के मालवा के दक्षिणपूर्व में फैले "मालक्षेत्र" या पठार से सम्बद्ध भौगोलिक तथ्यों

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ-२७
२. गुप्तसम्राट और उनका युग, ले० उदयनारायण राय।
३. वही,
४. मेघदूत, पूर्वमेघ-४६

की जानकारी दी है। इस पठार के अपेक्षाकृत ऊंचे भाग में स्थित होने पर भी वहां हल के द्वारा खतों की जुताई किए जाने की भी चर्चा कवि ने मेघदूत के—

सद्यः सीरोत्कषणसुरभिः क्षेत्रमारुह्य मालम्।[१]

आदि श्लोक में स्पष्ट शब्दों में की है।

पारियात्र

विंध्य की पश्चिमी श्रेणियों तथा अरावली पर्वत-शृंखला का संयुक्त नाम "पारियात्र" है।[२]

विष्णुपुराण में सात कुलपर्वतों में पारियात्र की भी गणना की गई है।[३]

महाभारत में यह भी कहा गया है कि पारियात्र पर्वतशृंखला में महर्षि गौतम का आश्रम है[४]। पुष्कर में गर्जर गौड़ समाज के गौत्तमाश्रम की समीचीनता का यह एक अकाट्य प्रमाण है।

कालिदास ने—

तस्मिन्प्रयाते परलोकयात्राम्
जेतर्यरीणां तनयं तदीयम्।
उच्चैःशिरस्त्वाज्जितपारियात्रम्
लक्ष्मीः सिषेवे किल पारियात्रम्॥[५]

इस श्लोक में बताया है कि अहीनगु के स्वर्ग सिधार जाने पर उसके पुत्र महाराज पारियात्र ने पारियात्र पर्वत की ऊंची चोटियों पर भी विजय प्राप्त करके उसे नीचा दिखा दिया था।

यहाँ पारियात्र को ऊंची चोटियों वाला बताकर प्रकारान्तर से पारियात्र (अर्वली) पर्वत की ऊंची चोटियों की ओर ही संकेत किया गया है।

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ-१६

२. पार्जिटर-जनरल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी १८९६ पृष्ठ २५८।

३. महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमनृक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥
विष्णुपुराण-२-३-३

४. पारियात्रं गिरिं प्राप्य गौतमस्याश्रमो महान्।
—महा० भा० शान्ति पर्व १२९-४

५. रघुवंशं १८-६

गोवर्धन

मथुरा और वृन्दावन की यात्रा करने वाले यात्री पवित्र 'गोवर्धन' की परिक्रमा भी करते हैं। कालिदास ने गोवर्धन पर्वत और उस पर नाचते हुए मोरों की चर्चा करते हुए कहा है—

अध्यास्य चाम्भःपृषतोक्षितानि
शैलेयगन्धीनी शिलातलानि ।
कलापिनां प्रावृषि पश्य नृत्यं
कान्तासु गोवर्धनकन्दरासु ॥[1]

अर्थात्—वर्षा ऋतु में गोवर्धन पर्वत की मनोहर गुफाओं में वर्षा की सुहावनी फूहारों से भीगी शिलाजीत की सुगन्धि वाली शिलाओं पर बैठकर तुम वहां मोरों का नाचना देखा करना।

कवि के इस कथन से कि गोवर्धन पर्वत पर कन्दराएं भीहैं, उसकी काफी ऊंचाई सिद्ध होती है, और शिलाजीत भी उंचे पहाड़ों की चट्टानी चोटियों से ही निकलती है। किन्तु गोवर्धन तो को पर्वत न होकर पत्थरों या चट्टानों का एक ढेर मात्र है। (देखें भूमिका)

चित्रकूट

अयोध्या से चलकर आने वाले यात्री को दक्षिण को ओर प्रयाग में गंगा पार कर सबसे निकट प्रसिद्ध एवं ऐतिहासिक जो तीर्थ स्थान मिलता है, वह है चित्रकूट। चित्रकूट की स्थिति वर्तमान झांसी-मानिकपुर रेललाइन पर उत्तर प्रदेश के बांदा जिले में है। उसी के साथ-साथ मन्दाकिनी नदी भी बहती है। कालिदास ने चित्रकूट का उल्लेख निम्न स्थलों में किया है—

चित्रकूटवनस्थं च कथिता स्वर्गतिर्गुरोः ।[2]

और—

बध्नाति में बंधुरगात्रि चक्षुर्दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूटः ।[3]

चित्रकूट को 'कामतानाथ गिरि' भी कहते है। इस पर महाराज छत्रसाल की रानी ने सीढ़ियां बनवाई थीं। श्री राम के जन्मदिन रामनवमी को और दीपावली को यहां मेले लगते हैं। (देखे भूमिका)

---

१. रघुवंश, ६-१५
२. वही, १२-१५
३. वही, १३-१४

मध्यक्षेत्र की नदियां

प्रमुखतया मध्यक्षेत्र गंगा का सपाट मैदान है। तदनुसार नर्मदा और सरस्वती को छोड़कर इस क्षेत्र में प्रवाहित सभी नदियां दायें बायें तटों से गंगा में ही आ मिलती हैं।

मध्यक्षेत्र की सरस्वती से लेकर नर्मदा तक अनेक नदियों की चर्चा कालिदास ने की है। सप्तसिन्धु या उदीच्य—पश्चिमोत्तर क्षेत्र—से मध्यक्षेत्र की ओर बढ़ने पर सर्वप्रथम सामने आने वाली जिस नदी का वर्णन कवि ने किया है वह है, सरस्वती। इसीलिए मध्यक्षेत्र की नदियों का विवेचन सरस्वती से ही आरम्भ किया जा रहा है।

सरस्वती

सरस्वती नदी शिवालक पर्वतमाला में सिरमोर के पास से निकल कर अम्बाला जिले के पास मैदानों में प्रवेश करती है और अपने पूर्व में बहने वाली यमुना व पश्चिम में बहने वाली सतलुज के बीच के भूभाग में प्रवाहित होती है। कुछ ही दूर बहने के बाद इसका प्रवाह भवानीपुर तथा बालप्पर के पास बालू में लुप्त हो जाता है, जो कुछ आगे चलकर बरखेड़े के पास पुनः प्रकट होता है। पहोवा के पास उरनई में मार्कण्डेय नदी इससे मिलती है। यहां से इसका नाम हकरा या सोतार पड़ जाता है। हनुमानगढ़ के पास यह सदा के लिए बालु में लुप्त हो जाती है। इसका प्राचीन प्रवाहक्षेत्र जो अब सूख गया है, बीकानेर के पास १५० कि० मी० लम्बा और ५-६ कि० मी० तक चौड़ा था। सरस्वती के इसी शुष्क जलप्रवाह क्षेत्र में विशाल राजस्थान नहर निकाल दी गयी है।

ब्रह्मावर्त और उसके अंतर्गत पड़ने वाले कुरुक्षेत्र का सारग्राही वर्णन करने के बाद कवि वहीं बहने वाली सरस्वती नदी और उसकी निर्मल जलराशि का वर्णन भी हृदयग्राही रूप में इस प्रकार करता है—

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनांकां
बंधुप्रीत्या समरविमुखो लांगली याः सिषेवे।
कृत्वा तासामभिमतमपां सौम्य सरस्वतीना
मन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥[1]

अर्थात्---हे सौम्य, कौरवों और पाण्डवों पर समान प्रेम रखने के कारण बलराम जी महाभारत के युद्ध में किसी की ओर से नहीं लड़े। वे तो जब देश

१. मेघदूत, पूर्वमेघ-५३

भर के क्षत्रिय राजा कुरुक्षेत्र में एक दूसरे से जूझ रहे थे, तब भी कभी तो अपनी प्यारी रेवती के नेत्रों की कान्ति से चमकती प्याले में भरी हाला में और कभी सरस्वती के पवित्र जल में डूबे रहते थे। उस सरस्वती का जल यदि तुम भी पी लोगे तो तुम्हारा वर्ण बाहर से भले ही काला बना रहे, किन्तु तुम्हारा अन्तर अवश्य पवित्र हो जाएगा।

कालिदास ने जहां एक ओर सरस्वती की भौगोलिक स्थिति का यथातथ्य प्रतिपादन किया है, वहीं दूसरी ओर इस नदी की सामाजिक मान्यता, प्रतिष्ठा और पवित्रता का भी काव्यात्मक रूप में संकेत दे दिया है। सरस्वतो की गणना भारत की सात पवित्र नदियों में की जाती थी।

ऋग्वेद में सरस्वती का उल्लेख करते हुए कहा गया है 'हे गंगा, यमुना, सरस्वती, हे शतुद्रि (सतलुज) पिरुष्णी रावी के सहित तुम मेरे स्तोत्र को सुनो। हे मरुद्वृधा और आर्जीकीया असिक्नी, वितस्ता और सुषोमा के साथ मेरी स्तुति सुनो।'[1]

ताण्डच ब्राह्मण जैमनीय एवं एतरेय ब्राह्मण और तैतरीय संहिता आदि में भी इसका उल्लेख हुआ है।

जहां 'कुभा' और अफगानिस्तान की अन्य नदियों के साथ 'सरस्वती' की चर्चा है, वह निश्चित ही इससे भिन्न ईरान और अफगानिस्तान के सीमावर्ती क्षेत्र में बहने वाली 'सरस्वती' है, जिसका फारसी में स का उच्चारण ह हो जाने के कारण 'हरेइवती' नाम प्रसिद्ध है।

सरस्वती-विनशन

जैसा कि उक्त विवेचन से स्पष्ट है ब्रह्मावर्त प्रदेश के मैदान में सरस्वती का प्रवाह कुछ दूर बहने के बाद लुप्त हो जाता है, फिर प्रकट होता है और बीकानेर के आसपास सदा के लिए लुप्त हो जाता है।

सरस्वती नदी का उल्लेख तो कालिदासने उक्तश्लोक में किया है, साथ ही सरस्वती के 'विनशन' की भी कवि ने चर्चा की है। कवि के द्वारा अप्रस्तुत रूप में किसी भौगोलिक तत्त्व का निर्देश प्रस्तुत की अपेक्षा भी अधिक हृदयग्राही बन गया है। तदनुसार रघुवंश के तृतीय सर्ग में महाराज दिलीप की पटरानी के दोहृदवती होने पर अनेक उपमानों के द्वारा उसकी नैसर्गिक कान्ति के

---

१. इमं मे गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये श्रुणुह्या सुषोमया॥
—ऋग्वेद, १०-७५-४

वर्णन के प्रसंग में अन्तःसलिला सरस्वती ने भी कवि का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है—

नदीमिवान्तः सलिलां सरस्वतीं
नृपः ससत्वां महिषीममन्यत ।[1]

स्पष्ट है कि कवि के समय से पूर्व ही ब्रह्मावर्त प्रदेश में सरस्वती के विनशन-सम्बन्धी भौगोलिक तथ्य से जन-समाज सुपरिचित था। इसी की चर्चा कवि ने यहां की है।

कालिदास ने मेघदूत में यक्ष द्वारा मेघ के मार्गदर्शन के प्रसंग में ब्रह्मावर्त का नामोल्लेख करके ही सन्तोष नहीं कर लिया, अपितु इस क्षेत्र का ऐतिहासिक महत्व और भौगोलिक विशेषताओं का वर्णन एक साथ ही कर दिया और कहा है—

ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः ।
राजन्यानां सितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥[2]

अर्थात्—हे मेघ, दशपुर से आगे बढ़ते हुए तुम ब्रह्मावर्त जनपद पर छाया करते हुए कुरुक्षेत्र की ओर आगे बढ़ना, जो कौरव-पाण्डवों के आपसी युद्ध के कारण आज तक बदनाम है और जहां गाण्डीवधारी अर्जुन ने शत्रुराजाओं के मुखों पर वैसे ही अनगिनित बाण बरसाए थे जैसे तुम कमलों पर जलधारा बरसाते हो।

यमुना

सप्तसिन्धु से पूर्व की ओर आने वाले यात्री को सरस्वती को पार कर यमुना की निर्मल श्यामल जलराशि में अवगाहन करना होता है। यमुना का उद्गम कलिंद पर्वत में १३०० फीट की ऊंचाई पर स्थित यमुनोत्री नामक हिमगुहा से होता है। यह स्थान बंदरपुंछ श्रेणी के पश्चिमी भाग में स्थित है। हिमालय में प्रवाहित होने के बाद यमुना जगाधरी के पास ब्रह्मावर्त के मैदानी प्रदेश में प्रवेश करती है। यहाँ से पूर्व की ओर बहती हुई इन्द्रप्रस्थ (वर्तमान दिल्ली) मथुरा, आगरा, इटावा जैसे नगरों तथा क्षेत्रों को उपजाऊ बनाती हुई १४०० कि० मी० मार्ग तय कर प्रयाग के पास गंगा में जा मिलती है।

---

१. रघुवंश, ३-९
२. मेघदूत, पूर्वमेघ-५२-५३

यमुना-मथुरा में

कालिदास ने मध्यक्षेत्र वाहिनी यमुना की स्थिति मथुरा और प्रतिष्ठान (प्रयाग) में दिखाई है। कवि ने प्राचीन ऐतिहासिक नगर मथुरा के साथ बहती हुई यमुना, उस पर बने हुए घाटों, महलों, और मन्दिरों का भी वर्णन किया है और कहा है कि कहीं पर सुन्दरियों के स्तनों पर लगे हुए श्वेत चन्दन के घुल जाने के कारण यमुना की जलधारा के श्वेत हो जाने से ऐसा लगता है कि प्रयाग के स्थान पर मथुरा में ही गंगा और यमुना का संगम हो गया हो—

कलिंदकन्या मथुरां गतापि गंगोर्मिसंसक्तजलेव भाति।[1]

रघुवंश के पन्द्रहवें सर्ग में भी कवि मथुरा के शत्रुघ्न द्वारा बसाये जाने की बात कहकर उसके किनारे बहने वाली यमुना का वर्णन करता है—

उपकूलं स कालिन्द्याः पूरीं पौरुषभूषणः
निर्ममे निर्ममोऽर्थेषु मधुरां मथुरां कृति।
तत्र सौधगतः पश्यन्यमुनां चक्रवाकिनीम्
हेमभक्तिमतीं भूमेः प्रवेणीमिव पिप्रिये॥[2]

कालियदह

कालियनाग यमुना में मथुरा के समीप ही बने दह में रहा करता था। इसे ही श्री कृष्ण ने नाथ कर वहां से हटा दिया। कवि ने—

त्रस्तेन तार्क्ष्यात्किल कालियेन
मणिं विसृष्टं यमुनोकसाय।[3]

के द्वारा यमुना में बने इस कालियदह-सम्बन्धी भौगोलिक तथ्य की ओर संकेत किया है।

यमुना-प्रयाग में

गंगा और यमुना का संगम प्रयाग में होता है। इस भौगोलिक तथ्य का प्रतिपादन कवि ने—

पश्यानवद्यांगि विभाति गंगा भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः।[4]

---

१. रघुवंश, ६-४८
२. रघुवंश, १५-२८,३०
३. वही, ६-४९
४. रघुवंश, १३-५७

के द्वारा किया है। इसी प्रकार—

एतद्भगवत्याः भागीरथ्याः यमुनासंगमविशेषपावनेषु सलिलेष्वात्मानमवलोकयत इव प्रतिष्ठानस्य शिखाभरणभूतं तस्य राजर्षेर्भवनमुपस्थिते स्वः।[1] में भी प्रयाग में गंगा-यमुना-संगम-सम्बन्धी भौगोलिक तथ्य स्पष्टतया प्रतिपादित हुआ है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कालिदास ने हिमालय में बंदरपूंछ श्रेणी के पश्चिमी भाग में स्थित कलिंद पर्वत की गुहा से निकली यमुना से लेकर प्रयाग में उसके गंगा से जा मिलने तक की विशिष्ट स्थितियों से सम्बद्ध अनेक भौगोलिक तथ्यों का प्रामाणिक मानचित्र अंकित किया है।

ऋग्वेद में यमुना और गंगा इन दोनों नदियों के नाम साथ ही साथ आए है।[2]

गंगा

पश्चिमोत्तर में स्थित सप्तसिन्धु क्षेत्र से मध्य क्षेत्र में प्रवेश करने पर दृषद्वती, सरस्वती और यमुना को पार करने के बाद पुण्यतोया गंगा के दर्शन होते हैं। इसलिए अन्य दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण होते हुए भी गंगा को यहां सरस्वती और यमुना के बाद लिया गया है। गंगा का जल पवित्र माना जाता है और यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि वर्षों तक पड़े रहने पर भी इसमें कोई विकृति नहीं आती।

गंगा की प्रमुख तीन धाराओं में से एक प्रधान धारा भागीरथी हिमालय में गंगोतरी नामक २५ कि०मी० लम्बी कन्दरा में से बहती गोमुख से उद्गत होकर २५ सौ कि० मी० बहने के बाद गंगासागर के पास पूर्वसागर में जा मिलती है। इस प्रकार हिमालय में ३०० कि० मी० बहने के बाद ऋषिकेश के समीप गंगा मैदानों में उतरती है और यहां से आगे मध्य तथा पूर्वी क्षेत्र के गंगा के मैदान के नाम से प्रसिद्ध विशाल भू-भाग को आप्लावित करती है। इतने लम्बे यात्रापथ में यह अनेक नाम-रूप धारण करती है। १३००० फीट की ऊंचाई पर अपने उद्गम गोमुख पर भागीरथी केवल दो मीटर चौड़ी और आधा मीटर गहरी ही है, जब कि पटना से आगे के यात्रापथ में यह इतनी विशाल और गहरी हो जाती है कि इसमें जहाज चलते हैं।

---

१. विक्रमोर्वशीय, २-९

२. देखिए पृष्ठ-१९६, पादटिप्पणी

उधर केदारनाथ के पास से आने वाली मन्दाकिनी बद्रीनाथ के पास से आने वाली अलकनन्दा में आ मिलती है और अलकनन्दा देवप्रयाग में भागीरथी से आ मिलती है। इस प्रकार देवप्रयाग से नीचे आने के बाद भी इसका नाम भागीरथी बना रहता है।

कालिदास ने गंगा के नाना रूपों का कहां और कैसा वर्णन किया है, यहां इसी पर विचार किया जा रहा है।

कवि ने हिमालय, मध्यक्षेत्र और पूर्वी क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली गंगा के विभिन्न रूपों और अवस्थाओं के बड़े स्वाभाविक चित्र अंकित किए है।

गंगा मध्य-क्षेत्रवाहिनी—

हिमालय से उतर कर गंगा हरद्वार से लेकर प्रयाग तक मध्य-क्षेत्र में बहती है। इस मध्य-क्षेत्रवाहिनी गंगा का कवि ने अनेकत्र उल्लेख किया है। जैसे कि मेघदूत के 'तस्माद्गच्छेः'[1] इत्यादि पद्य में सर्वप्रथम मैदानों में प्रवेश करने वाली गंगा का वर्णन है। तो रघुवंश के—

क्वचित्खगानां प्रियमानसानां
कादम्बसंसर्गवतीव पंक्तिः।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा
भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥
क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभि-
श्छायाविलीनैः शबलीकृतेव ।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा
रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभः प्रदेशा ॥[2]

अर्थात्—प्रयाग के इस सङ्गम-स्थल पर एक दूसरी को अपने अंक में समेटती हुई गंगा और यमुना की जलराशि बहुत दूर तक श्याम श्वेत शबलित दिखाई देती है—जैसे कहीं तो सफेद राजहंसो के बीच-बीच में सांवले हंस-कादम्ब मिलजुल गये हों या कहों ऐसी लग रही है जैसे चन्दनचर्चित शुभ्र रंगोली के बीच-बीच में काले अगर के थापे से लगा दिये गए हों, और कहीं ऐसे लगता है जैसे किसी महान् वटवृक्ष के नीचे छाया और चादनी एक दूसरे के साथ गुत्थमगुत्था हो रही हो या जैसे शरद ऋतु के सफेद बादलों के उड़ते

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ-५४
२. रघुवंश, १३-५४ से ५६

हुए गालों के बीच-बीच में सांवला आकाश दिखाई दे रहा हो। और कहीं काले-काले बादलों की छाया के बीच में चांदनी छिटक रही हो।

गंगा-यमुना के संगम का यह चल चित्र इतना सजीव और हृदय-हारी है कि इसकी यथार्थता का प्रत्यक्ष अनुभव संगम-स्नानार्थी उस प्रत्येक सहृदय को अनायास ही होने लगती है, जो किले के पास से यमुना में नाव में बैठ कर ज्यों ही कुछ आगे बढ़ता है कि दांई ओर से आने वाले गंगा के प्रवाह के साथ मिलते ही कालिदास चित्रित उक्त चित्र उसकी आंखों के सामने स्वतः घूम जाता है। सचमुच वहां श्वेत-श्याम-शबलित जलराशि काफी दूर तक ऐसा दिव्य दृश्य उपस्थित करती है, 'जिसका चित्रण कालिदास की क्रान्तदर्शिनी प्रतिभातूलिका ही अंकित कर सकती थी। (संगम स्थल पर गंगा-यमुना के श्याम श्वेत जल के छोटे बड़े गालों के दर्शन का सौभाग्य जब लेखक को प्राप्त हुआ तो वह कवि के द्वारा अंकित उक्त चित्र का प्रत्यक्ष दर्शन कर आनान्दविभोर हो उठा।)

आगे चौदहवें सर्ग में भी कहा गया है कि सीता जी की गंगातीर के तपोवनों को फिर से देखने की इच्छा हुई—

इयेष भूयः कुशवन्ति गन्तुं
भागीरथीतीरतपोवनानि ।[1]

तब श्रीराम ने लक्ष्मण जी के साथ उन्हें भेज दिया। वे उन्हें गंगा-तट पर ले गये जहां केवट द्वारा लाई गई नाव पर बैठकर गंगा पार गए और सीता जी को वहीं छोड़ आए—

गंगां निषादाहृतनौविशेष
स्ततार संधामिव सत्यसंधः ।[2]

निश्चय ही यह स्थान अयोध्या से अनतिदूर सम्भवतः कानपुर के निकट बिठूर के पास रहा होगा। क्योंकि वाल्मीकि-आश्रम की स्थिति इसके निकट ही मानी जाती है। इसी प्रकार—

गंगा सरय्वोर्जलमुष्णतप्तं
हिमाद्रिनिष्यन्द इवावतीर्णः।[3]

इत्यादि में सरयू का गंगा में मिलन-स्थल का भी वर्णन किया गया है। यह स्थान अयोध्या के निकट ही है।

---

१. रघुवंश, १४-२८
२. वही, १४-५२
३. वही, १४-३

गंगा-पूर्वक्षेत्र-वाहिनी

पूर्वक्षेत्रवाहिनी तथा हिमालय-वाहिनी गंगा की कालिदास ने जो चर्चा की है उसका विवेचन पहले किया जा चुका है।[1]

गंगोतरी से गंगासागर तक

उक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट होता है कि कालिदास ने अपनी कृतियों में गंगा का केवल यत्र-तत्र नामोल्लेख ही नहीं किया, अपितु उसके उद्गम गंगोतरी से लेकर गंगासागर के पास पूर्वसागर में प्रवेश करने तक की विविध स्थितियों से सम्बद्ध तथ्यों का भी वर्णन किया है।

गंगा की सहायक अन्य छोटी नदियां

इस प्रकार भारत की पवित्र और प्रमुख नदी गंगा और उसकी सहायक यमुना के विवेचन के बाद अब उत्तर और दक्षिण से आकर गंगा में मिलने वाली कुछ छोटी किन्तु महत्त्वपूर्ण नदियों की चर्चा कर लेना उचित एवं उपयुक्त होगा, जिनका उल्लेख कालिदास ने अपनी कृतियों में किया है। उत्तर से आकर गंगा में मिलने वाली प्रायः सभी नदियों का उद्गम स्रोत हिमालय ही है। गंगा अधिकतर हिमालय के समानान्तर प्रवाहित होती है, अतः इन नदियों का प्रवाह मार्ग बहुत लम्बा नहीं है। कालिदास ने उत्तर से आकर गंगा में मिलने वाली जिन पांच नदियों की चर्चा की है, वे, हैं—

१. मालिनी २. गोमती ३. तमसा ४. सरयू ५. कौशिकी

इन नदियों के बारे में कालिदास-द्वारा प्रतिपादित विवरण इस प्रकार है—

मालिनी—

ब्रह्मावर्त से पांचाल क्षेत्र में प्रवेश करने के बाद उत्तर की ओर से आकर गंगा में मिलने वाली जिस नदी का यात्री को सर्वप्रथम दर्शन होता है और जिसकी चर्चा कवि ने निम्नश्लोक में की है, वह है मालिनी—

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी।[2]

---

१. देखिये पृष्ठ-४० तथा १३६-४

२. अभिज्ञानशाकुन्तल, ६-१७

गोमती

प्राचीन भुवनकोषों में निम्न दो गोमती नदियों का उल्लेख हुआ है—

(१) अफगानिस्तान की नदी गोमती (गोमल)।

(२) लखनऊ के पास प्रवाहित गोमती।

इनमें से प्रथम गोमती की चर्चा उसके साथ प्रवाहित होने वाली क्रमु (कुर्रम या खुर्रम) तथा कुभा (काबुल) आदि अन्य नदियों के साथ सिन्धु की सहायक नदियों के रूप में ऋग्वेद[1] में हुई है।

(२) लखनऊ के पास बहने वाली अवध की प्रसिद्ध नदी।

मालिनी से पूर्व की ओर आगे बढ़ने पर उत्तर से आकर गंगा में मिलने वाली जिस नदी का नामोल्लेख कवि ने किया है वह यही गोमती है।

अभिज्ञानशाकुन्तल में अनुसूया के मुख से कवि ने कहलाया है कि राजर्षि विश्वामित्र मुनि गोमती के तट पर तप किया करते थे :—

गोमतीतीरे पुरा किल तस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य किमपि जातशंकैर्देवैर्मेनका नाम अप्सराः प्रेषिता नियमविघ्नकारिणी।[2]

अर्थात् विश्वामित्र ऋषि गोमती के तट पर उग्र तपस्या किया करते थे। उस समय उस तप से शंकित देवताओं ने उनके तप में विघ्न डालने के लिए मेनका अप्सरा को भेजा।

वाल्मीकिरामायण में वन-गमन के समय श्रीराम के द्वारा क्रमशः तमसा, गोमती और स्यन्दिका (सई) नदियों को पार करते हुए आगे बढ़ते दिखाया गया है[3]। महाभारत[4], विष्णुपुराण[5] व श्रीमद् भागवत[6] में भी गोमती का उल्लेख है।

---

१. त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे। —ऋग्वेद १०-७५-६
इसके अतिरिक्त—'त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः महारायः सातिमग्ने अपा वृधि।' ऋग्वेद के इस ८-२४-२६ में पठित 'गोमती' का अर्थ है गौ आदि पशुओं से युक्त। यह नद्यर्थक गोमती शब्द नहीं है।

२. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-२३ से आगे गद्य

३. गोमतीञ्चाप्यतिक्रम्य राघवः शीघ्रगैर्हयैः।
मयूरहंसाभिरुतां ततार स्यन्दिकां नदीम्॥—वा रामायण अयोध्याकाण्ड४६-११

४. रघुवंश, ६-२०

५. वही, ६-७२

६. वही,

तमसा

पश्चिम से पूर्व की ओर आगे बढ़ने वाले यात्री को गोमती पार कर लेने के बाद मध्य क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली तथा उत्तर से गंगा में आकर मिलने वाली जो दो नदियां मिलती हैं वे हैं तमसा और सरयू।

तमसा की भौगोलिक स्थिति के बारे में बताया गया है कि—बिसूदी (वेदश्रुति) नदी और मड़हा नामक दो कुनदिकाएं मिलकर तमसा का रूप ग्रहण कर लेती हैं और वर्तमान टोंस नदी के नाम से फैजाबाद, सुलतान-पुर और आजमगढ़ जिले से होती हुई बलिया के समीप गंगा में जा मिलती है।

कालिदास ने तमसा की उक्त भौगोलिक स्थिति का अपने काव्यों में तथ्यपरक निरूपण करते हुए कहा है कि महाराज दशरथ ने तामसिक भाव का सर्वथा परित्याग कर तमसा और सरयू के तटों को यज्ञीय स्वर्ण-स्तम्भों से सुशोभित कर दिया था :—

कनकयूपसमुच्छ्रयशोभिनो
वितमसा तमसासरयूतटाः ।[1]

इसी प्रकार अन्यत्र बताया गया है कि दशरथ द्वारा तमसा नदी में घड़ा भरते हुए श्रवण का वध हो गया था :—

श्रमफेनमुचां तपस्वीगाढ़ां तमसां प्राप नदीं तुरंगमेण।[2]

वाल्मीकि जी ने सीताजी से कहा कि तमसा में स्नानध्यान और पूजा उपासना आदि के द्वारा तुम्हारा मन बहल जाया करेगा बेटी—

अशून्यतीरां मुनिसन्निवेशै
स्तमोपहत्रीं तमसां वगाह्य ।
तत्सैकतोत्संगबलिक्रियाभिः
संपत्स्यते ते मनसः प्रसादः ॥[3]

वाल्मीकिरामायण में भी तमसा की चर्चा अनेकत्र हुई है[4]। भवभूति ने भी कालिदास का अनुसरण करते हुए वाल्मीकि-आश्रम की स्थिति तमसा के तट पर ही दिखाई है।

---

१. रघुवंश ९-२०

२. वही ९-७२

३. वही १४-७६

४. वाल्मीकि रामायण, बा० का० २-२ एवं अयो० का० ४६-१-१४

सरयू

तमसा के बाद जो प्रमुख नदी अयोध्या के पास बहती है, वह है—सरयू। यह आजकल घाघरा के नाम से जानी जाती है। ब्रह्मपुत्र और शतद्रु (सतलुज) के समान सरय का उद्गम भी मानस या ब्रह्मसर बताया गया है, किन्तु यह हिमालय की कुमाऊ की उत्तरी ढलान का क्षेत्र है। पर्वतीय क्षेत्र में बहने के बाद नेपाल से नीचे आने के बाद दाहिनी ओर से शारदा और बायीं ओर से राप्ती इसमें आ मिलती हैं।

कालिदास ने सरयू के उद्गम क्षेत्र से लेकर गंगा-संगम तक की विविध स्थितियों का उल्लेख रघुवंश में किया है। वे सरयू का ब्रह्मसर से वैसे ही उद्-गम मानते हैं, जैसे अव्यक्त (प्रकृति) से बुद्धि का। साथ ही यह भी कि वहाँ यक्षांगनाओं के स्तन इसमें उगे कमलों के पराग से रंजित रहते हैं :—

पयोधरैः पुण्यजनांगनानां
निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु यस्याः।
ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो
बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति ॥[१]

सरयू अयोध्यावाहिनी

सरयू की महिमा वास्तव में रघुवंशियों की राजधानी अयोध्या के निकट बहने के कारण है। तदनुसार कवि ने अयोध्या के समीप बहती सरय का कई स्थानों पर वर्णन किया है। जैसे कि—

जलानि या तीरनिखातयूपा
वहत्ययोध्यामनु राजधानीम्।
तुरंगमेधावभृथावतीर्णै
रिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि ॥[२]

माता के समान उपकारक होने के कारण सरयू को भी अवधवासी सरयू माता कहा करते हैं। कवि ने श्रीराम के मुख से यह कहलाकर कि—

यां सैकतोत्संगसुखोचितानां
पुण्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम्।
सामान्यधात्रीमिव मानसं मे
संभावयत्युत्तरकोशलानाम् ॥

---

१. रघुवंश, १३-६०
२. वही, १३-६१

सैयं मदीया जननीव तेन
मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता।
दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां
तरंगहस्तैरुपगूहतीव ॥[1]

अर्थात् मैं इस नदी का बहुत आदर करता हूं क्योंकि यह उत्तरकोशल के राजाओं की धाय है, वे सब इसी की रेत में खेल-खेल कर पलते और शीतल जल पीकर पुष्ट होते रहे हैं। महाराज दशरथ से बिछुड़ी माता के समान यह सरयू शीतल पवनयुक्त तरंगरूपी अपने हाथ उठाकर मुझे यहां विमान में बैठे हुए ही गले लगाना चाहती है।

कहकर सरयू के प्रति अवधवासियों के इसी मातृत्वभाव को व्यक्त किया है। अन्यत्र भी कवि ने सरयू की शीतल तरंगों को छूकर बहने वाली वायु के द्वारा कुश और उसके सैनिकों के स्वागत की बात कही है :—

शीतान्सरयूतरंगान्।[2]

सरयू के तट पर इक्ष्वाकु नृपतिगणों ने अनेक यज्ञ रचाए थे। स्थायी रूप से खड़े जिनके यज्ञ-स्तम्भ इन्हीं यज्ञों की सूचना दिया करते थे। "कनक-यूप" आदि रघुवंश के पूर्वोक्त श्लोकों में इसी बारे में बताया गया है। लक्ष्मण ने अपना शरीर-त्याग सरयू के तट पर ही किया था—

स गत्वा सरयूतीरं देहत्यागेन योगवित्।[4]

सरयू में पानी इतना गहरा था कि वहां नावों के घाट बने थे :—

ऋद्धापणं राजपथं स पश्यन्विगाह्यमानां सरयूं च नौभिः।[5]

गोप्रतर घाट

अयोध्या से १० कि०मी० पश्चिम में 'गुप्तार घाट' के नाम से प्रसिद्ध सरयू नदी पर गोप्रतर घाट है। इसकी चर्चा करते हुए कवि ने कहा है कि श्रीराम के वैकुण्ठ सिधार जाने के बाद जनसमूह ने यहीं स्नान किया था। उस समय यहां ऐसी भीड़ हो गयी थी, जैसी वन में चरने जाते समय गौओं के

---

१. रघुवंश, १३-६२, ६३
२. वही, १६-३६
३. वही ९-२०
४. वही, १५-९५
वही, १४-३०

वन जाते समय होती है। इसीलिए यह घाट गोप्रतर के नाम से प्रसिद्ध हो गया :—

यद्गोप्रतरकल्पोऽभूत्संमर्दस्तत्र मज्जताम्।
अतस्तदाख्यया तीर्थं पावनं भुवि पप्रथे॥[1]

सरयू-गंगा-संगम

कवि ने निम्न श्लोक में स्पष्ट रूप से इस तथ्य का प्रतिपादन किया है कि सरयू किसी अन्य नदी में न मिल कर गंगा में जाकर मिलती है :—

तीर्थे तोयव्यतिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वोर्देहत्यागाद्…।[2]

अर्थात्—महाराज अज ने गंगा और सरयू के संगम पर अपनी देह त्यागकर अपनी गणना अमरों में करवा ली।

गंगा के दायें तट से मिलने वाली नदियां

एक नर्मदा को छोड़कर मध्य क्षेत्र में बहने वाली अन्य सभी नदियाँ प्रत्यक्ष रूप से या दूसरी नदियों के साथ मिलकर अपनी जलराशि गंगा को ही समर्पित करती हैं। इनमें से चर्मण्वती, वेत्रवती, और शोण जैसी बड़ी नदियां प्रत्यक्ष रूप से गंगा या यमुना में मिलती हैं तथा अन्य नदियों का संगम इनके साथ हो जाता है। कालिदास ने दक्षिण की ओर से आकर गंगा में मिलने वाली प्रमुख नदियों की जो चर्चा स्थान-स्थान पर की है, उसी का कुछ विवेचन यहां किया जा रहा है।

चर्मण्वती-सुरभितनया

चर्मण्वती (चम्बल) का उद्गम-क्षत्र मालवा पठार में मऊ के पास विंध्याचल की जनपाव नामक पश्चिमी पर्वत-शृंखला है। अरावली की पूर्वी शृंखलाएं भी यहीं से आरम्भ हो जाती हैं। बनास नदी वहीं से आगे चलकर चम्बल में जा मिलती है। चम्बल नदी कोटा-धौलपुर के पास से बहती हुई लगभग ६०० कि०मी० लम्बा मार्ग तय कर इटावा से ४० कि०मी० पूर्व यमुना में आ मिलती है। कवि ने मेघदूत में मेघ के मार्ग में पड़ने वाली मध्य प्रदेश की नदियों के प्रसंग में चर्मण्वती का वर्णन इस प्रकार किया है—

व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रंतिदेवस्य कीर्तिम्॥[3]

---

१. रघुवंश, १५-१०१
२. वही, ८-९५
३. मेघदूत, पूर्वमेघ-४९

(हे मेघ, तुम आगे बढ़कर उस चर्मण्वती नदी का मान रखने के लिए नीचे झुक जाना, जिसके रूप में राजा रन्तिदेव की कीर्ति ही मानो प्रवाहित हो रही है।)

महाभारत के अनुसार राजा रन्तिदेव के यज्ञ में गवालम्भन के समय उनके चर्म से टपके रक्त या पसीने से हुआ था[1]।

श्रीमद्भागवत में नर्मदा और चर्मण्वती के नाम साथ-साथ लिये हैं। महाभारत में यह भी बताया गया है कि चर्मण्वती यमुना में और यमुना गंगा में जा मिलती है।[3]

वेत्रवती-बेतवा

बेतवा का उद्गम स्रोत पंचमढ़ी के पास बताया जाता है। यह मध्य प्रदेश में बहती हुई यमुना में आ मिलती है। झांसी के पास इस पर बांध-बांध कर पनबिजली का उत्पादन भी किया जाता है।

यह विदिशा के पास से बहती है, यह तथ्य कालिदास ने मेघदूत के—

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीम्।...
पास्यसि स्वादुयुक्तं सभ्रू भंगं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि।[4]

में किया है।[4]

महाभारत में भी वेत्रवती की चर्चा है।[5]

क्षिप्रा, निर्विन्ध्या, सिंधु-कालीसिन्धु और गम्भीरा

विंध्याचल से निकलकर पहले मध्य प्रदेश और उसके बाद राजस्थान और उत्तर प्रदेश में बहते हुए गंगा और यमुना से मिलने वाली चर्मण्वती, वेत्रवती, और शोण के सिवा कालिदास ने मेघदूत में उक्त चार ऐसी नदियों का भी उल्लेख किया है, जो अपनी छोटी सी यात्रा के बाद ही इन तीनों बड़ी नदियों में से किसी एक में जा समाती है। क्षिप्रा के सिवा बाकी तीन नदियां अपने आसपास के क्षेत्र में ही जानी पहचानी जाती हैं। कालिदास ने मात्र अपने क्षेत्र में ज्ञात मालव भूमि की इन चारों छोटी नदियों का वर्णन जिस

---

१. महानदी चर्मराशेरुत्क्लेदात् ससृजे यतः।
ततश्चर्मण्वतीत्येव विख्याता सा महानदी॥ —महाभा० शान्ति २९, १२३

२. सुरसानर्मदाचर्मण्वती —श्रीमद्भागवत ५-१९-१८

३. चर्मण्वत्याश्च यमुना ततो गंगा जगाम ह। —महा० भा० वन पर्व ३०८-२५-२६

४. मेघदूत पूर्वमेघ-२६

५. नदीं वेत्रवतीञ्चैव कृष्णवेणाञ्च निम्नगाम्। —महा० भा० भीष्म ९-१६

भौगोलिक तथ्य के अनुरूप किया है, केवल एक यही तथ्य उनके मालव-निवासी होने का बहुत बड़ा प्रमाण माना जा सकता है। उज्जैन जैसी राष्ट्रीय और धार्मिक महत्त्व की नगरी के साथ बहने के कारण क्षिप्रा एक छोटी सी नदी होने पर भी प्रसिद्धि की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है, इसलिए यहां पहल इसकी चर्चा की जा रही है।

क्षिप्रा

प्राचीन साहित्य में इस नदी के सिप्रा, शिप्रा और क्षिप्रा ये तीनों नाम मिलते हैं। मत्स्यपुराण में इसका क्षिप्रा[1] नाम प्रयुक्त हुआ है। जबकि कूर्म-पुराण में शिप्रा[2] नाम स्वीकार करते हुए यह भी बताया गया है कि शिप्र नामक सरोवर से निकलने के कारण हो इसे शिप्रा कहा जाता है।

मत्स्यपुराण द्वारा स्वीकृत इसका क्षिप्रा नाम इसलिए सार्थक लगता है कि यह उज्जैन के ऊपरी भाग के पठारों द्वारा बह कर क्षिप्र गति से कुल मिलाकर सौ सवा सौ मील की अपनी छोटी सी यात्रा पूरी कर चम्बल में जा मिलती है। शिप्रा वास्तव में किसी सरोवर से न निकलकर उज्जैन के ऊपरी भाग में बहने वाले छोटे मोटे कुछ बरसाती और कुछ सदाबहार जल-स्रोतों (जिन्हें मालवी भाषा में "खाल" कहते हैं) की जलराशि के एकत्रित हो जाने से उज्जैन से लगभग ५० कि०मी० दूर अपना नाम रूप धारण करती है। कालिदास ने उज्जयिनी के साथ प्रवाहित "क्षिप्रा" या शिप्रा का वर्णन रघुवंश और मेघदूत में हृदयहारी रूप में किया है। मेघदूत के :—

क्षिप्रावतः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः।[3]

तथा रघुवंश के :—

क्षिप्रातरंगानिलकम्पितासु।[4]

इन दोनों प्रसंगों में उज्जैन की शिप्रा नदी और उसकी तरंगों से शीतल पवन की चर्चा की गयी है।

निर्विन्ध्या-नेवज

गम्भीरा की भांति जैसा कि इसके निर्विन्ध्या विंध्यात् निष्क्रान्ता इति निर्विन्ध्या नाम से ही स्पष्ट है यह विंध्य श्रेणी से निकलने वाली वही नदी है,

---

१. मत्स्यपुराण, अध्याय, ११३-२७
२. कूर्म पुराण, पूर्वार्ध ४७-३९
३. मेघदूत, पूर्वार्ध-३३
४. रघुवंश, ६-३३

जो आजकल नेवज के नाम से प्रसिद्ध है। यह मालवा के पठार में वेत्रवती (बेतवा) और सिंधु (कालीसिंध) के बीच में प्रवाहित होती हुई क्षिप्रा में जा मिलती है। कालिदास ने दशार्ण प्रदेश में वेत्रवती और सिंधु के बीच में निर्विन्ध्या की स्थिति बताकर एक बार पुनः मालव क्षेत्र के अपने सूक्ष्म भौगोलिक ज्ञान का परिचय दिया है। कवि ने—

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकांचीगुणाया:
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ॥
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥[1]

अर्थात्—हे मेघ, विदिशा से उज्जयिनी की ओर बढ़ते हुए तुम मार्ग में कुछ नीचे झुककर निर्विध्या (नेवज) नदी का भी रसास्वादन कर लेना जिसकी लहरों पर चहचहाती पंक्षियों की कतार ही उसकी कांची या कमर की कर धनी सी दिखाई दे रही होगी। निर्विन्ध्या का बीच-बीच में रुके हुए प्रवाह में एकत्रित जल उसकी नाभि के जैसा लगा रहा होगा, क्योंकि रमणियां अपने हाव-भाव दिखाकर ही अपने प्रेमियों को अपना बना लेती है। में निर्विन्ध्या का बड़ा ही सरस चित्र अंकित किया।

सिन्धु-काली सिन्ध

काली सिन्ध के नाम से प्रसिद्ध यह नदी मालवा के बग्धी नामक स्थान से निकलकर महीदपुर के पास शिप्रा में जा मिलती है। कालिदास ने निर्विन्ध्या के बाद सिन्धु की चर्चा करके अपने भौगोलिक ज्ञान की यथार्थता प्रदर्शित की है—

वेणीभूतप्रतनुसलिलासावतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छायातटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः ।[2]

अर्थात् —देखो, सिन्धु नदी की धारा तुम्हारे बिछोह में चोटी के समान पतली हो गयी होगी और तीर के वृक्षों के पीले पत्ते झड़-झड़ कर गिरने से उसका रंग भी पीला पड़ गया होगा।

यहां कवि ने सिन्धु की कृशता की चर्चा करते हुए यह भौगोलिक तथ्य भी स्पष्ट शब्दों में बता दिया है कि कृश या एक बहुत छोटी सी नदी होते हुए भी उस का वासी होने के नाते कवि को इसका वर्णन अभीष्ट है।

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ-३०
२. मेघदूत, पूर्वमेघ-३१

गम्भीरा

क्षिप्रा का वर्णन करने के बाद कवि कहता है—

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्माऽपि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।

इन्दौर के पास से अपना नाम-रूप ग्रहण करती तथा उसके लिए पेय जल पूर्ति का साधन बनती यह कुनदिका महीदपुर के कुछ ऊपर बायीं ओर से क्षिप्रा में आ मिलती है।

नर्मदा

यह विन्ध्याचल के अमरकंटक से निकलकर मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा गुजरात को सींचती हुई अपरान्त महोदधि में जा मिलती है।

कालिदास का यक्ष मेघ से कहता है कि रामगिरि (रामटेक या अन्यत्र) से उत्तर की ओर आगे बढ़ने पर सर्वप्रथम नर्मदा मार्ग में मिलती है।

रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम् ।[1]

इसी प्रकार इन्दुमती-स्वयंवर के प्रसंग में :— **स नर्मदारोधसि**"[2] आदि श्लोक में कवि ने अज की सेनाओं को नर्मदा नदी के तट पर पड़ाव डाले बताया है।

मन्दाकिनी-२

कवि ने चित्रकूट के साथ प्रवाहित मन्दाकिनी की चर्चा:—

मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे
मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः ।[3]

इत्यादि में की है। कैलाश के नीचे प्रवाहित तथा कवि द्वारा चर्चित मन्दाकिनी-१ का विवेचन पहले हो चुका है।[4]

मध्यक्षेत्र के वन, वृक्ष, कृषि व खनिज उपज

कालिदास ने मध्य क्षेत्र में पाए जाने वाले वन, वृक्ष लताओं एवं विविध वानस्पतिक पदार्थों की यत्र-तत्र भौगोलिक तथ्यपरक जानकारी दी है। कवि ने रघुवंश में कई ऐसे वनों तथा उनमें पाए जाने वाले नानाविधि वृक्षों और जीव-जन्तुओं का वर्णन किया है। इनमें तमसा के आस-पास

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ-२०
२. रघुवंश, ६-४२
३. वही, १३-४८
४. देखिये पृष्ठ, १४२

महाराज दशरथ के शिकार के लिए वन में जाने पर वन-देवता भी उनके दर्शन के लिए वहां पहुंचते थे। कवि ने कहा है—

ददृशुरध्वनि तं वनदेवता:
सुनयनं नयनन्दितकोशलम्।[1]

इस वन में विचरने वाले हरिणों के साथ ही यह वन सिंहादि अन्य हिंस्र जन्तुओं से भरा पड़ा था। वन में कहीं जंगली सूअरों द्वारा अधखाया मोथा पड़ा था—

उत्तस्थुषः सपदि पल्वलपंकमध्या
न्मुस्ताप्ररोहकवलावयवानुकीर्णम्।
जग्राह स द्रुतवराहकुलस्य मार्गं
सुव्यक्तमार्द्रपदपंक्तिभिरायताभिः ॥[2]

तो कहीं जंगली भैंसे कछारों में विचर रहे थे—

तेनाभिघातरभसस्य विकृष्य पत्री
वन्यस्य नेत्रविवरे महिषस्य मुक्तः।[3]

और उधर एक तरफ गेंडे विचर रहे थे—

प्रायो विषाणपरिमोक्षलघूत्तमांगान्
खड्गांश्चकार नृपतिर्निशितैः क्षुरप्रैः।[4]

दशरथ ने गहन वनों की झाड़ियों में छिपे और सोए-पड़े सिंहों को अपने धनुष की टंकार से पहले जगाया और फिर उनके शिकार के लिए आगे बढ़े—

निर्घातोग्रैः कुंजलीनांजिघांसु
र्ज्यानिर्घोषैः क्षोभयामास सिंहान्।
नूनं तेषामभ्यसूयापरोऽभूद्
वीर्योदग्रे राजशब्दे मृगेषु ॥[5]

इसी प्रकार कवि ने तमसा के जंगल और उनमें विचरने वाले जंगली हाथियों और अन्य जीवों का वर्णन काव्यात्मक किन्तु स्वाभाविक शैली में किया है।

---

१. रघुवंश, ९-५२
२. वही, ९-५९
३. वही, ९-६१
४. वही, ९-६२ (यहां चतुर्वेदी जी ने खड्ग गेंडे को 'बारहसिंहा' बना दिया)।
५. रघुवंश, ९-६४

उक्त वर्णन को पढ़ते हुए स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि कालिदास ने हिमालय की तराई में पाए जाने वाले घने जंगलों का मानों जीता-जागता चित्र ही खींच दिया है और उन्हीं जंगली जीवों का वर्णन किया है, जो आज भी उस क्षेत्र में प्रायः वैसे हो विचरते हुए पाये जाते हैं।

चित्रकूट-वन

तमसा के आसपास के इस गहन वन का भौगोलिक तथ्यों से भरपूर यह चित्र अंकित करने के बाद कवि ने चित्रकूट के समीपवर्ती वन का वर्णन भी उसी सरसता के साथ किया है और कहा है कि यद्यपि यह वन भी सिंह आदि हिंस्र जीव-जन्तुओं से भरा हुआ है, फिर भी महर्षि अत्रि और उनकी पत्नी अनसूया के तप के प्रभाव से उन हिंसक जन्तुओं ने पारस्परिक वैरभाव का परित्याग कर दिया है। इस वन के वृक्ष भी समाधिस्थ से दिखाई देते हैं—

चित्रकूटवनस्थं च कथिता स्वर्गतिर्गुरोः।[1]

और—

अनिग्रहत्रासविनीतसत्व—
मपुष्पलिंगात्फलबंधिवृक्षम्।[2]

तथा—

निवातनिष्कम्पतया विभान्ति—
योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि।[3]

अम्रकूट-वन

अपने नाम के अनुरूप बिन्ध्याचल पर्वत-शृंखला का आम्रकूट वन आम के वृक्षों से भरा हुआ था। कवि ने बताया है कि आम्रकूट पर्वत पर उगे घने जंगलों की गर्मी को वर्षा की झड़ियां शान्त कर देती हैं :—

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः।[4]

अन्यत्र यह बताया गया है कि आम्रकूट की 'अमराइयां' ज्येष्ठ-आषाढ़ के दिनों में पके हुए आमों से लद जाती हैं। उन दिनों पके हुए पीले-पीले आमों

१. वहीं, १२-१५
२. वही, १३-५०
३. वही, १३-५२
४. मेघदूत, पूर्वमेघ-१७

से लदकर चारों ओर से पीला किन्तु कहीं बीच में बादल का टुकड़ा आ जाने से मध्य में सांवला आम्रकूट वन ऐसा दिखाई देता है, मानो चारों ओर से पीला गौरवर्ण किन्तु बीच में सांवला यह धरती का उठा हुआ स्तन हो—

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै —
स्त्वय्यारुढ़े शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवःशेषविस्तारपाण्डुः ॥[१]

देवगिरि के वन

कवि ने देवगिरि के उन वनों का भी उल्लेख किया है, जहां गूलर के वृक्ष बहुतायत से पाए जाते थे :—

काननोदुम्बराणाम् ।[२]

दण्डकवन

चित्रकूट पास ही बुन्देलखण्ड के दक्षिणी भाग की विंध्याचल शृखलाओं से आरम्भ होकर यह वन गोदावरी के दक्षिण तक फैला हुआ था। वाल्मीकि रामायण में श्रीराम के दण्डक वन में प्रवेश का उल्लेख है।[३] महाभारत में दण्डक जनपद पर सहदेव की विजय की चर्चा है।[४]

कालिदास ने रघुवंश के—

स सीतालक्ष्मणसखः सत्याद्गुरुमलोपयन् ।
विवेश दण्डकारण्यं प्रत्येकं च सतां मनः ॥[५]

आदि श्लोक में दण्डकारण्य का उल्लेख किया है। चतुर्दश सर्ग में कवि कहता है कि भगवान् राम और भगवती सीता अपने भवनों में इस प्रकार सुखोपभोग कर रहे थे कि उनकी दीवारों पर अंकित अपने वनवास के चित्रों को देखकर दण्डकवन के दुःखों का स्मरण आने पर भी उन्हें सुख ही

---

१. वही, मेघदूत १८

२. वहीं, ८६

३. प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान् ।
रामो ददर्श दुर्धर्षं तापसाश्रममण्डलम् ॥
वा० रा० अरण्य का० १-१

४. वशे चक्रे महातेजा दण्दकाश्च महाबलः ।
—महा० भा० सभा-पर्व ३१-६६

५. रघुवंश १२-९

मिलता था—

तयोर्यथाप्रार्थितमिन्द्रियार्थानासदुषो सद्मसु चित्रवत्सु ।
प्राप्तानि दुःखान्यपि दण्डकेषु सञ्चित्यमानानि सुखान्यभूवन् ॥[1]

विन्ध्याचल के वन

कालिदास ने विन्ध्याचल में पाए जाने वाले गहन वनों का वर्णन भी यथास्थान किया है। रघुवंश में कहा गया है कि कुशावती को वापिस लौटते हुए कुश की सेना विंध्य के वनों में रास्ता भूल गई थी—

मार्गैषिणी सा कटकान्तरेषु वैन्ध्येषु सेना बहुधा विभिन्ना ।[2]

मालविकाग्निमित्र में बताया गया है कि विदर्भ से विदिश आते हुए व्यापारियों के सार्थवाह (काफिले) को विंध्यवनों में से होकर गुजरना पड़ा था, जहां उसे डाकुओं ने लूट लिया—

परिव्राजिका—स चाटव्यन्तरे निविष्टो गताध्वा वणिग्जनः ।[3]

विंध्याचल के वनों का एक चित्र अंकित करते हुए कहा गया है कि नई कोपलों से सुशोभित वृक्षों से लदे विन्ध्यवन किसका मन नहीं लुभा लेते—

वनानि वैन्ध्यानि हरन्ति मानसं विभूषितान्युद्गतपल्लवैर्द्रुमैः ।[4]

नैमिषारण्य

उत्तर प्रदेश के सीतापुर जिले का वर्तमान 'नीमसा' ही प्राचीन नैमिषारण्य है। यह लखनऊ से ७० कि० मी० पश्चिमोत्तर में गोमती नदी के तट पर स्थित है। सीतापुर से ३० कि० मी० तथा सण्डीले से ३६ कि० मी० पर उत्तर रेलवे का नैमिषारण्य स्टेशन है। यहां कई प्राचीन सरोवर, यज्ञ-स्थल तथा मन्दिर आदि हैं। स्टेशन से दो किलोमीटर पर चक्रतीर्थ नामक एक गोलाकार सरोवर है। इससे जल सदा बाहर निकलता रहता है। इसके तट पर भूतनाथ महादेव का मन्दिर हे।

कालिदास ने कहा है कि महाराज सुदर्शन 'अग्निवर्ण' का राज्याभिषेक कर स्वयं नैमिषारण्य में रहने लगे :—

शिश्रिये श्रुतवतामपश्चिमः वयसि नैमिषं वशी ।[5]

---

१. रघुवंश, १२-६१, ४-२५
२. वही, १६-३१
३. मालविकाग्निमित्र, ५-६
४. ऋतुसंहार, २-८
५. रघुवंश, १६-३

साथ ही यह भी कहा है कि वहां तीर्थ-चक्रतीर्थ-और गोमती के घाटों पर स्नान करते हुए वे अयोध्या की बावड़ियों को भूल गए—

तत्र तीर्थसलिलेन दीर्घिकाः[1]

महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने अपने महाभारत का श्रीगणेश ही कुलपति शौनक के द्वारा नैमिषारण्य में किए जा रहे द्वादश वार्षिक सत्र में सौति तथा ऋषि मुनियों के मध्य वार्तालाप से किया है।[2] व्यास जी ने १८ पुराण तथा उप पुराणो की रचना भी नैमिषारण्य में ही की थी।
विक्रमोर्वशीय में पुरुरवा कहते हैं कि—वे नैमिषेय सत्र के सिवा उर्वशी से कभी अलग नहीं रहे—

अन्यत्र नैमिषेयसत्रादवियुक्तोऽहमुर्वश्या ।[3]

मध्यक्षेत्र के उपवन

उपवन वास्तव में भारतीत जन-जीवन का आवश्यक व अपरिहार्य अंग माना जाता था। आश्रमों तथा नगरों के पास राजमहलों तथा जन-साधारण के घरों में भी बाग-बगीचे या उपवन लगाने का रिवाज था। अमरकोष में अनेक प्रकार के उपवनों के अलग-अलग नाम बताए गए हैं। जैसे —घरेलू बगीचों का 'निष्कुट', सार्वजनिक उपवनों को 'आराम', मन्त्रिगण तथा वैश्यों के बगीचों को 'वृक्षवाटिका' राजकीय उपवन को 'आक्रीड़' और 'उद्यान' तथा रणवास या अन्तपुर के उपवन को 'उपवन' कहा जाता था।[4]

कालिदास के तीनों नाटकों में हस्तिनापुर, प्रतिष्ठान तथा विदिशा के राजमहलों के अन्तःपुर में बने 'प्रमदवनों' का वर्णन है।

उज्जयिनी के उपवनों की चर्चा मेघदूत के—

धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिः[5]

---

१. रघुवंश, १६-२
२. सौतिः पौराणिको नैमिषारण्ये
शौनकस्य कुलपतेः द्वादशवार्षिक सत्रे ।
—महाभारत, १-१-१
३. विक्रमोर्वशीय, ५-७
४. अमरकोष, २,१-३
५. मेघदूत, पूर्वमेघ-३७

में तथा रघुवंश के—

क्षिप्रातरंगानिलकम्पितासु
विहर्तुमुद्यानपरम्परासु ।[1]

आदि पद्य में हुई है।

मथुरा का उपवन-वृन्दावन

यमुना के पार बसा हुआ श्री कृष्ण के समय का वृन्दावन नगर या ग्राम तो कालिदास के समय से पूर्व ही नामशेष रह गया होगा, किन्तु मथुरा के निकट वृन्दावन नामक उपवन अवश्य तब भी रहा होगा। कालिदास ने—

वृन्दावने चैत्ररथादनूने[2]

आदि पद्य में कहा है कि शूरसेनाधिप के साथ विवाह कर लेने पर इन्दुमती मथुरा के निकटवर्ती 'वृन्दावन' नामक उस उपवन में विहार किया करेगी जो कुबेर के 'चैत्ररथ' उपवन से किसी प्रकार कम नहीं है। यहां स्पष्टतः 'वृन्दावन' को ग्राम, नगर या तीर्थ के रूप में न दिखा कर 'उपवन' ही बताया गया है।

आश्रमों के उपवन

नगरों के समीप उपवनों के साथ कवि ने कण्व जैसे ऋषि मुनियों के आश्रमों के आसपास भी उपवनों का वर्णन किया है। यहां तक कि राजा इन उपवनों के वृक्षों पर फल-फूल लगने और न लगने का निमित्त भी अपने भले बुरे कामों को माना करता था। आश्रमवासी इन उपवनों के वृक्षों की अपनी सन्तान की भांति देखभाल किया करते थे। कवि कहता है—

……संवर्धितानां सुतनिर्विशेषम् ।
……श्रमच्छिदामाश्रमपादपानाम् ॥[3]

इन उपवनों में फल-पुष्प तथा छाया देने वाले व अन्य उपयोगी वृक्षों का रोपण, पालन-पोषण भली-भांति किया जाता था।

अयोध्या के उपवन

कालिदास ने अयोध्या के उपवनों की अनेकत्र चर्चा की है। अज

---

१. रघुवंश, ६-३६
३. वही, ६-५०
२. वही, ५-६

इन्दुमती के साथ नगरोपवन में विहार कर रहे थे—

सह देव्या विजहार सुप्रजा
नगरोपवने शचीसखो ।।[1]

अन्यत्र अयोध्या के निकटवर्ती उपवनों की लताओं को सुन्दरियों के रूप में प्रस्तुत किया गया है—

उपवनान्तलताः पवनाहतैः
किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः ।।[2]

लंका से लौटने पर श्रीराम नगर में प्रवेश करने से पूर्व अयोध्या के उपवनों में शत्रुघ्न के द्वारा लगवाए गए उपकार्या—छोलदारियों या खेमों में ठहरे थे :—

साकेतोपवनमुदारमध्युवास ।[3]

कुश के अयोध्या को छोड़कर चले जाने के बाद अयोध्या के उपवनों की दुर्दशा के बारे में वर्णन करके अयोध्या की अधिष्टातृ देवता ने बताया:—

क्लिश्यन्त उद्यानलता मदीयाः ।[4]

इस प्रकार कवि ने अयोध्या के उपवनों की अनेकत्र चर्चा की गई है।

महाराज अतिथि के राज्य में व्यापारी-सार्थ वनों में भी उपवनों की भांति निःशंक विचरते थे:—

वनेषूपवनेष्विव[5]

उपवनों की सिंचाई

कवि ने यह भी बताया है कि इन उपवनों की सिंचाई कुल्या-छोटी-छोटी नहरों के द्वारा होती थी—

कुल्येवोद्यानपादपान्[6]

साथ ही उद्यान के मालियों और उद्यानपालिका का वर्णन भी मालविकाग्निमित्र में तथा अन्यत्र हुआ है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि उपवनों की उपयोगिता और महत्ता

---

१. रघुवंश, ८-३२
२. वही, ९-३५
३. रघुवंश, १३-७९
४. वही, १६-१९
५. वही, १७-६४
६. वही, १२-३०

को कवि ने भली-भांति व्यक्त करते हुए अपने काव्य नाटकों में उपवन सामान्य तथा ऋषि-मुनियों के आश्रमों के आसपास के उपवनों के साथ ही उज्जयिनी, विदिशा, मथुरा, हस्तिनापुर, प्रतिष्ठान, एवं अयोध्या के उपवनों तथा प्रमदवनों का संक्षिप्त तथा विस्तृत दोनों रूपों में वर्णन किया है।

कालिदास-चर्चित मध्यक्षेत्रीय वृक्ष-लता, कृषि उपज

कालिदास ने वृक्ष-लता आदि प्राकृतिक जगत का वर्णन करते हुए इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि जो वृक्ष-लताएँ तथा अन्य वनस्पतियाँ जिस क्षेत्र तथा ऋतु-विशेष में पाए जाते हैं, उनका तदनुकूल परिस्थितियों में ही चित्रांकन किया जाय।

कवि वृक्षों का वर्णन करते हुए उनकी विशेषता दो एक शब्दों में ही इस प्रकार व्यक्त कर देता है कि उसका चित्र चिरस्मरणीय बन जाता है। उदाहरण के लिए 'प्लक्ष' या पाकर के वृक्ष को देखते तो सभी हैं, किन्तु उसकी प्रमुख विशेषता को कालिदास ने जिस खूबी से व्यक्त कर दिया है, वह देखते ही बनती है—

प्लक्षान्प्ररोहजटिलानिव मन्त्रिवृद्धान्।[1]

यही बात बड़, जामुन, आम, गूलर आदि मध्य क्षेत्र में पाए जाने वाले अन्य वृक्षों के बारे में भी कही जा सकती है।

मध्यक्षेत्र के कालिदास द्वारा वर्णित वृक्षों की अधिकता को देखते हुए उन्हें, फलदार वृक्ष, शोभाकर या पुष्पित वृक्ष तथा छायादार वृक्ष इन तीन प्रमुख वर्गों में बाँट कर उनसे सम्बद्ध विवेचन किया जा रहा है।

फलदार वृक्ष

आम

आम, अशोक, जामुन, प्लक्ष, उदम्बर तथा अश्वत्थ और वट के पत्रों को मिला कर "सप्त पल्लव" बन जाते हैं। मांगलिक तथा पवित्र कार्यों में जिन पल्लवों के रुद्र कलश पर पस्लवों वन्दनवारों तथा से शोभा बढ़ाई जाती है, ये पाँचों वृक्ष भारतभूमि और उसकी चिरन्तन सांस्कृतिक परम्परा के परिचायक, प्रतीक और प्रतिनिधि हैं। इनमें से आम को राष्ट्रीय फल और अशोक को राष्ट्रीय वृक्ष भी कह दिया जाय तो अत्युक्ति न होगी। तदनुसार कालिदास ने भी आम का अपनी प्रत्येक रचना में वर्णन किया है। बौरों और

---

१. रघुवंश, १३-७१

फलों से लदकर आम सभी को अपनी ओर आकृष्ट करता है—

फलेन सहकारस्य पुष्पोद्गम इव प्रजाः।[1]

में बौराये तथा फल से लदे आम की दोनों स्थितियों का चित्र एक ही साथ अंकित कर दिया है। अभिज्ञानशाकुन्तल में महर्षि कण्व के आश्रम में उगे हुए अपने बच्चों के समान पाले जा रहे अन्य वृक्षों के साथ आम के पौधों का भी उल्लेख किया गया है—

क इदानी सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते।[2]

अतिमुक्त लता के भार को सहकार—कलमी आम—के सिवा और कौन सह सकता है।

अन्यत्र अनसूया कहती है कि इस आम की शाखा में लटकते हुए नारियल में मैंने बकुल की माला रखी है—

तेन ह्येतस्मिंश्चूतशाखावलम्बिते नारिकेलसमुद्गके एतन्निमित्तमेव कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका।[3]

एक स्थान पर कण्व ऋषि दुष्यन्त के साथ शकुन्तला के मिलन को ऐसा बताते हैं जैसे नवमालिका ने आम का सहारा ले लिया हो—

चूतेन संश्रितवती नवमालिकेय—

मस्यामहं त्वयि च संप्रति वीतचिन्तः।[4]

कालिदास को आम इतना प्रिय है कि मपे-तुले शब्दों में सब बात कह देने वाले इस कवि ने अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में आम के बारे में फिजूलखर्ची करने में कोई संकोच नहीं किया। छठे अंक के आरम्भ में पहले दो सखियाँ और फिर कंचुकी की बातचीत आम को लेकर ही चली है:—

प्रथमा—आताम्रहरितपाण्डुर जीवितसर्वस्वं वसन्तमासस्य।
दृष्टोऽसि चूतकोरक ऋतुमंगल त्वां प्रसादयामि॥[5]

में आम के बौर के भौतिक स्वरूप के साथ सांस्कृतिक महत्त्व का सजीव चित्र उपस्थित किया गया है। इसी प्रकार—

इषद्बद्धरजः कणाग्रकपिशा चूते नवा मंजरी
मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सा मध्ये मधुश्री स्थिता॥[6]

---

१. रघुवंश, ४-९ २. अभि० शाकु०, ३-१० के आगे गद्य
३. वही ४-४ के आगे
४. वही, ४-१३
५. अभिज्ञानशाकुन्तल, ६-२
६. विक्रमोर्वशीय, २-७

आदि पद्य में भी आम के बौर के गुच्छे का सही चित्र खींचा गया है।

अंगे चूतप्रसवसुरभिर्दीक्षणो मारुतो मे
सान्द्रस्पर्शः करतल इव व्यापृतो माधवेन।[1]

में बताया गया है कि आम के बौरों की सुगन्धि से आसपास का वातावरण भी महक उठता है।

आकम्पितानि हृदयानि मनस्वनीनां
वासैः प्रफुल्लसहकारकृताधिवासैः।[2]

आदि के द्वारा बताया गया है कि आम के बौरों की मादक गंध पर मस्त होकर कोयल कैसे कूकने लगती है।

कुमारसंभव में कवि ने—

चूतांकुरास्वादकषायकण्ठः पुंस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज।[3]

कोयल और आम के बौर की जोड़ी का वर्णन किया है।

जैसा कि ऊपर आम्रकूट वन के प्रसंग में स्पष्ट किया जा चुका है कवि ने पीले-पके आमों से लदी अमराइयों का जो चित्र खींचा है, वह संस्कृत साहित्य में ही क्यों सम्पूर्ण विश्वसाहित्य में भी बेजोड़ माना जा सकता है—

मध्ये श्यामस्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः।

और **चूतप्रवालोष्ठमलंकार।**[4]

में ललाई लिए हुए आम के इन बौरों को प्रकृति सुन्दरी के लाल होंठ बता कर कवि ने प्रकृति के मानवीकरण का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

सहकार

यद्यपि सहकार आम का ही पर्याय माना जाता है, किन्तु जैसा कि यह शब्द स्वयं बताता है कि 'सहकार' साधारण न होकर विशिष्ट जाति का आम है, जिसे कलम लगाकर तैयार किया जाता है। कलम लगाकर तैयार किये गये आम के पौधे उद्यानों, उपवनों या तपोवनों में मिलते हैं जबकि जंगलों में साधारण आम उगते हैं। कवि ने साधारण आम और सहकार के इस भेद को सदा ध्यान में रखा है और सहकार शब्द का प्रयोग केवल बाग-बगीचों के

---

१. मालविकाग्निमित्र, ३-४
२. ऋतुसंहार, ६-३४
३. कुमारसम्भव, ३-३२
४. वही, ६-३०

प्रसंग में ही किया है, जैसे कि—

उपवनसहकारैर्दर्शितेष्वंकुरेषु ।[1]

जामुन

कालिदास ने जहां ग्रीष्मऋतु में पीले पके हुए फलों से लदे आमों की चर्चा की है, वहाँ साथ ही कहा है कि उन्ही दिनों पके हुए जामुनों से लदे होने के कारण दशार्ण या मालव का सारा वन-प्रदेश काला-सा दिखाई देने लगा—

त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः ।[2]

इसी प्रकार अन्यत्र कहा गया है कि नर्मदा के दोनों तटों पर जामुन वृक्षों के जंगल भरे पड़े हैं—

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि
र्जम्बुकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादायगच्छेः ।[3]

कालिदास ने राजजम्बू या बड़े जामुन की चर्चा करते हुए कहा है—

फलमभिमुखपाकं राजजम्बूद्रुमस्य ।[4]

खिरनी

खिरनी को संस्कृत में 'राजादान' भी कहते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल में कवि ने शकुन्तला को विदा करते हुए कण्व ऋषि आदि को जिस क्षीर वृक्ष की छाया में सुस्ताने की बात कही है, वह खिरनी का पेड़ ही है :—

कण्व—तेनहीमां क्षीरवृक्षच्छायामाश्रयामः ।[5]

उदुम्बर

आषाढ़-सावन में फलने-फूलने वाले आम, जामुन और कदम्ब के साथ ही गूलर की भी गणना की जा सकती है। गूलर की शाखाएँ भी इन दिनों अपने लाल-लाल दहकते सुकोमल फलों से लद जाती हैं। कवि ने—

शीतोवायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ।[6]

में बरसाती हवा से गूलर के फलों के पक जाने की बात कही है।

---

१. विक्रमोर्वशीय, २-७
२. मेघदूत, पूर्वमेघ—२५
३. वही, २५
४. विक्रमोर्वशीय ४-२७
५. अभिज्ञानशाकुन्तल, ४-१५
६. मेघदूत, पूर्वमेध—४६

तितड़ी (इमली) और खजूर

मध्य और दक्षिण क्षेत्रों विशेषत: पठारों में पाए जाने वाले फलदार वृक्षों में इमली के पेड़ का भी अपना विशेष स्थान है। कालिदास ने इसकी चर्चा भी एक स्थान पर की है

यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरुद्वेजितस्य तिन्तिण्यामभिलाषो भवेत् ।[1]

में खट्टी इमली के विपरीत पिण्डखजूर का उल्लेख बढ़िया मेवे के रूप किया गया है।

रघुवंश के—

खर्जूरीस्कन्धनद्धानां मदोद्गारसुगन्धिषु ।[2]

में भी खजूर के वृक्ष की चर्चा की गई है।

कदली-केला

कवि ने केले का वर्णन प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों रूपों में किया है। जैसे कि अलकापुरी के निकटवर्ती छोटी सी पहाड़ी को केलों से घिरा हुआ बताया गया है—

क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः ।[3]

श्री राम ने रावण के सिरों को केले की भांति अनायास ही काट डाला— **चिच्छेद कदलीसुखम् ।**[4]

यक्ष ने अपनी प्रियतमा के उरुओं को केले के स्तम्भ के समान गोरे बताया है—

कदलीस्तम्भगौरः ।[5]

बीजपूर-बिजोरा नीबू

कवि ने मालविकाग्निमित्र नाटक में 'बीजपूर' की चर्चा की है। समाहितिका कहती है कि मुझे महाराज के उपवन में से 'बीजपूर' लाने के लिए भेजा गया है—

देवस्योपवनस्थं बीजपूरकं गृहीत्वागच्छ ।[6]

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल, २-८ के आगे गद्य

२. रघुवंश, ४-५७

३. मेघदूत, उत्तरमेघ-१७

४. रघुवंश, १२-९६

५. मेघदूत, उत्तरमेघ-३८

६. मालविकाग्निमित्र,-३ समाहतिका की प्रथम उक्ति।

मधूक-महुआ

वसन्त में खिलकर अपने छोटे-छोटे पीत-शुभ्र पुष्पों से वातावरण को महका देने वाले महुए की शोभा भी दर्शनीय है। इस वृक्ष की प्रमुख विशेषता यह है कि अपने मधुर स्वाद के कारण इसका फल नहीं अपितु फूल ही खाया जाता है और सूखे फूलों से भी शराब बनती है। महुए के सूखे फलों से तेल निकाला जाता है। यह गाढ़ा सा तेल साबुन बनाने के काम आता है। कवि ने—

दूर्वावता पाण्डुमधूकदाम्ना।[1]

में यह बताया है कि उस युग की सन्दरियाँ महुए के फूलों के गजरे से अपने जुड़े को सजाया करती थीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने मध्यक्षेत्र के आम, जामुन, केला और खिरनी जैसे अनेक फलदार वृक्षों की चर्चा अपने काव्यनाटकों में यथा-स्थान की है।

पुष्पित पादप-लतागुल्म

कालिदास द्वारा निर्दिष्ट पुष्पित पुष्पलताओं की सूची बड़ी लम्बी है। यहाँ वसन्त से शिशिर ऋतु तक खिलने वाले पुष्पित वृक्ष लताओं का विवेचन क्रमश: किया जा रहा है।

किंशुक-टेसू

वसन्त के आगमन के साथ ही किंशुक, टेसू या पलाश का वृक्ष अपने ललछोंहे टेढ़ी आकृति के फूलों से लद जाता है। कवि ने वसन्त आगमन का सूचक किंशुक को बताया है—

उपहितं शिशिरापगमश्रिया
मुकुलजालमशोभत किंशुके।[2]

अशोक

भारतीय वानस्पतिक सम्पदा में अशोक सिरमौर माना जाता है। कवि समयख्याति में कहा गया है कि वसन्त के आरम्भ में सुन्दरियों के पाद-प्रहार से अशोक खिलता है। इसीलिए वसन्त में अशोकोत्सव भी मनाया

१. कुमारसंभव, ७-१४
२. रघुवंश, ९-३१

जाया करता था। यहाँ सुन्दरियाँ अशोक को अपने मृदुल पादाघात से कृतार्थ किया करती थी।

मालविकाग्निमित्र के—

नवकिसलयरागेणाग्रपादेन बाला।[१]

आदि श्लोक में अशोक दोहद का वृतान्त उपस्थित किया गया है। अन्यत्र अशोक के रक्तिम पुष्पगुच्छ को सुन्दरियों के ललाई लिए हुए होठ से भी अधिक सुन्दर बताया है—

रक्ताशोकरुचा विशेषितगुणो बिम्बाधरालक्तकः।[२]

अशोक के इसी रक्तिम पुष्प को लताका सुन्दर स्तन भी बताया गया है।

इमां तटाशोकलतां च तन्वीं स्तनाभिरामस्तवकाभिनम्राम्।[३]

तथा मेघदूत के— **रक्ताशोकश्चलकिसलयः।**[४]

आदि श्लोक में भी कहा है कि चंचल पत्तों वाला रक्ताशोक यक्ष की प्रियतमा के बायें पाँव से ठुकराये जाने के लिए लालायित है।

आमूलतो विद्रुमरागताम्रं

सपल्लवाः पुष्पचयं दधानाः।[५]

में अशोक के विद्रुम के समान लाल,पुष्पगुच्छ का चित्र अंकित किया गया है।

अनन्तराशोकलताप्रबालं प्राप्येव चूतः प्रतिपल्लवेन।[६]

आदि में कवि के इस कथन से ज्ञात होता है कि आम के वृक्ष में अशोक की कलम भी लगाई जाती थी।

तिलक पुष्प

कवि ने रघुवंश के—

शदृशकान्तिरलक्ष्यत मंजरी तिलकजालकजालकमौक्तिकैः।[७]

---

१. मालविकाग्निमित्र, ३-१२

२. वही ३-५

३. रघुवंश, १३-३२

४. मेघदूत, उत्तरमेघ-१८

५. ऋतुसंहार, ६-१८

६. रघुवंश ७-२१,

७. रघुवंश, ९-४४

और—

न खलु शोभयति स्म वनस्थलीं
न तिलकतिलकः प्रमदामिव ।[1]

में मञ्जरियों से लदे तिलक का चित्रण दर्शनीय है ।

शाल्मली-सेमल

सेमल का वृक्ष अपनी विशालता और वसन्त तथा ग्रीष्म में खिलने वाले कटोरेनुमा लाल रंग के मोटे-मोटे फूलों से अनायास ही पहचाना जाता है।

बहुतर इव जातः शाल्मलीनां वनेषु
स्फुरतिकनकगौरः कोटरेषु द्रुमाणाम् ॥[2]

में कवि ने यह कहकर कि दावाग्नि की लपटें सेमल के लाल फूलों के कारण और ज्यादा फैली हुई दिखती हैं, सेमल और उसके लाल फूलों का सही चित्र खींचा है।

शिरीष

अपनी लम्बी-लम्बी पीली केसर वाले चंवरनुमा फूलों की सर्वतो-विसारिणी मधुर-मादक महक से शिरीष का वृक्ष गर्मियों की रातों को अत्यन्त सुखदायक बना देता है। कवि ने शिरीष के इस महत्त्व को यथोचित रूप से स्वीकार करते हुए अभिज्ञानशाकुन्तल की प्रस्तावना में इसी को ग्रीष्म का प्रमुख प्रतिनिधि माना है :—

ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकमारतरकेसरशिखानि ।
अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि ॥[3]

के द्वारा शिरीष और उसके पुष्प के इसी वैशिष्ठ्य को चित्रित किया है। कवि ने—

पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः ।[4]

में शिरीष पुष्प की सुकोमलता स्पष्ट रूप से दर्शायी है। सुकुमारता के लिए शिरीष की उपमा सदा ही दी जाती रही है।

बद्धं कर्णशिरीषरोधिवदने घर्माम्भसां जालकम् ।[5]

---

१. वही, ६-४१
२. ऋतुसंहार, १-२६
३. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-४
४. कुमारसम्भव, ५-४
५. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-२८

में भी सुन्दरियों के द्वारा शिरीषपुष्पों को कर्णफूल की भाँति पहनने की बात कही गई है।

पाटलि

अमरकोश में कुछ सफेदी लिये हुए लाल अर्थात् गुलाबी रंग को 'पाटल' वर्ण कहा गया हैं।[1] तदनुसार आजकल गुलाब को 'पाटल' कहा जाता है। किन्तु गुलाब भारतीय पुष्प नहीं है। यह ईरान से सम्भवतः नूरजहाँ के समय में भारत लाया गया था। संस्कृत साहित्य में जिस पाटल या पाटलि पुष्प का उल्लेख मिलता है, वह गुलाब न होकर कोई अन्य पुष्प है। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल की प्रस्तावना में ग्रीष्मऋतु के वातावरण को—

पाटलसंसर्गिसुरभिवनवाताः ।[2]

के द्वारा पाटलपुष्पों की सुगंधि से सुरभित बताया है।

इससे ज्ञात होता है कि पाटल निश्चित ही ग्रीष्म में खिलने वाला सुगन्धित पुष्प पादप है। और वह किंशुक नहीं हैं क्योंकि किंशुक निर्गंध होता है।

जैसा कि कहा गया है—

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः ।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ।।

इसके विपरीत कवि पाटल को सुगन्धित पुष्प बता रहा है।

नवमल्लिका

नवमल्लिका की चर्चा कवि ने अनेकत्र की है। जैसे कि—

पुष्पं च फुल्लं नवमल्लिकायाः ।[3]

और—

चूतेन संश्रितवती नवमालिके
यमस्यामहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्तः ।[4]

कदम्ब

आषाढ़ में आम और जामुन के साथ ही पीली-पीली केसर से ढके गोल

---

१. श्वेतरक्तस्तु पाटलः, अमरकोष, १-५-१५
२. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-३
३. ऋतुसंहार, ६-६
४. अभिज्ञानशाकुन्तल, ४-१४

गेंदनुमा फूलों से लदे कदम्ब भी आसपास के वातावरण को अपनी मधुर महक से महका देते हैं। कवि ने—

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढैः।[1]

में कदम्ब का सही चित्रण किया है।

इसी प्रकार—

त्वत्संपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।[2]

के द्वारा भी ऊपर से पीली और सुकोमल केसर के तुरइयों से ढके कदम्ब पुष्प के बारे में कहा गया है कि मानो वह मेघ के सुखद स्पर्श के कारण ही पुलकित हो उठा है।

कादम्बमर्धोद्गतकेसरं च।[3]

में भी कवि ने वर्षा ऋतु में ऐसे कदम्ब पुष्पों का वर्णन किया है जिनके ऊपर केसर अभी निकलने ही लगी है।

कदम्ब के ये पुष्प सुन्दरियों के कानों में कर्णफूल का भी काम देते हैं—

विकचनवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां
रचयति जलदौघः कान्तवत्काल एषः।[4]

सुन्दरियाँ नवोद्गत केसर वाले कदम्ब पुष्पों के गजरों से अपने जूड़े भी सजाया करती थीं—

मालाः कदम्बवनकेसरकेतीकीभिरायोजिताः।[5]

अन्यत्र कहा गया है कि कदम्ब वृक्ष के फूलों से लद जाने से वन मानो जगमगा उठा है

मुदित इव कदम्बैर्जातपुष्पैः समन्तात्
पवनचलितशाखैः शाखिभिर्नृत्यतीव॥[6]

कवि ने यह भी कहा है कि श्रीराम के वैकुण्ठ सिधार जाने पर उनके पीछे चलने वाले लोगों के कदम्बपुष्पों जैसे मोटे-मोटे आँसुओं से धरती गीली हो गई—

कदम्बमुकुलस्थूलैरभिवृष्टां प्रजाश्रुभिः।[7]

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ-२२ कवि ने कदम्ब का नाम नीप भी दिया है।
२. वही, २७
३. रघुवंश, १३-३७
४. ऋतुसंहार, २-२५
५. ऋतुसंहार, २-२१
६. वही, २-२४
७. रघुवंश, १५-८८

बकुल-मलसरी

वर्षा ऋतु में बकुल या कुरबक (मौलसरी) अपने छोटे-छोटे मटमैले, ललछौंहे फूलों की भीनी-भीनी मधुर महक से वातावरण को सुरभित कर देते हैं। इनकी चर्चा भो कालिदास ने अनेक स्थानों पर की है। जैसा कि—

मधुलिहां मधुदानविशारदाः
कुरबका रवकारणतां ययुः।[४]

और—

सुवदनावदनासवसंभृतस्तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गमः।
मधुकरैरकरोन्मधुलोलुपैर्बकुलमायतमातयपंक्तिभिः॥[५]

में कुरबक और बकुल इन दोनों नामों को स्वीकार करते हुए इस वृक्ष और उसके फूलों की मधुर महक का वर्णन किया गया है।

वसन्त में खिलने वाले अशोक और बौराये आम के साथ ही कुरबक या मौलसरी का एक साथ वर्णन विक्रमोर्वशीय के—

अग्रे स्त्रीनखपाटलं कुरबं श्यामं द्वयोर्भागयोः।[१]
रक्ताशोकमपोढरागसुभगम्...............

आदि श्लोक में किया है।

चम्पा

चमकीले हरे पत्तों की झाड़ी में छिपे अपने हरे-हरे फूलों से वातावरण को आमोदित करने वाले 'चम्पा' की चर्चा कवि ने—

ईषत्तुषारैः कृतशीतहर्म्यः सुवासितं
चारु शिरश्च चम्पकैः।[२]

में करते हुए कहा है कि सुन्दरियां अपने केशपाशों को चम्पा के फूलों से सुवासित किया करती थीं।

यूथिका

वर्षा ऋतु में खिलने वाली जूही की शोभा का वर्णन करते हुए कवि ने

---

४. रघुवंश, ६-२६
५. वही, ६-३०
१. विक्रमोर्वशीय, २-७
२. ऋतुसंहार, ६-३

कहा है—

विश्रान्तः सन्व्रज वननदीतीरजतानिर्सिच
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि ।[१]

और

विकसितनवपुष्पैर्यूथिकाजालकानि ।[२]

मालती

एक तरह से सदाबहार और विशेषतः वर्षा में खिलने वाली मालती की चर्चा कवि ने—

शिरसि बकुलमालां मालतीभिः[३]

इत्यादि पद्य में की है।

केतकी

मझोले आकार के केवड़े के गुल्म या क्षुप में लम्बे-पीले से कटीले पत्तों के बीच केवड़े की परागयुक्त मंजरी की सुगंध सारे वातावरण को महका देती है। कवि ने—

वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते संभावयत्याननमायताक्षि ।[४]

के द्वारा केतकी के पुष्प का चित्र अंकित किया है। ऋतुसंहार के दूसरे सर्ग के २४वें श्लोक में केवड़े को बरसात में खिला हुआ बताकर उसका सही चित्र अंकित किया है। यहां यह भी कहा गया है कि केवड़े की कटीली गोर-पीत लम्बी-लम्बी मंजरियों से मानो सारा वन ही हँसता सा लग रहा है—

हसितमिव विधत्ते सूचिभि. केतकीनां
नवसलिलनिषेकच्छिन्नतापो वनान्तः ।[५]

तमाल

तमाल भी मध्यक्षेत्र का एक जाना-पहचाना छायादार वृक्ष है। कवि ने यह कह कर कि—

अयं सुजातोऽनुगिरं तमालः प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य ।[६]

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ-२८
२. ऋतुसंहार, २-२५
३. वही, २-२५
४. रघुवंश, १३-१६
५. ऋतुसंहार, २-२४
६. रघुवंश, १३-४६

तमाल वृक्ष के बारे में बताया है।

सप्तपर्ण

मझोले आकार का सप्तवर्ण वृक्ष शरदऋतु में अपनी हरिताभ-श्वेत मोटे-मोटे मंजरीनुमा पुष्पगुच्छों की उत्कट तीखी-सी गंध फैलाता हुआ रात्रि के समय समस्त वातावरण को अपनी उपस्थिति से परिचित करा देता है। कवि ने इसीलिए शरदऋतु की शोभा का उपक्रम करते हुए जिस वृक्ष की चर्चा सर्वप्रथम की है, वह सप्तपर्ण ही है—

प्रसवैः सप्तपर्णानां मदगन्धिभिराहताः।
असूययेव तन्नागाः सप्तधैव प्रसस्रुवुः।।[1]

अर्जुन

अर्जुन अपने नाम के अनुरूप सफेद छाल वाला वृक्ष है। आयुर्वेद में प्रसिद्ध अर्जुनारिष्ट इसी के पंचांग से बनता है। कवि ने इसका वर्णन—

कदम्बसर्जार्जुनकेतकीवनं विकम्पयंस्तत्कुसुमाधिवासितः।
ससीकराम्भोधरसंगशीतलः समीरणः क न करोति सोत्सुकम्।।[2]

के द्वारा मध्य क्षेत्र के वर्षा में खिलने वाले वृक्षों में किया है।

शेफालिका-हरसिंगार

अपने ललछौंहे श्वेत रक्तवृन्त युक्त अत्यन्त सुकोमल छोटे-छोटे सुन्दर पुष्प-भार से शरद्ऋतु की रातों को चारों ओर से सुरभित कर देने वाला शेफाली या हरसिंगार का ढाई-तीन मीटर ऊँचा झाड़ सारी रात पुष्पवर्षा के द्वारा प्रातः अपने नीचे फूलों का बिस्तर सा बिछा देता है।

भारत के पुष्पित वृक्षों में शेफालिका का अपना निराला स्थान है। कालिदास ने—

शेफालिकागन्धमनोहराणि।[3]

आदि के द्वारा शरद्ऋतु में उपवनों को शेफालिका के फूलों की मधुर मोहक गंध से लुभावना बताया है।

कर्णिकार-कनेर

कालिदास ने मध्य क्षेत्र के वन-उपवनों में पाये जाने वाले जिन अनेक

---

१. रघुवंश, ४-२३
२. ऋतुसंहार, २-१७
३. वही, ३-१४

वृक्षों की चर्चा की है, उनमें कनेर-कर्णिकार अन्यतम है। विक्रमोर्वशीय में कहा गया है—

निर्भिद्योपरि कर्णिकारमुकुलान्यालोयते षट्पदः।[१]

हवन की अग्नि के समान लाल कान्ति वाले फूलों के बारे में कहा गया है कि ये फूल तो वनलक्ष्मी के कर्णफूल ही हैं—

हुतहुताशनदीप्तिवनश्रियः
प्रतिनिधिः कनकाभरणस्य यत्।[२]

कुन्द

अपने लम्बे-लम्बे नुकीले श्वेत पुष्पों के गुच्छों से लदी कुन्द लताएँ वसन्त पंचमी के आसपास माघ महीने में ही पुष्प-गुच्छों से लद जाती हैं। इसीलिए 'कुन्द' को 'माघ्य' पुष्प भी कहा जाता है।[३] कालिदास ने—

कुन्दैः सविभ्रमवधूहसितावदतै
रुद्योतितान्युपवनानि मनोहराणि।[४]

में कुन्द पुष्प-लता का अलंकृत तथ्यात्मक वर्णन किया है। इसी प्रकार आगे फिर कहा गया है कि वसन्त ऋतु अपने कुन्द पुष्पों की चमक दिखाकर मुस्कराते समय चमक उठने वाले सुन्दरियों के दाँतों की हँसी उड़ा रही है—

स्मितदशनमयूखान् कन्दपुष्प प्रभाभि
रुपहसति वसन्तः कामिनीनामिदानीम्।

अभिज्ञानशाकुन्तल में कवि ने दुष्यन्त के मुख से कहलाया है कि जैसे ओस से भरे कुन्द पुष्प के रस को भँवरा न ले ही पाता है और न छोड़ ही सकता है, वही स्थिति शकुन्तला के बारे में मेरी हो रही है—

भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं
न च खलुपरिभोक्तुं नापिशक्नोमि हातुम्।[५]

अन्यत्र भी कन्द पुष्प-स्तवकों के सफेद-सफेद फूलों को वसन्त रूपी नायक के शुभ्र दाँत बताते हुए कहा गया है कि—

कुन्दापीड़विशुद्धदन्तनिकरः।[६]

---

१. विक्रमोर्वशीय, २-२२
२. रघुवंश, ६-४०
३. माघ्यं कुन्दम्। अमरकोष, २-४-७३
४. ऋतुसंहार-२५
५. अभिज्ञानशाकुन्तल, ५-१६
६. ऋतुसंहार, ६-३६

कमल

कमल की चर्चा किए बिना कालिदास द्वारा चर्चित पुष्प पादपों की समीक्षा अधूरी ही मानी जा सकती है। कमल-भारतीय जन-जोवन के लिए इतना जाना-पहचाना लोकप्रिय पुष्प है कि संस्कृत साहित्य का पद-पद इससे सुरभित है। तदनुसार कालिदास ने भी नीलोत्पल तथा श्वेतकमल एवं रक्त कमल आदि विविध जातियों की चर्चा की है। जैसे कि दुष्यन्त का शकुन्तला को भूलकर महारानी हंसपादिका में ही अनुरक्त हो जाने की बात कवि को ऐसे लगी कि जैसे भंवरा आम्र मंजरी का रस चूसकर उसे तो भुला दे और कमल में ही डेरा डाल ले—

कमलवसतिमात्रनिवृ ंतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम् ।[1]

अतिमुक्ता-मोगरा-मोतिया

कालिदास ने अतिमुक्तलता का उल्लेख करते हुए कहा है, आम को छोड़कर अतिमुक्तलता और किसका सहारा लेगी।

क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते ।[2]

छायादार तथा अन्य उपयोगी वृक्ष

कवि ने निम्न छायादार वृक्षों का उल्लेख किया है।

वट

वट की गणना पवित्र वृक्षों में की जाती है और इसे ब्रह्मरूप माना जाता है। आषाढ़ी अमावस्या को वटसावित्री के व्रत के दिन सुहागिन स्त्रियाँ अपने सुहाग को अखण्ड बनाए रखने के लिए व्रत रखती है और वट की पूजा किया करती हैं। ग्रीष्मऋतु में अपने गोल-गोल लाल फूलों से दहकता हुआ घनी छाया वाला वट वृक्ष पशु-पक्षियों को अश्रय तो देता ही है, गांव की चौपाल का काम भी देता है। निम्न श्लोक में कवि—

त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः
सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः ।
राशिर्मणीनामिव गारूडानां
सपद्मरागः फलितो विभाति ।[3]

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल, ५-१

२. वही, ३-१०

३. रघुवंश, १३-५३

(हे सीते ! यह सामने काला सा दिखाई पड़ने वाला वही श्याम वट है, जिसकी तुमने मनौती मानी थी। इसके लगे हुए अपने गोल-गोल लाल फलों से लदा यह ऐसे सुशोभित हो रहा है जैसे नीलम के ढेर में बहुत से लाल डाल दिए गए हों)।
में वट का सजीव अलंकारिक चित्र अंकित करने के साथ ही अपने पाठकों इससे सम्बद्ध वट-सावित्री व्रत की पुराण-परम्परा का स्मरण करना भी नहीं भूला।

प्लक्ष

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अप्रस्तुत रूप से वह भी मात्र एक ही पद में वर्णन करते हुए भी कवि ने प्लक्ष की प्रमुख विशेषता 'प्ररोह-जटिलता' का ऐसा सुन्दर वर्णन कर दिया है कि जिसने पहले कभी प्लक्ष न देखा हो वह भी कवि के—

प्लक्षान्प्ररोहजटिलानिव।[1]

कथन के सहारे प्रथम दृष्टि में ही उसे पहचान लेगा। क्योंकि वट-वृक्ष की जटाएँ तो शाखाओं के बीच को गांठों में से निकलती हैं, किन्तु प्लक्ष की विशेषता यह है कि इसके ऊपर जहाँ मुख्य शाखाएँ निकलती हैं, वहीं से जटाएँ भी फूटने लगती हैं। इस प्रकार तने का ऊपरी भाग ऐसा लगता है मानो मनुष्य के मुख के चारों ओर से लम्बी दाढ़ी ने ढक लिया हो।
इसी प्रकार—

दूर्वायवांकुरप्लक्षत्वगभिन्नपुटोत्तरान्।
ज्ञातिवृद्धैः प्रयुक्तान् स भेजे नीरजनाविधीन्॥[2]

में दूर्वा और यवांकुर के साथ प्लक्ष की छाल की भी मांगलिक पदार्थों में गणना की गई है।

चैत्य-अश्वत्थ-पीपल

नीम, बरगद और पीपल ये तीनों हमारे जाने-पहचाने ऐसे वृक्ष हैं, जिनके बिना जानपद जीवन सूना-सा लगने लगता है। तदनुसार पीपल का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है—

नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः।[3]

---

१. वही, १३-७१
२. रघुवंश, १७-१२
३. मेघदूत, पूर्वमेघ-२५

इस 'चैत्य' शब्द के बारे में विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि यह बौद्ध विहार और पीपल का वृक्ष इन दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है। कालिदास ने 'चैत्य' शब्द का प्रयोग सर्वत्र पीपल के अर्थ में ही किया है। इसलिए जिन टीकाकारों ने चैत्य का अर्थ पीपल न कर मन्दिर या मठ किया है वह भ्रामक ही है, क्योंकि मठों या बिहारों में नहीं अपितु गाँव के आस-पास के पीपल जैसे वृक्षों पर ही कव्वे घोंसला बनाते हैं।

शाल

हिमालय का सम्पूर्ण तराई प्रदेश और विन्ध्यवन शाल वृक्षों से भरा हुआ है। कालिदास ने अयोध्या से रथ में बैठकर वसिष्ठाश्रम की ओर जाते हुए दिलीप और सुदक्षिणा को शाल के निर्यास की सुगंध में बसे हुए पवन के झकोरों का आनन्द लेते हुए बताकर इस क्षेत्र में प्रचुर परिमाण में पाए जाने वाले शाल वृक्षों की स्थिति से सम्बद्ध भौगोलिक तथ्य का ही परिचय दिया है—

सेव्यमानौ सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धिभिः।[1]

इसी प्रकार दिलीप को 'शालप्रांशुः'[2] शाल के वृक्ष के समान लम्बा-चौड़ा बता कर शालवृक्ष की विशालता का ही परिचय दिया है।

शमी

शमी यज्ञीय वृक्ष है। विवाह में वधूकृत लाजाहोम के साथ शमीपत्र मिलाने का भी विधान है। कवि ने दुष्यन्त के मुख से यह कहलाकर कि शकुन्तला की सुकोमल देह को जो ऋषि तप के लिए साधना चाहता है, वह शमी के पेड़ को कमल की पंखड़ी से काटने की सोच रहा है, शमी वृक्ष की कठोरता का परिचय दिया है—

ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया
शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति।[3]

शमी को अग्निगर्भा माना जाता है, यह तथ्य भी—

अग्निगर्भां शमीमिव।[4]

के द्वारा व्यक्त किया गया है।

---

१. रघुवंश. १-३८
२. वही, १-१३
३. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-१८
४. वही, ४-४

अर्क-आक

उत्तर भारत में सर्वत्र सुलभ किन्तु नगण्य आक का झाड़ भी कवि की दृष्टि से ओझल नहीं रह पाया। दुष्यन्त ऋषि के तपोवन में शकुन्तला को ऐसी लगी जैसे नवमालिका का फूल आक के पौधे पर गिर पड़ा हो—

अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम् ।[१]

बाँस-कीचक

तराई के प्रदेश बाँसों से भी भरे पड़े हैं। बाँस बरेली तो नाम ही बाँसों के कारण पड़ा है। कबि ने हिमालय की तराइयों के आसपास बाँसों की बहुलता का वर्णन ऊपरी भागों में भी किया है। रघुवंश में कहा गया है कि हिमालय कीचकों में हवा के झोंके सनसनाहट पैदा कर रहे थे—

कीचकध्वनिहेतवः ।[२]

और

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः ।[३]

इंगुदी-हिंगोट

इंगुदी के कटीले झाड़ीनुमा वृक्ष पर हरड़ के जैसे मोटे-मोटे कठोर फल लगते हैं जिन्हें कूटपीसकर बनवासी लोग तेल निकाल लिया करते थे। इंगुदी को 'तापसतरु' को सार्थक संज्ञा भी दी गई है। कवि ने—

प्रस्निग्धाः सूच्यन्तः एवोपलाः ।[४]

तथा

मा कस्यापि तपस्विन इंगुदीतैलमिश्रचिक्कणशीर्षस्थ हस्ते पतिष्यति ।[५]

में भी हिंगोट और उससे निकाले जाने वाले तैल की चर्चा की है। इंगुदी के तैल से आश्रमों में दीप भो जलाए जाते थे। इसकी चर्चा कवि ने—

ता इंगुदीस्नेहकृतप्रदीपमास्तर्णमध्याजिनतल्पमन्तः ।[६]

आदि श्लोक में की है।

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल, २-८
२. रघुवंश, ४-७३
३. मेघदूत, पूर्वमेघ-६०
४. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-१४
५. वही, २-१०
६. रघुवश, ४-८१

उशीर-खश

खश वास्तव में एक प्रकार की काश जाति की घास की जड़ है। गर्मियों में खश के पर्दे लगा कर घरों को ठण्डा रखा जाता है। कवि ने—

स्तनन्यस्तोशीर।[1]

में खश और उसके शीतल गुण की चर्चा की है।

कृषि-उपज

गेहूँ, जौ और धान आदि हल चलाकर उगाए जाने वाले 'कृष्टपच्य' तथा 'नीवार' आदि स्वयं उग आने वाले 'अकृष्टपच्य' दोनों प्रकार की सस्य-सम्पदा का कवि ने उल्लेख किया है।

वनस्पति-विज्ञान के विचार से दूब से लेकर गेहूं, जौ, चाँवल, गन्ना तथा घास-फूस और बाँस भी एक ही जाति के पौधे हैं। कालिदास ने इन सब का यथास्थान परिचय दिया है। धान्यों को चार वर्गों में विभक्त कर विवेचित किया गया है। यथा—

१. शमी धान्य—फलियों से निकलने वाले उड़द, मूंग आदि।
२. शूक धान्य—बालियों से निकलने वाले जौ, गेहूं आदि।
३. शाली—चाँवल आदि।
४. तृण धान्य—श्यामाक, सवाँ और कंगनी आदि।

यव-गोधूम

इन चारों प्रकार के धान्यों में शूक धान्य—जौ और गेहूं के बारे में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि कालिदास ने शूक-वर्ग के यव और गोधूम इन दोनों अन्नों को एक ही नाम 'सस्य' या 'यव' से अभिहित किया है। हेमन्त ऋतु आरम्भ होते ही गेहूं जौ आदि बोये जाने लगते हैं और नए उगे हुए इनके अंकुरों से धरती जगमगा उठती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए कवि ने ऋतुसंहार में हेमन्त ऋतु के वर्णन का श्री गणेश गेहूं और जौ के नए उगे अंकुरों की शोभा से ही करते हुए कहा है—

नवप्रवालोद्गमसस्यरम्यः
प्रफुल्ललोध्रः परिपक्वशालिः।[2]

यव की चर्चा कवि ने अनेकत्र की है। यवांकुरों को मांगलिक समझकर उन्हें अपने सिर पर टांगा जाता था।

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल, ३-७
२. ऋतुसंहार, ४-१

व्रीहि-शालि या धान्य

मध्य देश में धान (चाँवल) और उदीच्य देश में यव (जौ) ये ही कालिदास के काव्यों में वर्णित मुख्य फसलें हैं। पतंजलि ने कहा है कि धान या जौ में से कोई एक फसल भी तगड़ी हो जाय तो किसान की जय है।[1]

सस्य अर्थात् जौ और गेहूं के बाद भारतीय भोजन में चाँवल का प्रमुख स्थान है। ये चाँवल शालि या धान्य कूटकर उससे तुस अलग करके निकाले जाते हैं। धान प्रायः शरद् ऋतु में बोया जाता है और सर्दियों में पकने लगता है। यही बात कवि ने हेमन्त के वर्णन के प्रसंग में—

परिपक्वशालिः,[2] तथा **प्रभूतशालिप्रसवैश्चितानि।**[3]

और

प्ररूढशालीक्षुचयावृतक्षिति[4] **तथा परिणत बहुशालिव्याकुलग्रामसीमा**[5]
आदि में स्पष्ट की है। उधर—

इक्षुच्छायानिपादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्य जगुर्यशः॥[6]

में शरद् ऋतु के वर्णन के प्रसंग में धान के लहलहाते पौधों का वर्णन कर यह भी स्पष्ट कर दिया है कि धान की रोपाई शरद् ऋतु (आश्विन) में ही हो जाती है, अथवा धान की दूसरी फसल शरद में पक जाती है।

धान का दूसरे सब अनाजों की अपेक्षा एक प्रमुख वैशिष्टच यह है कि यह तभी फलित हो पाता है जबकि उसकी पौध को दूसरी जलपूरित क्यारियों में रोप दिया जाय। कवि ने—

आपादपद्मप्रणताः कलमा इव ते रघुम्।
फलैः संवर्धयामासुरुत्खातप्रतिरोपिताः॥[7]

के द्वारा यही तथ्य प्रतिपादित किया है।

---

१. एको व्रीहिः सम्पन्नः सुभिक्षं करोति,
एको यवः सम्पन्नः सुभिक्षं करोति। —महाभाष्य, १-२-५८

२. ऋतुसंहार, ४-१

३. वही, ४-८

४. वही, ५-१

५. वही, ४-१६

६. रघुवंश, ४-२०

७. वही, ४-३७

तिल

यव, तुण्डल और तिल यज्ञीय चरु के ये घटक द्रव्य हैं। मृतक के लिए तिलांजलि दी जाती है। शकुन्तला अपनी सखियों से कहती है कि यदि दुष्यन्त के विरह में मैं ऐसे ही तड़फती रही तो तुम्हें मुझे तिलांजलि देने को तैयार रहना चाहिए—

अन्यथा सिंचतं मे तिलोदकम्।[1]

शर्षप-सरसों

श्वेत सरसों सदा मांगलिक मानी जाती रही है। इसीलिए शर्षप का एक पर्याय 'सिद्धार्थ' भी है। कवि ने कहा है कि पार्वती को वधूवेश में सजाते हुए उनके पल्ले के साथ दूर्वा और सफेद सरसों भी बांधी गयी थी—

सा-गौरसिद्धार्थनिवेशवद्भिः दूर्वाप्रवालैः प्रतिभिन्नशोभम्।[2]

वृत्तरत्नाकर में केदारभट्ट ने सरसों के साग को श्रेष्ठ व्यंजन कहा है।[3]

अकृष्टपच्य-श्यामाक-सवां और नीवार (साठी चांवल)

ये दोनों वनों में स्वतः उगने वाले धान्य हैं। कवि ने तपोवनों के प्रसंग में इन दोनों धान्यों का भी यथास्थान वर्णन किया है। जैसे—

अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगैः।[4]

और—

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः।[5]

इक्षु

कालिदास ने भारत की प्रमुख उपज इक्षु की अनेकत्र चर्चा की है-- "इक्षुच्छाया" आदि कुछ उद्धरण ऊपर शलि के प्रसंग में दे दिए गए हैं।

श्यामाक-सवां

वर्षा के बाद शरद् ऋतु में वन-भूमियां श्यामाक या सवाँ जाति की छोटी पतली घास से ढक जाती हैं। इस घास पर लगे हुए सवां के दाने किसान लोग सूप से इकट्ठा कर लेते हैं। व्रतों में सवां का फलाहार के रूप में उपयोग किया जाता है। कवि ने कहा है कि शकुन्तला मृगछौनों को सवाँ की मुट्ठियां

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल, ३-१०
२. कुमारसंभव, ७-७
३. तरुणं शर्षपशाकं नवोदनं पिच्छलानि च दधीनि। वृत्तरत्नाकर, प्रथम अध्याय
४. रघुवंश, १-५०
५. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-१४

भर-भर कर खिलाती और पालती-पोसती थी—

श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति
सोऽयं न पुतकृत्नकः पदवि मृगस्ते।[1]

कर्कन्धु-झड़बेरी

कालिदास द्वारा निर्दिष्ट अकृष्टपच्य खाद्यों में झड़बेरी जैसी कटीली झाड़ी 'कर्कन्धु' के बेर भी उल्लेखनीय हैं। कात्यायन ने 'शकन्धु' और 'कर्कन्धु' जैसे शब्दों में 'दीर्घ' के स्थान पर 'पररूप' का प्रचलन देखते हुए पाणिनि के सवर्णदीर्घ-विधायक 'अकः सवर्णे दीर्घः'[2] सूत्र पर अपनी वार्तिक 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' जोड़ कर उक्त सूत्र की पूर्ती की। स्पष्ट है कि कात्यायन के समय में शकों का अन्धु अर्थात् कूआ और कर्कों (पश्चिमी ईरानियों) का अन्धु-कूआ अपने इसी मूल अर्थ में ये दोनों शब्द प्रयुक्त थे। किन्तु कालिदास के समय तक कर्कन्धु झड़बेरी के अर्थ में अर्थान्तरित हो गया। कवि के द्वारा—

कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं रंजयत्यग्रसन्ध्या।[3]

आदि पद में कर्कन्धु झड़बेरी के अर्थ में प्रयुक्त है। अमरकोष में भी कर्कन्धु को बदरी बेरी ही कहा गया है।[4]

शिलीन्ध्र-कुकुरमुत्ता

कुकुरमुत्ता उद्भिज्ज वर्ग की क्षुद्र कोमल एवं बहुमूल्य अकृष्टपच्य उपज है। यह अत्यन्त उर्वर भूमि में ही उत्पन्न होता है। कश्मीर की प्रसिद्ध खुम्ब और गुच्छी सूखे हुए कुकुरमुत्ते ही होते हैं। कालिदास ने मेघदूत में शिलीन्ध्र को वर्षा का प्रतिनिधि मानकर—

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलींध्रामवन्ध्याम्।[5]

के द्वारा सर्वप्रथम इसी उद्भिज्ज कुकुरमुत्ते की चर्चा की है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि 'निराला' ने अपनी कविता "गुलाब और कुकुरमुत्ता" में कुकुरमुत्ते को सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि माना है।

इनके अतिरिक्त दूर्वा, कुश, काश और शर की चर्चा कवि ने अभिज्ञान शाकुन्तल तथा रघुवंश आदि में स्थान-स्थान पर की है. जिनके उद्धरण अन्य वस्तुओं के प्रसंग में समाविष्ट हैं।

---

१. अभि० शाकु०, ४-३
२. अष्टाध्यायी, ६-१-१०१
३. अभि० शाकु०, ४-३
४. अमरकोश, २-४-३६
५. मेघदूत, पूर्वमेघ,-११

पत्र, पुष्प और फल

पादपों के ये तीनों अंग कालिदास द्वारा प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों रूपों में प्रयुक्त हुए हैं।

किसलय, बिम्ब, बंधूक पुष्प—इन तीनों में से भी किसलय और बिंब फल ये दोनों सुन्दरियों के अधरों के लिए प्रयुक्त संस्कृत कवियों के प्रिय उपमान हैं। वसन्त या वर्षा में नवोद्गत चमकीले ललछोहें मनमोहक अपनी रंगीली छटा से समग्र लता-पादप वृन्द को जगमगा देने वाले किसलय को देखते ही लगता है कि संस्कृत कवियों के द्वारा खोज निकाले गये प्रकृति-प्रदत्त इस उपमान से बढ़कर अन्य कोई हो ही नहीं सकता। किसलय वस्तुतः अपने आप में अनुपम है। कवि ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्लला के अधरोष्ठों के लिए यथार्थता के साथ उन्हें किसलय के समान हल्के गुलाबी रंग के और चमकीले बताया है—

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणी बाहुः।[1]

संस्कृत में किसलय को विद्रुम भी कहते हैं और प्रवाल भी (इन दोनों शब्दों का अर्थ मूंगा भी होता है।)। कवि ने जहाँ कहीं भी अधरोष्ठों को प्रवाल या विद्रुम के समान बताया है वहाँ इनका अर्थ मूंगा नहीं अपितु किसलय ही लिया जाना चाहिए। क्योंकि अधर और किसलय में कान्तिसाम्य के साथ-साथ सुकोमलता आदि अन्य गुण भी होते हैं, जबकि विद्रुम एकमात्र कठोर पत्थर है। कवि को अधरों को उस कठोर पत्थर या मूंगे जैसा बताना कदापि अभीष्ट नहीं। कालिदास शकुन्तला के लिए तो 'अधरः किसलय रागः' कहकर ही छुट्टी पा गए, किंतु जब वह भगवती पार्वती की अनुपम रूप-राशि का नख से लेकर शिख तक वर्णन करने बैठे (देवताओं का वर्णन पांव से आरंभ कर सिर तक किया जाता है) तो—

एकांतशैत्यात् कदलीविशेषः।

आदि कह कर यह तो बताया गया कि ऐसा कुछ नहीं है जिससे भगवती की जंघाओं की उपमाएं दी जा सके। किंतु किसलय को भी 'अधरोपमानबाह्य' कहना उसे कुछ संगत नहीं लगा। इसलिए यह कह कर कि यदि किसलय के साथ ही कोई शुभ्र कुसुम भी खिल आए अथवा नवांकुरित ललछोंहे कोमल पत्ते पर मोती उग आएं, तभी पार्वतीजी के स्मिताधरों की कान्ति

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-१९

का कुछ आभास हो सकता है—

पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्-
मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम् ।
ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्या—
स्ताम्रोष्ठपर्यस्तरुचः स्मितस्य ॥[1]

यह तो हुई नैसर्गिक लालिमायुक्त अधरों की बात। किन्तु उस युग की सुन्दरियाँ भी हाथों और पांवों आदि के समान अधरों को भी रंगा करती थीं और इन रंगे-पुते (आज की भाषा में लिपष्टिक लगे हुए) अधरों के लिए भी कवि ने दो प्राकृतिक उपमानों का प्रयोग किया है। स्वाभाविक अधर को जहाँ किसलय या कोमल पत्ते के जैसा बताया गया है, वहीं रंगे हुए होठों की उपमा पुष्प और फल से दी गई है और यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है बन्धूक या जपा पुष्प और बिंब फल को। कवि ने कहा है—

अधररुचिरशोभां बंधुजीवे प्रियाणाम् ।[2]

तथा

बन्धूककान्तिमधरेषु मनोहरेषु ।[3]

इसी प्रकार यक्ष अपनी प्रियतमा को 'पक्वबिंबाधरोष्ठी'[4] कहकर उसे 'सृष्टिराद्येव धातुः'[5] बताता है।

संस्कृत-कवियों का प्रिय यह बिंब फल बरसात में खेतों की बाड़ों पर फैली बेलों पर अपनी गहरी लाल चमकीली कांति से दर्शकों का मन अनायास अपनी ओर खींचता दिखाई देता है। हिन्दी का कुन्दरू और राजस्थानी 'तन्दूरी' ही बिंबफल है। हरे कच्चे कुन्दरू की सब्जी भी बनती है।

पुराने युग में भी भारतीय नारियाँ अपने अधर रंगा करती थीं, यह तथ्य भी कालिदास ने स्वयं ही यह कहकर स्पष्ट शब्दों में बता दिया है कि तपस्या में लीन होने पर पार्वतीजी ने होठ रंगने छोड़ दिए थे और वह हाथ जिससे वह अपने होठ रंगा करती थीं रुद्राक्ष माला से सुशोभित हो गया—

विसृष्टरागादधरान्निवर्तितः ।[6]

---

१. कुमारसम्भव ।४४
२. ऋतुसंहार, ३-२६
३. वही, २७
४. मेघदूत, उत्तरमेघ-२२
५. वही,
६. कुमारसंभव ५-११

लाक्षा

वानस्पतिक उपज में लाख या लाक्षा का भी अपना महत्त्व है। कार्यालयों में मोहर लगाने के काम में आने वाली लाख और लाख की बनी चूड़ियों व कंगनों से सब परिचित हैं। पहले लाख के रंग से हाथ-पांव आदि भी रंगे जाते थे। यह लाख पीपल जैसे पेड़ों से निकलने वाला द्रव ही है जो सूख कर कठोर हो जाता है। कवि ने भी इसे वृक्ष-विशेष का निष्ठ्यूत या उगला हुआ द्रव ही बताया है—

निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्।[1]

शैवाल

उद्भिज्ज वर्ग की आरंभिक अवस्था की सूचक शिलीन्ध्र या ककुरमुत्ते की भांति शैवाल भी प्रारंभिकतम वनस्पति कही जा सकती है। इस उपेक्षित और क्षुद्रतम वनस्पति (फंगस) की ओर कवि ने ध्यान हो नहीं दिया, अपितु उसे यथोचित महत्त्व भी दिया है—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्।[2]

कुमारसंभव में भी कवि ने ठीक इन्हीं शब्दों को दोहराते हुए कहा है—

न षट्पदश्रेणिभिरेव पंकजं सशैवलासंगमपि प्रकाशते।[3]

खनिज संपदा

कृषि-उपज और खनिज संपदा ये दोनों हमारे राष्ट्र की समृद्धि के प्रमुख तत्त्व हैं। वेद में कामना की गई है कि हमारी कृषि उपज भरपूर हो—

फलवत्य ओषधयो नः पच्यन्ताम्।[4]

इधर राष्ट्रकवि कालिदास भी—

वप्राश्च पक्वफलमावृतभूमिभागाः।[5]

कहकर जैसे उक्त वेदवाक्य को ही अपने शब्दों में उपस्थित कर रहा है।

कालिदास ने कृषि-उपज के साथ हो मध्यक्षेत्र के खनिजों की भी चर्चा

१. अभिज्ञानशाकुन्तल—४-५
२. वही, १-१९
३. कुमारसम्भव—५-९
४. यजुर्वेद
५. रघुवंश

करते हुए कहा है—

खनिभिः सुषुवे रत्नं क्षेत्रैः सस्यम् ।[1]

इन खनिजों में अयस्—लोहा, सोना, अयस्कान्त (चुम्बक), गेरू, वज्र (हीरा), नीलमणि (नीलम), मरकत (पन्ना) माणिक्य (लाल) और अंजन (सुरमा) जैसे अनेक खनिज पदार्थ सम्मिलित हैं। कवि ने—

रत्नं समागच्छतु कांचनेन ।[2]

में सोना और रत्न का एक साथ उल्लेख किया है। खानों से कई प्रकार के रत्नादि निकाले जाने तथा उन्हें विविध उपायों से चमकाने की चर्चा भी कवि ने—

दिलीपसूनुर्मणिराकरोद्भवः प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ ।[3]

में की है। इसी प्रकार—

अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते ।[4]

में कहा है कि निर्धारित ताप में तपाने पर लोहा नर्म हो जाता है और पिघल जाता है। इसी प्रकार—

शैलेयगंधीनि शिलातलानि ।[5]

में शिलाजीत का वर्णन किया गया है। यहाँ कवि ने यह भी स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि शिलाजीत में हल्की सी महक होती है। इसीलिए कवि कहता है कि गोवर्धन के शिलातल शिलाजीत की गन्ध से महकते रहते हैं।

यह तथ्य भी यहां विशेष ध्यान देने योग्य है कि शिलाजीत ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों की बड़ी-बड़ी चट्टानों से ग्रीष्म ताप से द्रवित होता है और उन चट्टानों पर पिघले हुए शिलाजीत की धारियाँ-सी बन जाती हैं। कवि ने ऋतु-संहार के षष्ठ सर्ग में चट्टानों पर शिलाजीत की ऐसी ही धारियां अंकित करते हुए कहा है कि विन्ध्याचल की चट्टानें शिलाजीत के द्रव की टेढ़ी-मेढ़ी धारियों से चित्रित सी हो रही हैं। ऐसी धारियों से युक्त चट्टानों को देखकर सब लोग चकित स्तम्भित और आनन्दित हो जाते हैं—

शैलेयजालपरिणद्धशिलातलान्ता—
न्दृष्ट्वा जनः क्षितिभृतो मुदमेति सर्वः ।[6]

---

१. रघुवंश. १७-६६ २. वही, ३-१८ ३. वही, ८-४३
४. वही, ६-७६ ५. कुमारसंभव, १३-२६
६. पं० सीताराम चतुर्वेदी जीने—"जिन पर चट्टानें फैली हुई हैं उनपर पथरीले पहाड़ों को देख-देख कर सबको आनन्द होता है" यह अर्थ दिया है जबकि पूर्वोक्त श्लोक में उन्होंने ही शैलेय का अर्थ शिलाजतु लिखा है।

विक्रमोर्वशीय के पंचमांक में कहा गया है कि जब गीध संगम लाल मणि को खून से लिपटा मांस का लोथड़ा समझकर ले उड़ा, तो सारा वातावरण उसकी दमक से लाल हो उठा[1]। अगले श्लोक में इस माणिक्य को मंगल के समान दमकता हुआ बताया गया है—

माणिक्यगर्भाभिरुपाहिताभिः ।[2]

इसी प्रकार कवि ने सूर्य के प्रकाश में आग उगलने वाली सूर्यकान्त-मणि या आतिशी शीशे के लिए कहा है—

स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्ता
स्तदंन्यतोऽभिभवाद् वमन्ति ।[3]

प्राणिज पदार्थ

कालिदास ने गव्य के अतिरिक्त ऊन और गोरोचन जैसे अन्य प्राणिज द्रव्यों की भी चर्चा की है—

गोरोचनानिकषपिंगजटाकलापः ।[4]

में नारद जी की जटाओं को गोरोचन के समान पीली बताया गया है।

खाद्य तथा पेय पदार्थ

कालिदास-निर्दिष्ट खाद्य पदार्थों में यव (गोधूम भी इसी में सम्मिलित है) चावल, तिल, सरसों, इक्षु, शर्करा, खांड़, गुड़ तथा लौंग, कालीमिर्च, इलायची आदि गर्म मसाले, लवण और द्राक्षा, केला, आम, जामुन, खिरनी, इमली, बीजपूर या बिजौरा नीबू, नारियल, सुपारी तथा खजूर और पिण्ड-खजूर आदि का विवेचन पहले यथास्थान हो चुका है।

कवि ने दूध, मक्खन और घृत जैसे गव्य पदार्थों वा मधुपर्क के लिए प्रयुक्त मधु व दधि का भी उल्लेख किया है। जैसे—

दूध—**दुग्ध्वा पयःपत्रपुटे ।**[5]
मक्खन—**हैयगवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान् ।**[6]
आज्य-घृत—**हुत्वाग्निमाज्यादिभिरग्निकल्पः ।**[7]
मधुपर्क-घी, दही, मधु—**सरत्नमर्घ्यं मधुपर्कमिश्रम् ।**[8]

और **प्रचुरगुड़विकारः**[9]

में गुड़ की चर्चा की है।

---

१. विक्रमोर्वशीय, ५-१६ २. कुमारसम्भव ३-२६ ३. अभिज्ञान शाकुन्तल ७-२
४. विक्रमोर्वशीय, ७-६ ५. रघुवंश, २-६५ ६. वही, १-४५
७. वही, ७-२० ८. वही, ७-१६ ९. ऋतुसंहार, ५-१६

पंच पक्वान्न – विक्रमोर्वशीय का विदूषक पांच पक्वान्नों की चर्चा करता हुआ कहता है—

पंचविधस्याभ्यवहारस्य उपनत संभारस्य।[1]

खांड के लड्डु—वही विदूषक खांड के लड्डूओं की चर्चा भी करता है—

खंडमोदकसश्रीक उदितो राजा द्विजातीनाम्।[2]

अर्थात् यह पूर्ण उदित द्विजराज चन्द्रमा ऐसा लग रहा है जैसे खांड का लड्डू हो।

मध्यक्षेत्र के जीव-जन्तु

कालिदास-चर्चित मध्यक्षेत्र के जीव-जन्तुओं का विवेचन करते हुए ज्ञात होत है कि कवि ने उत्तर भारत या सम्पूर्ण भारत वर्ष के अधिकांश छोटे-बड़े जीव-जन्तुओं की चर्चा अपने काव्यों में की है। इस विवेचन को वैज्ञानिक रूप देने के उद्देश्य से मध्य क्षेत्र के जीव-जन्तुओं को निम्न वर्गों तथा उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) पशु (ख) पक्षी (ग) कीटपंतग (घ) जलजन्तु

वेद में कहा गया है कि "ग्राम्य" और "आरण्य" भेद से पशु दो प्रकार के हैं[3]। ग्राम्य पशु भी (क) गाय, भैंस, बकरी, भेड़ आदि दुधारू (ख) हाथी, घोड़ा, ऊँट और खच्चर आदि वाहन, (ग) बैल और गधा आदि भारवाहो तथा (घ) कुत्ता बिल्ली चूहा आदि अन्य भेद से चार प्रकार के हैं।

अरण्य जीव मुख्यतः हरिण, वराह, गवय, महिष, खड्ग (गेंडा) शरभ-जिर्राफ, शश आदि शष्प भोजी तथा सिंह, व्याघ्र, शृगाल आदि क्रव्याद भेद से मुख्यतः दो श्रेणियों में विभक्त हैं।

पक्षी - हंस, सारस आदि जलपक्षी और शुक-काक आदि स्थल पक्षी भेद से दो प्रकार के होते हैं। ये भी शुक-सारिका आदि गायक पक्षी, कौआ, गीध आदि सफाई करने वाले पक्षी, बाज जैसे शिकारी पक्षी, और कबूतर जैसे घरेलू पक्षी = आदि कई वर्गों में विभक्त हैं।

कालिदास के काव्यों में उक्त सभो प्रकार के जीव-जन्तुओं की चर्चा हुई है।

---

१. विक्रमोर्वशीय, २-२ २. वही, ३-६

३. आरण्यान् ग्राम्यांश्च ये।—यजुर्वेद, ३१-६

ग्राम्य पशु

गाय-भैंस आदि दुधारू ग्राम्य पशुओं के लिये कवि ने हिन्दी तथा पंजाबी के "डंगर" के मूल "कडंगर" शब्द का प्रयोग किया है। रघु कौत्स से पूछते हैं कि आपके तपोवन के 'नीवार (सट्ठी चाँवल) आदि धान्य को कहीं गांव के डंगर चर तो नहीं जाते :—

नीवारपाकादि कडंगरीयै
रामृश्यते जानपदैर्न कच्चित् ।[1]

गौ

दुधारू पशुओं या डंगरों में सर्वश्रेष्ठ है गौ। महाकवि कालिदास हिन्दू-धर्म और भारतीय संस्कृति की इस परम पावन जीवन्त प्रतीक गौ के परम भक्त हैं। कवि का कथन है कि सन्तुष्ट और प्रसन्न गौ मानव की सब मनोवाच्छाओं को पूरा कर देती है :—

प्रीता कामदुघा हि सा।[2]

इसके विपरीत भूल से भी गौ की उपेक्षा या तिरस्कार बुरा होता है :—

प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।[3]

कवि ने गौ के रंग रूप आकार-प्रकार और उपयोग के साथ गौ-सेवा से होने वाले विविध लाभों की रघुवंश के प्रथम व द्वितीय सर्ग में विस्तार से चर्चा की है। गौ को धरती माता का प्रत्यक्ष रूप और उसके चारों थनों को चार समुद्र बताया गया है[4]।

महिषी-भैंस

कवि ने गर्मी से घबराई, तथा मुंह से जुगाली का फेन उगलती हुए पानी की खाई में से निकली भेंसों के झुण्ड का कैसा सजीव चित्र अंकित किया है, देखिये —

सफेनलालावृतवक्त्रसम्पुटम्
विनसृतालोहितजिह्वमुन्मुखम् ।
तृषाकुलं निसृतमद्रिगह्वरा
दवेक्षमाणं महिषीकुलं जलम् ॥[5]

---

१. रघुवंश, ५-९
२. वही १-८१
३. वही, १-७९
४. वही, २-३
५. ऋतुसंहार, १-१८

मेष-भेड़-भेड़ा

कार्तिकेय के नेतृत्व में देव-वाहिनी के प्रयाणावसर पर कवि ने अग्नि-देव को 'मेष' की सेवारी किए हुए बताया है :—

मदोद्धतं मेषमधिष्ठितः शिखी ।[१]

यहां मेष भेड़ (नर और अवी मादा) दोनों तरह की कही जा सकती है।

वाहनोपयोगी पशु

कवि ने हाथी, घोड़ा, ऊँट और खच्चर इन चारों वाहनोपयोगी पशुओं का उल्लेख किया है :—

गज-हाथी

कवि ने कहा है कि महाराज अज हथिनी पर सवार होकर विवाह मंडप में पहुँचे थे :—

ततोऽवतीर्याशुकरेणुकायाः ।[२]

अश्व

रथ में जुते हुए घोड़ों का वर्णन कवि ने अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अंक में :—

धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः ।[३]

तथा विक्रमोर्वशीय के :—

चित्रारम्भविनिश्चलं हरिशिरस्यायामवच्चामरम् ।[४]

और रघुवश के :—

रजोभिस्तुरगोत्कीर्णैरस्पृष्टालकवेष्टनौ ।[५]

आदि अनेक प्रसंगों में किया है। साथ ही वह यह भी बताता है कि घोड़ों की सवारी भी की जातो थी और घुड़सवार सैनिक भी युद्ध में लड़ा करते थे।

---

१. कुमारसम्भव, १४-६
२. रघुवंश ६-१७
३. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-८
४. विक्रमोर्वशीय, १-५
५. रघुवंश, १-४२

वे गजारूढ़ सैनिकों को अपने बाणों से छेद दिया करते थे। कालिदास के—

धन्विनस्तुरगारूढा गजारोहान् शरैः क्षतान्।[1]

आदि श्लोक को पढ़ते हुए गजारूढ़ मानसिंह पर अपने भाले से आक्रमण करते चेतकारूढ महाराणा प्रताप का वीरवेश आंखों के सामने आ जाता है।

ऊंट और खच्चर

कवि ने कहा है कि रघु ने कौत्स को इतनी स्वर्ण मुद्राएं दीं कि वह उसे सैकड़ों ऊँटों और खच्चरों पर लाद कर ले गया :—

अथोष्ट्रवामीशतवाहितार्थम्।[2]

उक्ष-महोक्ष-सांड

कवि ने यौवन में पदार्पण लरते हुए रघु के लिए लिखा है :—

महोक्षतां वत्सतरः स्पृशन्निव।[3]

वृष-बैल

वृष को हमारे यहाँ धर्म का प्रतिनिधि माना गया है। भगवान् शंकर का वाहन वृष ही है :—

कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः।[4]

रासभ- गधा

देव-दानव युद्ध के समय चारों ओर गधे के जैसा धुंआ उठ रहा था :—

दधुर्दिशो रासभकण्ठधूसरम्।[5]

श्वान

असुर तारक के अपशकुन के सूचक भोंकते हुए कई कुत्ते उसके आगे से निकले :—

श्वानः स्वरेण······रुदन्त करुणेन निर्ययुः।[6]

---

१. कुमारसम्भव, १६-३७
२. रघुवंश, ५-३२
३. वही, ३-३२
४. रघुवंश,
५. कुमारसंभव, १५-२१
६. कुमारसंभव, १५-२४

कवि ने कुमारसंभव के इसी प्रसंग में कार्तिक की रातों में रोते हुए पागल कुत्तों की भी चर्चा की है :—

श्वानः प्रमत्ता इव कार्तिके निशि ।[1]

बिल्ली

कुत्ते के साथ ही बिल्ली भी हमारा घरेलू जीव है। कवि ने—

गृहकपोतो बिडालिकाया आलोके पतितः ।[2]

में कबूतर को पकड़ती बिल्ली का चित्र खींचा है।

चूहा

बिल्ली के साथ ही उसका खाद्य मूषक भी घरेलू जीव है। कवि ने :—

बिडालगृहीतो मूषक इव ।[3]

के द्वारा बिल्ली और चूहे के स्वाभाविक वैर की चर्चा की है।

श्वापद

श्वापदों-मांसाहारी वन्य जीवों में कवि ने सिंह, व्याघ्र, शृगाल, आदि की चर्चा की है। कालिदास ने नीतिहीन शौर्य को 'श्वापदचेष्ठा' कहा है :—

शौर्यं श्वापदचेष्ठितम् ।[4]

सिंह

कवि ने कहा है कि दिलीप के संरक्षण में चरती नन्दिनी को सिंह ने धर दबोचा :—

सिंहः किल तां चकर्ष ।[5]

उधर बालक भरत सिंहों के साथ खेला करता था :—

प्रक्रीडितुं सिंहशिशुं बलात्कारेण कर्षति ।[6]

---

१. कुमारसम्भव, १५-४१
२. मालविकाग्निमित्र, ४-१७
३. अभिज्ञानशाकुन्तल, ६-२७
४. रघुवंश, १४-४५
५. रघुवंश, २-२७
६. अभिज्ञानशाकुन्तल, ७-१४

व्याघ्र

अयोध्या की देवी ने कुश को बताया कि तुम्हारे अयोध्या छोड़ आने के बाद वहां के महलों में न्यंकु हरिणों के खून से सने व्याघ्रों के पंजे उघड़ते रहते हैं :—

सद्यो हतन्यंकुभिरस्त्रदिग्धं व्याघ्रैः पदं तेषु निधीयते मे ।[1]

मृगधूर्तक-गीदड़, लोमड़ी आदि

कवि ने वनों में स्वच्छन्द विचरते मृगधूर्तकों का उल्लेख करते हुए कहा है :—

स्वैरं वनान्ते मृगधूर्तका इव ।[2]

रात्रि के समय गिदड़ियों के मुखों में से आग के जैसी चमक निकलती दिखाई देती है, इसकी चर्चा करते हुए कवि ने ध्वस्त अयोध्या नगरी के मुख से कहलाया है :—

नन्दमुखोल्काविचितामिषाभिः स वाह्यते राजपथः शिवाभिः ।[3]

ऋक्ष-रीछ

अभिज्ञान शाकुन्तला में विदूषक सेनापति से कहता है कि इस प्रकार शिकार के लिये वनों में निरन्तर इधर से उधर मारे-मारे फिरते हुए तुझे तो एक न एक दिन बूढ़े भालू के मुंह में पड़ना ही है :—

जीर्णऋक्षस्य कस्यापि मुखं पतिष्यसि ।[4]

वराह-सूअर

कवि ने जंगली सूअरों की चर्चा अनेकत्र की है। शिकार करते समय दशरथ ने सूअरों के झुण्ड का पीछा किया :—

जग्राह स द्रुतवराहकुलस्य मार्गम् ।[5]

खड्ग-गेंडा

दशरथ की मृगया के प्रसंग में :—

खड्गांश्चकार नृपतिर्निशितैः क्षुरप्रैः ।[6]

के द्वारा गेंडे की चर्चा की है।

१-२. रघुवंश, १६-१५
३. कुमारसंभव, १५-४१
४. अभिज्ञानशाकुन्तल, २-५
५. रघुवंश, ९-५९
६. रघुवंश ९-६२

शरभ-जिर्राफ

शरभ को 'अष्टापद' कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि इस प्राणी के एक के ऊपर एक करके चार टांगें आठ टांगों जितनी लम्बी होती हैं, तदनुसार इसकी गर्दन भी उतनी ही अधिक लम्बी होगी ही। अतः स्पष्ट है कि भारतीय साहित्य में 'अष्टापद' या शरभ के नाम से अभिहित यह विचित्र जीव अफ्रीका के वनों में स्वच्छन्दता से विचरने वाला 'जिर्राफ' ही है। फारसी के माध्यम से आए हुए 'जिर्राफ' का 'शरभ' के रूप में वैसे ही संस्कृतीकरण हो गया जैसे ग्रीक से आया हुआ तुर्की 'शगाल' अंग्रेजी जैकाल संस्कृत में 'शृगाल' बन गया।

कालिदास ने यह कह कर कि अष्टापद शरभ अपनी लम्बी गर्दन से गर्मियों में भी कूओं में से बिना नीचे झुके ही पानी पी लेता है, 'जिर्राफ' के रूप में 'शरभ' की पहचान की पुष्टि की है। कवि कहता है :—

शरभकुलमजिह्मं प्रोद्धरत्यम्बु कूपात् ।[1]

गवय-नील गाय

कालिदास ने भारत के विन्ध्य, पारियात्र-अरवली, तथा अन्य पर्वतीय वनपठारों में निःशंक विचरने वाले बहुत बड़ी गाय के जैसे आकार वाले राजस्थानी में 'रोज' के नाम से प्रसिद्ध गवय या 'नीलगाय' का वर्णन करते हुए कहा है कि गर्मियों में गवयसमूह पानी की खोज में इधर-उधर भटक रहे हैं—

भ्रमति गवययूथः सर्वतस्तोयमिच्छन् ।[2]

वानर

वानर भारत का चिर-परिचित वन्य जीव है। कालिदास ने वानरों के कई चित्र खींचे हैं। वानर नागरिकों के घरों, बाग-बगीचों में कैसे उत्पात मचाया करते हैं और लोग विशेषतः बच्चे उनसे कैसे डर जाते हैं, इसकी चर्चा करते हुए मालविकाग्निमित्र में कहा है :—

जयसेना—कुमारी वसुलक्ष्मीः कन्दुकमनुधावन्ती पिंगलवानरेण बलवत् त्रासिता ।[3]

अयोध्या की देवी का कथन है कि जंगली पुलिन्द लोगों की भांति

---

१. ऋतुसंहार, १-२३
२. वही, १-२३
३. मालविकाग्निमित्र, ४-१७

वानर मेरे उपवनों को उजाड़ रहे हैं :—

वन्यैः पुलिन्दैरिव वानरैस्ताः
क्लिश्यन्त उद्यानलता मदीयाः ।[1]

वानर स्वभाव से चंचल होता है। वह केवल चित्रों में ही स्थिर रह सकता है। वानर के इसी स्वभाव का चित्र देखिये—

आलेख्यवानर इव···निभृतम् आर्यमाणवकस्तिष्ठति ।[2]

महिष-जगली भैंसा

कवि ने महिषों के कई चित्र अकित किए हैं। दुष्यन्त शिकार की की मनाही करता हुआ कहता है कि जंगली भैंसों को अब पोखरों में खूब ऊधम मचाने दो —

गाहन्तां महिषा निपानसलिलम् ।[3]

हिरण

मृगों और उनकी न्यंकु, रुरु, आदि विविध जातियाँ कवि को अत्यन्त प्रिय हैं। शकुन्तला मृगछोने के कास से छिदे पांवों में हिंगोट का तेल लगाया करती थी। विदाई के समय वह मृगछोना उसका अंचल मुंह में पकडे उसका पीछा नहीं छोड़ना चाहता। ऐसे एक ही नहीं बीसियों सजीव चित्र अंकित हुए हैं, मृगों के हमारे इस कविकुलगुरु की तूलिका से। अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के आरम्भ में ही :—

ग्रीवाभंगाभिरामम्[4]

आदि श्लोक के द्वारा रथ के आगे दौड़ते हुए मृग का कैसा सजीव चलचित्र खींचा है, कवि ने।

जल-जन्तु

मध्यदेश के जल-जन्तुओं में कालिदास ने मछली, मेंढक, और नक्र मगरमच्छ आदि की चर्चा की है।

मछली

कवि ने ध्यान लगाए हुए वसिष्ठ ऋषि को उस तालाव के समान

---

१. रघुवंश, १६-१९
२. विक्रमोर्वशीय, २-९
३. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-६
४. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-७

बताया है जिसकी सब मछलियां सो गई हों :—

सुप्तमीन इव ह्रदः ।[१]

अभिज्ञानशाकुन्तल के पंचम अंक में 'शक्रावतार तीर्थ' में शकुन्तला की अंगुली से गिरी अंगूठी मछली द्वारा निगल लिए जाने और उसके धीवर के जाल में फंसने की चर्चा है।

मेंढक

गर्मी से व्याकुल साँप पास में बैठे मेंढक को भी पकड़ कर निगल नहीं रहा है :—

फणी न हन्ति मण्डूककुलं तृषाकुलः ।[२]

नक्र-मगरमच्छ

मगरमच्छ की चर्चा करते हुए कवि ने कहा है कि इन्दुमती ने जब अज को वर लिया तो स्वयंवर में आए हुए दूसरे राजालोग मन में कुढ़ते हुए भी ऊपर से ऐसे प्रसन्न दिख रहे थे जैसे कोई तालाब ऊपर से निर्मल हो पर उसके अन्दर मगरमच्छ छिपे पड़े हों :—

ह्रदाः प्रसन्ना इव गूढनक्राः ।[३]

पक्षी

कालिदास ने जलपक्षी, गायकपक्षी, सफाई करने वाले और शिकारी पक्षी तथा घरेलू पक्षी आदि इन सभी प्रकार के पक्षियों की चर्चा की है।

जलपक्षी-सारस

जलीय स्रोतों के आसपास विचरने वाले पक्षियों में सारस सबसे सुन्दर और शानदार पक्षी है। कालिदास ने रघुवंश के प्रथम सर्ग के 'श्रेणिबद्धाद्'[४] आदि श्लोक में कहा है कि उड़ती हुई सारसों की पातें आकाश में स्तम्भो के बिना ही बन्दनवार-सी बना देती हैं।

हंस

कवि ने कहा है कि रघु की शुभ्र कीर्ति हंसों की पंक्ति, तारागण, व

---

१. रघुवंश, १-७३

२. ऋतुसंहार, १-२०

३. रघुवंश, ७-३

४. वही, १-४१

कुमुदों के रूप में सर्वत्र व्याप्त हो गयी थी :–

हंसश्रेणीषु, तारासु ।[1]

कारण्डव-जलकुक्कुट या मुर्गाबी

कवि ने ग्रीष्मऋतु में तालाब के गरम पानी को छोड़कर कमलिनी की छाया में विश्राम करते कारण्डव का चित्र खींचा है :—

तप्तं वारि विहाय तीरनलिनिं कारण्डवः सेवते ।[2]

चक्रवाक-चकवा

निम्न श्लोक में कवि ने चकवे का नामोल्लेख ही नहीं उसके रंग रूप का वर्णन भी किया है :—

गोरोचनाकुंकुमवर्ण चक्र भण माम् ।[3]

बलाका

बलाका को बक-पंक्ति कहा जाता है। किन्तु बगुले कतारों में नहीं उड़ा करते। वास्तव में बलाका क्रौञ्च जाति का ही एक अन्य पक्षी है। बलाका जाति के पक्षी बर्षा ऋतु में गर्भाधान किया करते हैं :—

गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ।[4]

अर्थात् हे मेघ, तुम्हें देख कर वे बलाकाएं जिन्हें अपने गर्भाधान के समय का परिचय मिल गया होगा, आकाश में उड़ कर तुम्हारा स्वागत कर रही होगीं। इससे स्पष्ट है कि गर्भ धारण करने वाली ये कोई बलाका मादा पक्षी हैं।

चातक

कालिदास ने चातक को वर्षा-बूंदों को आकाश में ही गटक जाने में चतुर बताया है :—

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान् वीक्षमाणः ।[5]

---

१. वही, ४-१६
२. विक्रमोर्वशीय २-२२
३. मेघदूत, पूर्वमेघ-१०
४. वही, २३
५. अभिज्ञानशाकुन्तल, ५-२२

गायकपक्षी

कोकिल

कालिदास का साहित्य कलकण्ठी कोकिल की कूक से आद्यन्त मुखरित है। कोयल अपने अण्डे दूसरे पक्षियों के घोंसले में धर देती है और स्वयं उसे सेने का कष्ट नहीं उठाती। कोकिल की इस चतुराई की चर्चा कवि ने :—

स्वमपत्यजातमन्यैर्द्विजैः परभृतः किल पोषयन्ति ।[१]

में ठीक की है।

सारिका

सारिका या मैना को कवि ने 'मधुरवचना' कहा है—

पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पंजरस्थाम् ।[२]

अर्थात् हे मेघ, मेरी पत्नी पिंजरे में बैठी मधुरभाषिणी मैना से मेरे बारे में पूछ रही होगी।

शुक

कवि ने कण्वाश्रम के वृक्षों में घोंसला बनाकर रहने वाले तोतों की चर्चा की है—

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः ।[३]

घरों में पढ़ाए गए बातूनी तोतों की चर्चा भी कवि ने—

अनुवदित शुकस्ते मंजुवाक् पंजरस्थः ।[४]

में की है।

कपोत

कवि ने उज्जैन के भवनों के छज्जों पर आराम से सो रहे कबूतरों के लिए कहा है—

तां कस्यांचिद् भवनवलभौ सुप्तपारावतायाम् ।[५]

बिल्ली और कबूतर की चर्चा ऊपर हो चुकी है।

---

२. मेघदूत, उत्तरमेघ-२५
३. अभि० शाकु०, १-१४
४. रघुवंश, ६-७४
५. मेघदूत, पूर्वमेघ-४२

सुन्दरपक्षी

गरुड़

भारत के सुन्दर पक्षियों में भगवान् विष्णु के वाहन गरुड़ का अपना एक विशेष स्थान है। कवि ने—

गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनः ।[1]

के द्वारा गरुड़ और सांप के स्वाभाविक वैर की चर्चा की है। (पृष्ठ २५९ भी देखिये)

सारस

मेरी समझ में सारस सबसे सुन्दर पक्षी है। लम्बी पतली टाँगों तथा ऊपर उठी हुई वैसी ही लम्बी सुन्दर गर्दन, ललछोंहो चोंच व भूरे पंजों वाले सारसों की जोड़ियाँ वर्षा और शरद् में ताल तलैयों या पोखरों के आस पास के खेतों में अपनी धीर गम्भीर चाल से विचरती बड़ी ही भली लगती हैं। 'यहाँ जोड़ियां' कहने का आशय यह है कि 'सारस-दम्पती' सदा साथ रहते हैं। यदि उनमें से एक मर जाए तो दूसरा भो उसके विरह में छटपटा कर अपने प्राणों की बाजी लगा देता है। हिन्दी के महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने पति महाराज रतनसेन के विरह में तड़पती पद्मावती या पद्मिनी के मुख से यह कहला कर कि सारस तो एक पक्षी है, वह भी अपने प्रिय से कभी अलग नहीं रहता तो मैं भला उससे वियुक्त होकर कैसे जी सकती हूं।[2] इसी तथ्य को उजागर किया है।

ये सारस 'कैं कैं' की अपनी जोरदार आवाज से सारे वातावरण को अपनी उपस्थिति से परिचित करवा देते हैं। इस प्रकार सारस की यह ध्वनि भी उसकी एक प्रमुख विशेषता है। इसीलिए अधिकांश संस्कृत कवियों ने सारस के साथ उसकी बोली की भी चर्चा की है। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने कहा है कि—सर्दियों में चारों ओर इतना घना कोहरा छा जाता है कि—वहाँ नदियों के आस-पास कहीं सारस भी हैं, इस बात का पता तो उनकी बोलियों से ही चल पाता है।[3]

कालिदास ने भी कहा है कि महर्षि वसिष्ठ के आश्रम की ओर आगे

---

१. रघुवंश, ३-५७

२. सारस पंख रहे न निनारा, हौं कस जियूँ

३. वाष्पसंछिन्नसलिला रुतविज्ञेयसारसाः ।
हिमार्द्रबालुकैस्तीरैः सरितो भान्ति साम्प्रतम् ॥—वा० रामा०, अरण्य-१७-२४

बढ़ते हुए रथ में बैठे दिलीप और सुदक्षिणा की गर्दनें उपर 'कैं कैं' करते उड़ रहे सारसों की ओर अपने आप ही उठ जाया करती थी—

सारसैः कलनिर्ह्रादैः क्वचिदुन्नमिताननौ ।[१]

सारस सामान्यतया रहता तो जोड़ों में ही है, तथापि वर्षा और शरद् में इनके पंक्तिबद्ध झुण्डों के झुण्ड भी आकाश में दिख जाया करते हैं । कवि ने इससे पूर्ववर्ती—

श्रेणिबन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम् ।[२]

अर्थात् आकाश में उड़ते सारसों की कतारें उनके स्वागत में मानो बिना खम्भों के वन्दनवारें बनती जा रही थीं ।

श्लोक में भी यही तथ्य व्यक्त किया है ।

मोरों की भाँति सारस भी घरों में पाले जाया करते थे, कालिदास ने इसकी भी अनेकत्र चर्चा की है ।

मोर

मोर अपने अनुपम सौन्दर्य और व्यक्तित्व के कारण सदा से भारत का राष्ट्रीय पक्षी माना जाता रहा है । दशरथ ने मोर का शिकार नहीं किया, क्योंकि उसे अवध्य माना गया है—

मयूरं न स रुचिरकलापं बाणलक्ष्यी चकार ।[३]

कालिदास के काव्यों में मयूर सर्वत्र अपनी आभा बिखेर रहा है । घरों में मोर भी पाले जाते थे । कवि ने पालतू मोरों को 'भवनशिखि' कहा है ।

सफाई करने वाले क्रव्याद पक्षी

इस श्रेणी में पक्षियों में कवि ने कौवा और गीध की चर्चा की है । कव्वे वर्षा से पूर्व ही बस्तियों के पास ऊंचे पेड़ों पर घोंसले बना लिया । करते हैं, यह बताते हुए कवि कहता है—

नीडारम्भैः गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ।[४]

गीध

विक्रमोर्वशीय में कहा गया है कि गीध कंचुकी के हाथ में रखी पिटारी से लाल संगमनीयमणि को मांस का लोथड़ा समझकर ले उड़ा—

मणिरामिषशंकिना गृद्धेणाक्षिप्तः ।[५]

---

१. रघुवंश-१-४
२. वही
३. रघुवंश, ९-६७
४. मेघदूत, पूर्वमेघ-२५
५. विक्रमोर्वशीय, ५-१

इसी प्रसंग में आकाश में चक्कर काटते हुए गीध के कई चलचित्र खींचे गए हैं। इसी प्रकार कुमारसम्भव में कहा गया कि यह देखकर कि अब तारकासुर ससैन्य मारा ही जाने वाला है, आकाश में गीध मंडराने लगे—

निपाति गृध्रै रभिमौलिमाकुलैः।

शिकारी पक्षी

श्येन—बाज भारत का प्राचीन शिकारी पक्षी है। कवि ने—अज और प्रतिपक्षी राजाओं के बीच युद्ध में मारे गए गजसैनिकों के शिरों को बाजों के द्वारा ऊपर ही ऊपर से झपट्टा मार कर ले उड़ने की चर्चा की है—

हृतान्यपि श्येननखाग्रकोटि
व्यासक्तकेशानि चिरेण पेतुः।

अन्यत्र कहा गया है कि तारकासुर के साथ में युद्ध में देवगण ने इतने बाण छोड़े कि बेचारा आकाश छलनी छलनी हो गया और वहां मरे पड़े राक्षसों के मांस को खाने के लिए मंडराने वाले बाजों के डरावने शब्दों के रूप में मानो आकाश का ही रुदन सुनाई देने लगा हो, ऐसा लगने लगा—

विभिन्नं धन्विनां बाणैर्व्यथार्तमिव विह्वलम्।
ररास विरसं व्योम श्येनप्रतिरवच्छलात्॥

गरुड़

अन्यत्र कहा गया है कि जब राजा दशरथ राम लक्ष्मण आदि बरात के साथ जनक पुरी से अयोध्या की ओर वापस लौट रहे थे तो परशुराम जी के आगमन की पूर्व-सूचक एक ऐसी घनघोर आंधी आई जिसमें सूर्य के चारों ओर गर्द गुबार का एक मण्डल सा बन गया। इससे ऐसा लग रहा था जैसे गरुड़ से घायल कोई सांप अपनी मणि के चारों ओर कुण्डली मारे पड़ा हो—

वैनतेयशमितस्य भोगिनो भोगिवेष्टित इव च्युतोमणिः।[1]

इसी प्रकार अन्यत्र कहा गया है कि देवगण तारक के बाणों को वैसे ही काटकर गिराते जा रहे थे जैसे गरुड़ सापों को काट डालता है—

अह्लाय तार्क्ष्यनिवहा इव नागपूगान्
सद्यो विचिच्छुदुरलं कणशो रणान्ते।[1]

उल्लू

कालिदास ने कुमारसंभव में कहा है कि तारकासुर के डर के मारे

---

१. रघुवंश १७-४

देवगण उल्लुओं की भांति अंधेरी गुफाओं में जा छिपे थे—

दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु
लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम् ।

कीट पतंग

कालिदास ने सांप, दीमक, दंश, मच्छर, भौरा, मधुमक्खी, शलभ, टिड्डी, मकड़ी और इन्द्रगोप जैसे छोटे-बड़े कई कीट-पतंगों की चर्चा की है।

सांप

कवि ने सांप के जीवन व कार्यव्यापार से सम्बद्ध कई तथ्य व्यक्त किए हैं। कहा गया है कि दिलीप के वंशज वानप्रस्थ के लिए एक बार राज्यलक्ष्मी का परित्याग कर देने पर फिर उसे कभी नही स्वीकार कर सकते, जैसे सांप एक बार जिस केंचुल को उतार देता है, उसे फिर नहीं अपनाता—

न तु सर्प इव त्वचं पुनः प्रतिपेदे ।[1]

अन्यत्र कहा गया है कि छेड़ने पर ही सांप फन तानता है—

विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते ।[2]

दीमक

सांप के रहने का स्थान बनाती है दीमक। कवि ने इस दीमक या वल्मीक के बारे में कहा है कि तपः समाधि में लीन महर्षि कश्यप के आधे शरीर पर दीमक ने बांबी बना ली थी और छाती पर सांप की केंचुल चिपटी हुई थी—

वल्मीकार्धनिमग्नमूर्तिरुरसा सन्दष्टसर्पत्वचः ।[3]

मकड़ी

कवि ने कहा है कि तारक ने अमरावती से देवताओं को खदेड़ दिया था। उसके बाद कार्तिकेय के नेतृत्व में जब देवगण वहां पहुंचे तो उन्होंने देखा कि इन्द्र के वैजयन्त प्रासाद में मकड़ियों ने जाले तान दिए हैं—

स तन्तुजालाकुलरत्नजालम् ।[4]

अयोध्या से कुश के कुशावती में चले जाने पर अयोध्या के महलों के झरोखों

---

१. रघुवंश, ८-१३
२. अभि० शा०, ६-३१
३. वही, ७-११
४. कुमारसंभव, ३१-४१

में भी मकड़ियों ने जाले तान दिये थे—

तिरस्क्रियन्ते कृमितन्तुजालैः···गवाक्षः ।[1]

खद्योत

कवि ने वर्षा के इस चमकीले पतंग की चर्चा अप्रस्तुतरूप में करते हुए उसकी चमक को बिजली की कौंध के बराबर या उससे भी बड़ा सिद्ध कर दिया है—

खद्योतालिविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ।[2]

मच्छर आदि

कवि ने कहा है कि दिलीप नन्दिनी के ऊपर से डांस आदि मच्छरों को भगाकर उसको सुख पहुंचाते थे—

दंशनिवारणैश्च ।[3]

भ्रमर

दुष्यन्त का अनुमान है कि हम तो शकुन्तलाकी जातपाँत ही पूछते रहे, पर उसके मुख पर मडरा कर यह भ्रमर कृतार्थ हो गया—

वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकरहतास्त्वं खलु कृती ।[4]

शलभ-टिड्डी

कवि ने पीले-पीले शलभ-समूह-टिड्डीदल-से आसमान घिर आने की बात अप्रस्तुत रूप में कही है—

शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु[5]

इन्द्रगोप-वीरबहूटी

कालिदास ने वर्षा के प्रतीक मखमल के से सुकोमल इस लाल-लाल भोले-भाले क्षुद्र कीट वीरबहूटी का उल्लेख प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों रूपों में किया है। एक स्थान पर कहा गया है कि धरती के हरित पट पर इन्द्रगोप लाल नगों की सी शोभा दे रहा है—

विभाति शुक्लेतररत्नभूषिता
वारांगनेव क्षितिरिन्द्रगोपकैः ।[6]

---

१. रघुवंश, १६-२०
२. मेघदूत, उत्तरमेघ-२१
३. रघुवंश, २-५
४. अभि. शाकु०, १-२२
५. वही, १-३०
६. ऋतुसंहार, २-५

कवि के द्वारा इन्द्रगोप का अप्रस्तुत विधान प्रस्तुत की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ बन पड़ा है। विश्वामित्र जी के कहने से महाराज जनक को यह विश्वास हो गया कि आग की चिंगारी चाहे वीरबहूटी के बराबर ही होती है फिर भी उसमें जलाने की अपूर्व क्षमता होती है। वैसे ही श्रीराम छोटे होते हुए भी अपूर्व शक्तिशाली हैं—

श्रद्दधे त्रिदशगोपमात्रके दाहशक्तिमिव कृष्णवर्त्मनि।[1]

मध्यक्षेत्र का जन-जीवन

कालिदास भारत-भक्त कवि हैं। इस नाते उन्होंने केवल मध्यदेश के ही क्यों, पूरे भारत के समग्र जन-जीवन को अपने काव्यों में अभिव्यक्ति प्रदान की है। कवि की तत्त्वग्राहिणी दृष्टि समाज के सभी अंगों व वर्गों पर समान रूप से पड़ी है। वह मछली पकड़ने वाले धीवर का चित्र भी उतनी सजीवता से अंकित करता है, जितनी निष्ठा के साथ श्रोत्रिय ब्राह्मण का। चोर, डाकू लुटेरे व पुलिस कर्मचारी से लेकर राजा, संसद, मंत्रिमण्डल, सेनापति और ऋषिमुनियों तक के चित्र कवि की अमरतूलिका से अंकित हुए हैं। मानव के अर्धाङ्ग होने के नाते नारी का भारतीय समाज में सदा से गौरवपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय नारी की उस गरिमा को परमोच्च पद प्रदान कर कालिदास ने राष्ट्रकवि के कर्तव्य का सम्यक् निर्वाह किया है।

जनजातियां

कवि ने मध्यदेश के पुलिन्द व हिमालय के किरात जैसे आदिमजनों की चर्चा की है। किरातों का विवेचन पहले किया जा चुका है।[2]

पुलिन्द

विन्ध्याचल के पुलिन्द-शबर-भीलों की चर्चा रघुवंश और मालविकाग्निमित्र में हुई है। कुशावती से अयोध्या की ओर वापस लौटते हुए कुश को पुलिन्दों ने कुछ उपहार भेंट किये थे—

व्यलंघयद् विन्ध्यमुपायनानि
पश्यन्पुलिन्दैरुपपादितानि।[3]

अन्यत्र कहा गया है कि राजधानी न रहने से अयोध्या के उपवनों को

---

१. रघुवंश, ११-४२
२. देखिये पृ०-५२
३. रघुवंश, १६-३२

जंगली पुलिन्दों की भाँति वानरों ने उजाड़ डाला—

वन्यैः पुलिन्दैरिव वानरैस्ताः
क्लिश्यन्त उद्यानलता मदीयाः ।[1]

विन्ध्याचल के पुलिन्द, शबर, भील आदि जनों को 'आटविक' कहा गया है। ये लोग जहां लूटमार किया करते थे, वहां साथ ही भूले भटके लोगों को सही मार्ग दिखाकर उन्हें अपने ठिकाने पर पहुंचा देने का काम भी ये ही लोग करते थे। मालविकाग्निमित्र में—

तूणीरपट्टपरिणद्धभुजान्तराल—
मापार्ष्णिलम्बिशिखिबर्हकलापधारि।
कोदण्डपाणिविनदत्प्रतिरोधकाना-
मापातदुष्प्रसहमाविरभूदनीकम् ॥[2]

के द्वारा कवि ने शबर, पुलिन्द आदि विन्ध्य के निवासी जनों का प्रत्यक्ष चित्र अंकित किया है। साथ ही यह भी कहा गया है—

सेयमाटविकेभ्यो वीरसेनं वीरसेनाच्च देवीं गता ।[3]

अर्थात् उन्हीं आटविकों (शबर पुलिन्दों) ने मालविका को वीरसेन के हाथों सुरक्षित रूप से पहुंचा दिया था, जिसने उसे महाराजा धारिणी के पास भेज दिया।

निषाद

भारतीय जनजातियों में निषाद भी अन्यतम हैं। उत्तरभारत में ये लोग मुख्यतः नौकानयन का धन्धा किया करते हैं। कवि ने निषादों का अनेकत्र उल्लेख किया है। श्रीराम ने विमान में से सीताजी को गंगातट पर निषादों की बस्ती (शृंगवेरपुर) बताई और कहा कि यहीं पर मैंने अपनी जटाएं बाँधी थी—

पुरं निषादाधिपतेरिदम् तद्[4]

धीवर

धीवर या मछुआरे भी आदिम जनजातियों में अन्यतम हैं। कवि ने

१. देखिये पृष्ठ-२८५
२. मालविकाग्निमित्र, ५-१०
३. वही, ५-११
४. रघुवंश, १३-५९

अभिज्ञानशाकुन्तल के षष्ठ अंक में मछली के पेट से निकली हुई दुष्यन्त की अंगूठी को बेचते हुए धीवर और पुलिस की बातचीत के माध्यम से धीवरजनों के आकार-प्रकार तथा व्यवहार का सही सही चित्र दिखाया है—

पुरुष—अहं शक्रावताराभ्यन्तरालवासी धीवरः।[1]

अन्यत्र कहा गया है कि कुश के नौका-विहार के लिए धीवरों ने जाल डालकर सरयू में से मगरमच्छों को बाहर निकाल दिया था—

आनायिभिस्तामपकृष्टनक्राम्।[2]

नाग

'नाग' जातियां कई थीं। भारशिव नाग नामक इतिहास प्रसिद्ध कुशाणों के उच्छेता नागवंश के राजा ब्राह्मण थे। उन्होंने काशी के घाट पर दश अश्वमेध यज्ञ किये थे, इसीलिये उस घाट का नाम 'दशाश्वमेध' है। इसी प्रकार जिन जनजाति के 'नागों' की भी प्राचीन साहित्य में अनेकत्र चर्चा हुई हैं, वे इनसे सर्वथा भिन्न हैं। हस्तिनापुर के आस-पास आर्यों के पहुंचने से पूर्व तक 'नाग' लोग रहते थे। इसीलिये उस नगर को 'नागसाह्वय' या 'हस्तिनापुर' कहते थे, ऐसा कहा गया है। कालिदास ने कहा है कि कुमुद नामक 'नाग' ने अपनी बहन कुमुद्वती का कुश के साथ विवाह किया था—

इत्थं नागस्त्रिभुवनगुरोरौरसं मैथलेयं लब्ध्वा बन्धुम्।[3]

इस प्रकार किरात, शबर, पुलिन्द आदि जनजातियों के साथ ही कवि ने 'निषाद' जैसे सभ्य और सामाजिक 'नाग' जैसे सुसंस्कृत जनों की भी चर्चा की है। ये नाग तो इतने सुसभ्य थे कि आर्य नरेश इनकी कन्याओं के साथ विवाह कर उन्हें अपनी पटरानी तक बना लिया करते थे। (नगालैण्ड के निवासी नागलोग उन्हीं से सम्बद्ध हैं, या ये उनसे भिन्न हैं, इस विषय में लेखक को कुछ ज्ञान नहीं)।

चोर, डाकू और लुटेरे

यद्यपि अतिथि के राज्य के व्यपदेश से अपने युग के गुप्त-सम्राटों के सौराज्य की चर्चा करते हुए कवि ने कहा है कि उसके समय में जनता को चोर डाकुओं का कोई भय नहीं था और व्यापारियों के सार्थवाह या काफिले

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल, ६-१ से पहले
२. रघुवंश, १६-५२
३. वही, १६-८८

पर्वतों तथा दुर्गम पथों में भी घर की तरह ही निःशंक विचरते थे—

सार्थाः स्वैरं स्वकीयेषु चेरुर्वेश्मस्विवाद्रिषु ।[1]

तथापि मूलोच्छेद तो आजतक कभी किसी का हुआ नहीं। तदनुसार कवि ने विक्रमोर्वशीय में हंस को उर्वशी की चाल का चोर बताया है—

सकलं चौर गतं त्वया गृहीतम् ।[2]

कवि ने—

तपो रक्षन्स विघ्नेभ्यस्तस्करेभ्यः श्च सम्पदः ।[3]

के द्वारा चोरों से लोगों की सम्पत्ति के सुरक्षित रहने की बात तो कही है।

पाटच्चर

'पाटच्चर' और 'पश्यतोहर' वास्तव चोर नहीं लुटेरा है, जो सामने खड़ा होकर लूट लेता है। अभिज्ञानशाकुन्तल में पुलिस कर्मचारी मछुए को 'पाटच्चर' कहता है—

द्वितीयः — पाटच्चर किमस्माभिर्जातिः पृष्टा ।[4]

मार्ग में लूटमार करने वाले डाकुओं या लुटेरों की चर्चा ऊपर पुलिन्दों के प्रसंग में हो चुकी है। कवि ने 'दस्यु' शब्द का प्रयोग भी रघुवंश के निम्नोधृत श्लोक में किया है।

व्याध-वागुरिक

कवि ने शिकार के समय हांका लगाने वाले व्याध वागुरिक तथा दूसरे लोगों की भी चर्चा की है। राजा दशरथ के मृगयाविहार का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि दशरथ तब उस जंगल में पहुंच गए जहां वागुरिक लोग सिंह आदि जन्तुओं को घेरने के काम में आने वाले जाल व शिकारी कुत्तों के साथ पहले से ही तय्यार थे। जहां न तो अग्नि का और न दस्युओं (लुटेरों) का ही भय था। और धरती घोड़ों की दौड़ के लिए उपयुक्त व ठोस थी और हिरण तथा गवय (रोज) आदि जंगली जोव भरे पड़े थे। तथा बीच-बीच में

---

१. रघुवंश, १७-६४
२. विक्रमोर्वशीय, ४-३३
३. रघुवंश, १७-६५
४. शाकुन्तल ६ प्रवेश तक
५. रघुवंश, ९-५३

जहां पानी से भरे ताल तलय्या आदि भी जंगलो जीवों की सुविधा के लिए विद्यमान थे—

स्थरतुरंगम भूमि निपानवन्
मृगनयो गवयोपचितं वनम् ।
श्वगणिवागुरिकैः प्रथमास्थितं
व्यपगतानलदस्यु विवेश सः ।[1]

अभिज्ञान शाकुन्तल में भी—

विदूषक—दास्याः पुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रति-बोधितोऽस्मि ।[2]

के द्वारा इन व्याध, बहेलियों आदि जन जातियों की चर्चा की गई है।

शौण्डिक-कलाल

कालिदास ने पिछड़े वर्ग लोगों में शौण्डिक या कलाल की चर्चा भी अभिज्ञान शाकुन्तल में की है। श्याल (कोटवाल) धीवर से कहता है कि अंगूठी के बदले महाराज से तुझे इतना बड़ा इनाम मिला है, तो आ अब शौण्डिक की दूकान पर चलकर मदिरा की साक्षी में अपनी मित्रता को पक्का कर लें—

धीवर महत्तरस्त्वं प्रियवयस्क इदानीं मे सवृत्तः । कादम्बरीसाक्षिकमस्माकं सौहार्दमिष्यते । तच्छौण्डिकापणमेव गच्छामः ।[3]

वर्णाश्रम

वेद में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों की चर्चा है।[2] वेदोक्त 'पंचजन' शब्द की व्याख्या करते हुए निरुक्त में कहा गया है कि चारों वर्णों के लोग तथा निषाद ये पांचों मिलकर 'पंचजन' कहलाते हैं।[4]

मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों में तथा गीता में चारों वर्णों के गुण, कर्म, स्वभाव का विवेचन सम्यक्तया किया गया है। कालिदास की वेदादि शास्त्रों में प्रतिपादित धर्म एवं वर्णाश्रम व्यवस्था पर परम आस्था है।

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल, ६-१
२. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् । आदि यजुर्वेद-३३,११
३. चत्वारो वर्णा निषदः पंचमः, निरुक्त—३-२
४. रघुवंश, १७-६५

कालिदास ने —

यथास्वमाश्रमैश्चक्रे वर्णैरपि षडंशभाक् ।[1]

के द्वारा चारों वर्णों और आश्रमों की चर्चा की है।

अन्यत्र रघु को वर्णाश्रम का संरक्षक बताया गया है—

वर्णाश्रमाणां गुरवे स वर्णी ।[2]

चारों वर्णों की स्पष्ट चर्चा करते हुए कवि ने कहा है—

आत्मोत्मोद्भवे वर्णचतुष्ठयस्य ।[3]

शूद्र

कालिदास ने शूद्र शब्द की चर्चा भी एक प्रसंग में की है—

आत्मानं शम्बुकं नाम शूद्रम् ।

वैश्य

'कृषिगोरक्षवाणिज्य' रूपी 'वार्ता' में निपुण वैश्यों का वर्णन कालिदास ने अनेकत्र किया है। भोली-भाली कृषक ललनाओं के लिए कवि का कथन है—

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ॥[4]

इसी प्रकार कवि वणिग्जन तथा उनके अन्यतम प्रमुख धन्धे 'व्यापार' व्यवसाय की चर्चा भी की है—

तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति ।[5]

क्षत्रिय

क्षत्रिय के लिए कवि का निर्देश है—

क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः
क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः ।[6]

---

१. रघुवंश, ५-१९
२. वही, १८-१२
३. वही, १५-५०
४. मेघदूत, पूर्वमेघ-१६
५. मालविकाग्निमित्र, १-१७
६. रघुवंश, २-५३

ब्राह्मण

कवि ने ब्राह्मणों के गुणकर्म स्वभाव का वर्णन पदे-पदे किया है। मालविकाग्निमित्र में विद्वान् ब्राह्मणों को राजाओं द्वारा दी जाने वाली नित्य दक्षिणा की चर्चा करते हुए सारिका कहती है—

ब्राह्मणानां नित्यदक्षिणां मासिकीं पुरोहितस्य हस्तं प्रापयिष्यामि ।[1]

महाराज अतिथि के लिये कहा गया है कि उन्होंने इतने बड़े-बड़े यज्ञ किये और उनमें ऋत्विजों को इतनी बड़ी दक्षिणाएं दीं कि लोग उन्हें ही कुबेर समझने लगे।

कालिदास के अपने (गुप्त) युग में बौद्धयुग में विलुप्त ब्राह्मणों का वर्चस्व पुनः प्रतिष्ठित हो गया था। फलतः ब्राह्मणों को ग्रामदान की परम्परा धड़ल्ले से चल निकली।

इस प्रकार ब्राह्मणों को राजाओं के द्वारा दान में दिये जाने वाले ग्रामों की भी चर्चा कवि ने अनेकत्र की है। जैसे—

ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु यज्वनाम् ।[2]

इसी प्रकार कहा है कि महाराज कुश अपनी नई राजधानी कुशावती को ब्राह्मणों को दान कर के वापस अयोध्या लौट आए—

कुशावतीं श्रोत्रियसात्स कृत्वा
यात्रानुकूलेऽहनि सावरोधः ।
अनुद्रुतो वायुरिवाभ्रवृन्दैः
सैन्यैरयोध्याभिमुखं प्रतस्थे ॥[3]

कवि ने अपने तीनों नाटकों में विदूषकों के माध्यम से मिष्ठान्न मोदकप्रिय भोजनभट्ट ब्राह्मणों के भी कई चित्र खींचे हैं।

आश्रम

कवि आश्रम-व्यवस्था का अनन्य भक्त है। जैसे—

न हि सति कुलधुर्ये सूर्यवंश्या गृहाय ।[4]

इस प्रकार महात्मा बुद्ध एवं जैन तीर्थंकरों ने सुकोमलमति बालक बालिका और युवक युवतियों को भी भिक्षु भिक्षुणी या क्षपणक बनाना शुरू

---

२. रघुवंश, १-४५

३. वही, ७-७१

४. अभि०शाकु०, ४-२०

कर आश्रम व्यवस्था का विलोप सा कर डाला था, यदि उसका प्रतिरोध न किया जाता तो भिक्षु-संघों की बढ़ती जनसंख्या के साथ गृहस्थों की सन्तति-परम्परा के उच्छिन्न होने का भय राष्ट्र के सामने उपस्थित हो गया था। क्रांत-दर्शी महाकवि कालिदास ने राष्ट्र के समक्ष उपस्थित उस महासंकट को के निवारण के लिये अपनी सारी शक्ति लगा दी और आश्रम व्यवस्था का पुनरुद्धार कर दिखाया। कवि बार-बार समझाता है कि बुढ़ापे से पहले गृहस्थ छोड़ने का किसी को कोई अधिकार नहीं है।

इसी प्रकार महर्षि कण्व का कथन है—

शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ।[1]

अर्थात् अपने पुत्र को राज्यभार सौंप देने के बाद अपने पति के साथ तुम फिर इस आश्रम में लौट आओगी। कवि ने रघुवंश के आरंभ में ही—

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयेषिणाम् ।
वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनूत्यजाम् ॥[2]

कहकर चारों आश्रमों और उनके लिए विहित कार्यों को सूत्रबद्ध कर दिया।

राजा-प्रजा

कालिदास ने कहा है कि प्रजा की प्रसन्नता ही राजा का मुख्य कर्तव्य है—

राजा प्रकृतिरंजनात् ।[3]

गुप्त युग में जिस के रथ के चक्र की गति पृथ्वी पर कहीं न रुके उस 'सम्राट' को 'चक्रवर्ती', अप्रतिरथ, चतुरन्तेश, और चतुरन्ता पृथ्वी का शासक नामों से अभिहित किया गया है। जैसे—

सम्राजश्चरणयुगं प्रसादलभ्यम् ।[4]

और यह कि—

पुत्रमेवं गुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि ।[5]

आगे फिर महर्षि मारीच दुश्यन्त को आशीर्वात देते हैं कि तुम्हारा पुत्र यह

---

१. रघुवंश, १-८
२. वही, ४-१२
३. रघुवंश, ४-८८
४. अभि० शाकु०, १-१२
५. रघुवंश, १७-१३

भरत भावी चक्रवर्ती है और सातो समुद्रों से घिरी सप्तद्वीपा वसुमती पर यह अपनी विजय पताका फहराएगा—

मारीच—तथा भाविनमेनं चक्रवर्तिनमवगच्छतु भवान्। पश्य—
रथेनानुद्घातस्तिमितगतिना तीर्णजलधिः
पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधामप्रति रथः।

राज्याभिषेक

कवि ने कहा है कि ब्राह्मणगणों द्वारा अथर्ववेद के मन्त्रों एवं विधि-विधान से राजा का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ करता था—

पुरोहितपुरागास्तं जिष्णुं जैत्रैरथर्वभिः।
उपचक्रमिरे पूर्वमभिषेक्तुं द्विजातयः॥[1]

इसी प्रकार श्रीराम के राज्याभिषेक का भी कवि ने सजीव चित्र अंकित किया है।

सामन्त

उस युग में बड़े-बड़े राजाओं के अधीनस्थ कई सामन्त (जागीरदार आदि) भी होते थे। कवि ने अपनी अवन्तिका के राजा की प्रशंसा में सुनन्दा से कहलाया है कि ये महाराज जब युद्ध विजय के लिए निकलते हैं, तो इनके घोड़ों के चलने से उड़ी धूल से इनके सामन्तगणों की मुकटमणियों की चमक धुंधली पड़ जाती है—

कुर्वन्ति सामप्तशिखामणीनाम्
प्रभाप्ररोहास्तमयं रजांसि।[2]

मन्त्री, सचिव, संसद, सेनापति, पुरोहित, व नगररक्षक-कोटवाल

कालिदास ने राजा के सहायक मन्त्री, सचिव, मन्त्रिपरिषद, पुरोहित, सेनापति, नगर-रक्षक-कोटवाल आदि की भो यथास्थान चर्चा की ही है और कहा हैं कि राजा मन्त्रिमण्डल के परामर्श से ही राजकाज चलता था—

मन्त्रः प्रतिदिनं तस्य बभूव सह मन्त्रिभिः।[3]

अभिज्ञान शाकुन्तल के द्वितीय अंक में राजा तथा सेनापति की भी चर्चा है।

---

१. रघुवंश, ६-३३
२. वही, १७-५०
३. रघुवंश, १६-२४

संसद

कहा गया है कि पुरानी राजधानी अयोध्या की अधिदेवता ने रात्रि में कुश को जो अपनी व्यथाकथा सुनाई उससे उन्होंने अपनी संसद को अवगत करा दिया—

तदद्‌भुतं संसदि रात्रिवृत्तम् ।[१]

और पांचवे अंक में राजा और पुरोहित की बातचीत है। इसी प्रकार मालविकाग्निमित्र के पंचमांक में भी अग्निमित्र के सेनापति वोरसेन की चर्चा है और पुरोहित का उल्लेख भी हुआ है।

व्यापार और व्यापारी

कालिदास ने गुप्त युग की महती समृद्धि की सूचक व्यापारिक उन्नति के कई चित्र खींचे हैं। उन्होंने कहा है कि गुप्त युग के नगरों के हाट-बाजार बहुमूल्य विक्रेय वस्तुओं से भरे पड़े थे—

पूरावभासे विपणिस्थपण्या
सर्वांगनद्धाभरणेव नारी ॥[२]

सामुद्रिक व्यापार

अभिज्ञान शाकुन्तल में कहा गया है—

समुद्रव्यवहारी सार्थवाहो धनमित्रो नाम ।[३]

इससे गुप्त युग में विदेशों के साथ भारत के सामुद्रिक व्यापार की झलक मिलती है। इसी प्रकार रघुवंश में अतिथि के राज्य में समुद्रों में व्यापार मार्ग के निर्विघ्न होने की चर्चा की है—

यादोनाथः शिवजलपथः कर्मणे नौचरणम् ।[४]

आश्रम-तपोवन

कालिदास के काव्यों में वर्णित भारत के जन-जीवन में ऋषिमुनियों के आश्रमों का अपना एक विशेष स्थान है। कवि ने इन आश्रमों या तपोवनों के कई मोहक चित्र अंकित किये हैं। रघुवंश के—

वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहारैः ।[५]

---

१. रघुवंश, १६-२४
२. वही, १६-४१
३. अभि०शाकु०, ६-२२
४. रघुवंश, १७-८१
५. वही, १-४६

से लेकर—

धूमैराहुतिगन्धिभिः।[१]

तक पांच श्लोकों में वसिष्ठाश्रम की तथा अभिज्ञानशाकुन्तल के सातों के सातों अंकों में कण्व और मरीचि के आश्रमों की छवि नानाविध कोणों से अंकित की गई है। कहा गया है कि वसिष्ठ जी के शिष्यों के अध्ययन स्वर से दिलीप की आँखें ब्राह्म मुहूर्त में ही खुल गईं—

तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानाम्।[२]

इस प्रकार आश्रमों में अध्ययनाध्यापन की सामान्य चर्चा के साथ ही कवि ने यह भी कहा है कि ऋषिकुलों में वहां वेद-वेदांग पढ़ाए जाते थे।

महर्षि वाल्मीकि ने लवकुश को सांगवेद पढ़ाए थे—

सांगं च वेदमध्याप्य।[३]

इसी प्रकार वरतन्तु ऋषि के आश्रम में पढ़ कर आया कौत्स कहता है कि मैंने वहां रहकर अपना विद्याध्ययन समाप्त किया है—

समाप्तविद्येन मया।[४]

वैद्य

कालिदास ने रघुवंश में अग्निवर्ण को भिषक् या वैद्यों का कहा न मानने वाला बताया गया है—

भिषजामनाश्रवः[५]

और कहा गया है कि वैद्यगण क्षयग्रस्त उस विलासी राजा को बचा नहीं पाये—

वैद्यानपरिभाविनं।[६]

मालविकाग्निमित्र के पञ्चम अंक में 'ध्रुवसिद्धि' इस अन्वर्थक नाम वाले वैद्य की चर्चा करते हुए राजा कहता है—

अचिरात्त्वां वैद्यश्चिकित्सयिष्यति।

चित्रकार

कवि ने शौकिया चित्रकार तो कई बताए हैं। महाराज दुष्यन्त बहुत

---

१. रघुवंश, १-४६ से ५३
२. वही, १-१२
३. वही, १५-३३
४. वही, १६-४६
५. वहीं, १६-३३

अच्छे चित्रकार के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। मेघदूत का यक्ष भी गेरू आदि धातुओं से चट्टान पर ही अपनी प्रियतमा का सजीव चित्र बना देता है—

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्।[1]

साथ ही कवि ने—

चित्रद्विपाः पद्मवनावतीर्णाः
करेणुभिर्दत्तमृणालभङ्गाः।
नखांकुशाघातविभिन्नकुम्भाः
संरब्धसिंहप्रहृतं वहन्ति॥[2]

में यह कहकर कि अयोध्या के भवनों की दीवारों पर कमलवनों में उतरते हाथियों को सचमुच का हाथी समझकर सिंहों ने उनके मस्तक फाड़ डाले हैं, अजन्ता की चित्रकला को मूर्त रूप में अभिव्यक्ति प्रदान की है।

निश्चित ही ये सजीव चित्र पेशेवर चित्रकारों के द्वारा निर्मित होंगे। आज अजन्ता के भित्ति चित्र कालिदास की चित्रकला-सम्बन्धी इस उक्ति का जीता जागता प्रमाण उपस्थित कर रहे हैं।

गुप्तकाल में काव्य चित्र व संगीत आदि अन्यान्य ललित कलाओं के साथ मूर्तिकला भी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई थी। एलोरा और एलिफेंटा के गुहामन्दिरों में जिस मूर्तिकला की भव्यता के दर्शन होते हैं, और दशपुर (मन्दसौर) की भगवान शंकर की अष्टमूर्ति के आठों मुखों में जैसी सजीवता व लालित्य झलक रहा है, उससे उस युग की मूर्ति कला की परमोत्कृष्ठता का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त हो जाता है। गुप्त-युग की मूर्तियों में भगवान् शंकर के साथ भागवान् आदिवराह की भी अनेक विशाल मनोहर प्रतिमाएं मिली हैं। विदिशा की नीच (उदय) गिरि गुहा-समूह की भी प्रतिमाओं में महावराह-मूर्ति दर्शकों का ध्यान अनायास अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। साथ ही मन्दिरों और प्रासादों में उत्कीर्ण मूर्तियों से भी स्तंभों व भित्तियों को अलंकृत किया जाता था।

कालिदास ने कहा है कि अयोध्या के उजड़ जाने पर वहां के भवन-स्तम्भों में उत्कीर्ण सुन्दरियों की प्रतिमाओं के रंग धुंधले पड़ गए हैं, उनके ऊपर पड़ी सांप की केंचुली ऐसी लगती है, मानों उन मूर्तियों ने अपने स्तनों

१. मेघदूत, उत्तरमेघ,-४७
२. रघुवंश, १६-१६

पर बारीक उत्तरीय डाल लिये हैं—

स्तम्भेषु योषित्प्रतिमायतना
मुत्क्रान्तवर्णक्रमधूसरणाम् ।
स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति सङ्गा
न्निर्मोकपट्टाः फणिभिर्विमुक्ताः ।[1]

नट-नर्तक

कलिदास ने मालविकाग्निमित्र में गणदास और हरदत्त नामक दो पेशेवर नर्तक या नृत्याचार्यों की चर्चा करते हुए उन्हें अपनी-अपनी कला के प्रदर्शन के लिए आतुर दिखाया है। कालिदास के सभी नाटकों का आरम्भ नटों से ही होता है। इससे सिद्ध होता है कि कालिदास के समय में पेशेवर नट और नर्तक भी होते थे।

इसी प्रकार कवि ने मध्यक्षेत्र, मध्यदेश या आर्यावर्त के रूप में समग्र भारत के जन-जीवन से सम्बद्ध प्रमुख भौगोलिक तत्त्वों के अपने काव्यों में यथार्थ चित्र अंकित किए हैं।

वेश्याएं-नर्तकियां

कालिदास के युग में नृत्य-कला अत्यन्त समृद्ध थी, यह तो मालविकाग्निमित्र के उक्त प्रसंग से ही स्पष्ट है। साथ ही कवि हमें यह भी स्पष्ट रूप से बताता है कि यहां राजकुलों और सम्भ्रान्त परिवारों में नृत्याचार्यों के द्वारा राजघरानों की बालिकाओं को नृत्यवाद्य आदि की शास्त्रीयविधि से शिक्षा दी जाया करती थी। वहीं साथ में व्यावसायिक (पेशेवर) नर्तकियां भी अपनी कला का प्रदर्शन किया करती थीं। रघुवंश में कहा गया है कि रघु के जन्म के आनन्दावसर पर राजमहलों में ही, नहीं नगर में भी स्थान-स्थान पर वारवधूओं के नृत्यसंगीतों आदि के आयोजन होने लगे—

प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम् ।[2]

परिधान

कवि ने रेशमी, सूती और ऊनी दुकूल, कूर्पासक आदि कई परिधानों की चर्चा की है। पुरुषों के दुपट्टे-दुकूल की चर्चा करते हुए कहा गया है कि

---

१. रघुवंश १६-१७
२. वही, ३-१६

अज को इन्दुमती के भाई भोज ने विवाह से पूर्व 'दुकूलयुग्म' भेंट किया था :—

भोजोपनीतं च दुकूलयुग्मं जग्राह।[1]

कूर्पासक-स्त्रियों की चोली

कवि ने स्त्रियों के स्तनों को सुन्दर कूर्पासक या चोली से ढका बताया है :—

मनोज्ञकूर्पासकपीड़ितस्तना:।[2]

कौशेय-रेशमी साड़ी

इसी प्रसंग में कवि ने :—

सरागकौशेयकभूषितोरव:।[3]

आदि के द्वारा स्त्रियों की जांघों के चारों ओर लिपटी 'कौशेयक' या रेशमी साड़ी की चर्चा भी की है। स्मरण रहे कोश (काकून या रेशम के कीड़े) से उत्पन्न होने वाले तन्तु से निर्मित होने के कारण संस्कृत में रेशम को 'कौशेय' कहा गया है। 'कौशेयं कृमिजम्' इत्यादि प्रसिद्ध श्लोक में स्पष्ट रूप से कौशेय को 'कृमिज' कहा गया है। और—

चीनांशुक या रेशमी वस्त्र

कवि ने रेशमी वस्त्रों के लिये चीनांशुक तथा 'कौशेय' जैसे प्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग करते हुए यह स्पष्ट कर दिया है कि रेशम मूलतः चीन से आया था। और यह भी कि यह 'रेशम किसी कृमि के कोष' से उत्पन्न होता है। कुमारसंभव के :—

तच्चीनांशुकै: कल्पितकेतुमालम्।[4]

में तथा अभिज्ञानशाकुन्तल के :—

चीनांशुकमिव केतो:।[5]

में बताया गया है कि प्राचीन युग में भी राजकीय झण्डे प्राय: रेशम के बनाये जाते थे।

---

१. रघुवंश, ७-१८
२. ऋतुसंहार, ५-८
३. वही
४. कुमारसंभव, ७-३३
५. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-३२

रेशम के कीड़े

शहतूत आदि के पत्तों पर पलते हैं, उन पत्तों पर पले कीड़ों से निकलने के कारण कालिदास ने रेशम को 'पत्रोर्णा' भी कहा है। यह 'पत्रोर्णा' 'ऊन' नहीं है। जैसे—

अग्निमित्र का कथन है—'मालविका को धारिणी की दासी बनाना ऐसा था, जैसे कोई शाल दुशाले 'पत्रोर्णा' से अंगोछे का काम ले :—

स्नानीयवस्त्रक्रियया पत्रोर्णवोपयुज्यते ।[२]

क्षौम-शण या अलसी के रेशे से बना वस्त्र

कालिदास ने :—

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुधवलं सांगल्यमाविष्कृतम् ।[१]

आदि के द्वारा कहा है कि शकुन्तला की विदाई के समय किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के समान शुभ्र 'क्षौम' वस्त्र प्रदान किया था।

कपास के सूती वस्त्र

रेशमी, ऊनी तथा शण के वस्त्रों की तो कवि ने अनेकत्र चर्चा की है, किन्तु सूती वस्त्र को उसने वस्त्र सामान्य में परिगणित कर सूती वस्त्रों का कहीं पृथक् उल्लेख नहीं किया। किन्तु उपर्युक्त 'स्नानीय वस्त्र' निश्चित ही सूती वस्त्र ही है। साथ ही कवि ने :—

तूलराशाविबाग्निः ।[३]

में कपास या रुई का नामोल्लेख भी स्पष्ट रूप में किया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिदास ने अपने काव्यों में सूती, ऊनी, और रेशमी तीनों प्रकार के वस्त्रों से बने दुकूल, कूर्पासक आदि परिधानों के साथ वल्कल वस्त्रों का भी यथास्थान उल्लेख किया है।

और यह बारीक मलमल

भारत की जगद्विख्यात बारीक मलमल की चर्चा करते हुए कालिदास ने कहा है कि महाराज की रनवास की स्त्रियाँ गर्मियों में ऐसी बारीक साड़ियां पहने हुई थीं, फूंक की तो बात ही क्या मात्र श्वास-प्रश्वास से ही जिनके छोर हिलने डुलने लगते थे :—

निश्वासहार्यांशुकमाजगाम
घर्मः प्रियावेशमिवोपदेष्टुम् ।[४]

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल, ४-५
२. मालविकाग्निमित्र, ५-१२
३. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-१०
४. रघुवंश १६-४३

राष्ट्रीय मार्ग

कवि ने मध्यदेश को भारत के पूर्व, पश्चिम, दक्षिण आदि विभिन्न भागों या क्षेत्रों से जोड़ने वाले विविध मार्गों की भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चर्चा की है। इनमें से निम्न प्रमुख है :—

१. रघु का दिग्विजय मार्ग —

रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में कवि ने कहा है कि रघु की सेनाएं अयोध्या से चल कर सुह्म होती हुई बंग (बंगला देश) में गंगा के मुहाने तक पहुंची थीं। वहां से वापसी में समुद्र तट के साथ-साथ उत्कल होती हुई कलिंग और वहाँ से पाण्ड्य देश से होती हुई कावेरी समुद्र संगम तक जा पहुंची। वहां से उत्तराभिमुख होने पर मलय व दर्दुर पर्वत के बीच में से होकर केरल प्रदेश तथा सह्य पर्वत शृंखला की समुद्र के साथ सटी तलहटी में चलते हुए त्रिकूट पर्वत के आगे अपरान्त भृगुकच्छ या भड़ोंच आ पहुंची।

अपरान्त से आगे का मार्ग सन्दिग्ध है—क्योंकि कवि ने यही कहा है कि यहां से रघु की सेनाएं स्थल मार्ग से ईरान की ओर बढ़ गईं। भडोंच तथा गुजरात से ईरान तक पहुंचने के दो मुख्य मार्ग थे। उनमें से किसी एक का रघु की सेनाओं ने अवलम्बन किया होगा। ईरान से रघु के सैनिक वंक्षु नदी के आगे कम्बोज जा पहुंचे। कम्बोज से रघु की सेनाओं ने वापिस लौटते समय सम्भवतः-गंगोत्तरी के पास भृगुपथ दर्रे को पार कर आगे का मार्ग अपनाया, यह ठीक से नहीं कहा जा सकता।

२. लंका से अयोध्या—विमान तथा पैदलमार्ग

कालिदास ने उक्त मार्ग के बारे में श्री राम के अयोध्या से लंका पहुंचने और वहां से विमान मार्ग से वापस आने के प्रसंग में चर्चा की है। अयोध्या से लंका पैदलपथ का रघुवंश के द्वादश सर्ग में तथा वापसी में विमान मार्ग का त्रयोदश सर्ग में 'चित्रण' है।

३. मेघमार्ग

कालिदास ने मेघदूत में रामगिरि से कनखल और वहां से **अलका तक मेघ मार्ग का वर्णन** इस प्रकार किया है :—रामगिरि, आम्रकूट-(पचमढ़ी) विदिशा, उज्जयिनी और दशपुर (मन्दसौर) यहां तक तो मार्ग स्पष्ट है। दशपुर से सीधे मेघ सरस्वती नदी कुरुक्षेत्र और कनखल तक जा पहुंचता है। सम्भवतः दशपुर से पुष्कर और वहाँ से इन्द्रप्रस्थ होते हुए कुरुक्षेत्र का मार्ग कवि को अभीष्ट हो। कनखल के आगे का स्थलीय मार्ग हिमालय के जंगलों में खो गया और मेघ आकाश में उड़कर सीधे कैलास की निकटवर्ती अलकापुरी जा पहुंचा।

४. कुशावती तथा कुण्डिनपुर से अयोध्या का मार्ग

कवि ने राजकुमार अज के अयोध्या से वरदा के तट पर स्थित कुंडिनपुर तथा कुश के दक्षिण कोशल की राजधानी कुशावती तक आने जाने की चर्चा रघुवंश के षष्ठ सर्ग एवं पंचदश सर्ग में की है। दोनों ही मार्गों में विन्ध्य पर्वत शृंखला और नर्मदा की चर्चा समान रूप से की गई है। अज के मार्ग में विन्ध्य के साथ ही 'ऋक्ष' सतपुड़ा पर्वत की भौगोलिक स्थिति का भी यथार्थ चित्रण हुआ है।

५. उक्त चारों मार्गों के स्पष्ट उल्लेख के साथ ही कवि ने कहा है कि श्री राम ने भारत के पुत्र तक्ष और पुष्कल को उनके नाम से स्थापित तक्षशिला और पुष्कलावती का शासक बनाया था। और अयोध्या से दूत भरत को लेने के लिए केकय देश गये थे। साथ ही अग्निमित्र के अश्वमेध के यज्ञीय अश्व के रक्षक कुमार वसुमित्र अपने सैनिकों के साथ पुष्पपुर से चलकर सिन्धु नदी तक पहुंचे थे।

यह सब विवरण कालिदास-द्वारा निर्दिष्ट उत्तरापथ के विभिन्न मार्गों की ओर संकेत कर रहे हैं। कालिदासोक्त दक्षिणापथ और उत्तरापथ के विविध मार्ग जो एक ओर दक्षिण में कन्याकुमारी तथा पश्चिम में अपरान्त या भृगुकच्छ तथा दूसरी ओर पश्चिमोत्तर में बाल्हीक से पुष्पपुर (पटना) को जोड़ते थे, तात्कालिक राष्ट्रीय मार्गों के परिचायक हैं।

निष्कर्ष

उक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कालिदास ने अपने काव्यों में भारत के मध्यक्षेत्र या मध्यदेश से सम्बद्ध भौगोलिक तथ्यों और तत्वों से सम्बद्ध सर्वांगीण सामग्री प्रस्तुत की है। पूर्व में मगध से लेकर पश्चिम में 'मरु' प्रदेश या सिंध और राजस्थान के रेगिस्तानी मरु प्रदेश तक और विंध्य से हिमालय की उपत्यका तक विस्तीर्ण भारत के मध्यदेश के कुरु, शूरसेन, कोशल, वत्स, दशार्ण, अवन्ति अनूप आदि जनपदों, कुरुक्षेत्र, हस्तिनापुर, कनखल, मथुरा, प्रतिष्ठान अयोध्या-साकेत, शरावती (श्रावस्ती) विदिशा, उज्जयिनी, माहिष्मती, दशपुर आदि नगरों, कण्व और वसिष्ठ व वाल्मीकि आदि ऋषि मुनियों के आश्रमों, उपवनों, सोम व अप्सरस्तीर्थ, पुर, पत्तन, ग्राम और घोषों, विन्ध्य, पारियात्र व हिमालय की उपत्यका आदि पर्वत शृंखलाओं, नर्मदा, चर्मण्वती, क्षिप्रा, यमुना आदि नदियों, नानाविध वृक्ष-लताओं, जीव-जन्तु एवं जन-जीवन का कहीं ब्योरेवार तो कहीं सूक्ष्म सांकेतिक चित्र प्रस्तुत किया है।

सप्तम-अध्याय

आकाशमण्डल

आकाशमाविष्कृतचारुतारम्

—रघुवंश, १३-२

आकाश मण्डल

सौर परिवार का सदस्य होने के नाते हमारा भूमण्डल स्वयं भी एक आकाशीय ग्रह है। सूर्य और उसके परिवार के बुध, शुक्र, पृथ्वी और उसका उपग्रह चन्द्रमा, मंगल, बृहस्पति और शनि आदि ग्रह और तारे अन्तरिक्ष में स्थित अश्विनी, भरणी आदि अनेक नक्षत्र और सवा दो-दो नक्षत्रों के योग से बनी एक-एक राशि के १२ तारकपुंजों के मार्ग से अयनवृत्त में निरन्तर परिभ्रमण कर रहे हैं। सूर्य या पृथ्वी की दैनिक व वार्षिक गतियों से ही दिन-रात व वसन्त-ग्रीष्म आदि षड्ऋतुएं बारी-बारी से आती रहती हैं। पृथ्वी और इस पर विद्यमान चराचर जगत का मूल उत्पत्ति स्थान सूर्य ही है। वर्षा का भी निमित्त कारण सूर्य ही है। पृथ्वी का उपग्रह चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। चन्द्रमा के आकर्षण से समुद्र में ज्वार आता है और समुद्र का वाष्पीभूत पानी ही मेघ बन कर धरती पर बरसता है। पृथ्वी के चारों ओर वायुमण्डल व्याप्त है। सूर्य, चन्द्र, मंगल और बृहस्पति आदि ग्रह चित्रा, पुनर्वसु व पुष्य आदि नक्षत्र, १२ राशियां, चैत्र आदि मास, चन्द्रग्रहण, चन्द्रमा के कारण समुद्र में उठने वाले 'ज्वार' सूर्य की उत्तरायण तथा दक्षिणायन गति और ऋतुचक्र तथा मेघ व इन्द्रधनुष की उत्पत्ति और वायुमण्डल आदि अनेक आकाशीय तत्वों की कालिदास ने प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों रूपों में यथास्थान चर्चा की है।

सूर्य

मंगल, बुध आदि अन्य ग्रहों के साथ ही हमारे भूमण्डल का भी उपादान कारण सूर्य ही है। कालिदास ने अपने काव्यों में सूर्य, उसके गतिचक्र, व कार्य-व्यापार का विज्ञानसम्मत काव्यात्मक वर्णन किया है। वेदों में सूर्य को जड़चेतनात्मक उभयविध सृष्टि का आत्मा बताया गया है[1]। तदनुसार कालिदास ने भी :—

चैतन्यमिवोष्णरश्मेः[2]

---

१. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। यजुर्वेद, १३-४६

२. रघुवंश, ५-४

कहकर सूर्य को इस समग्र चराचर जगत् को 'चेतना' प्रदान करने वाला बताया है।

बारह राशियां

सूर्य मेष, वृष आदि बारह राशियों में विभक्त अपने अयनपथ पर चलता हुआ बारह मास या एक वर्ष में अपनी परिक्रम पूरी कर लेता है। बारी-बारी से इन बारह राशियों में प्रवेश करने के कारण ही इसे 'द्वादशात्मा'[१] कहा गया है।

कालिदास ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि सूर्य क्रमशः बारह राशियों में स्थित रहता है—

प्राहुर्द्वादशधा स्थितस्य मुनयोः यत्तेजसः कारणम्।[२]

इस प्रकार सूर्य के बारह राशियों में स्थित होने का स्पष्ट उल्लेख करने के साथ ही कवि ने कहा है कि रघु के जन्म के समय पांच ग्रह अपनी उच्च राशियों में स्थित थे। और उनमें से कोई सूर्य के साथ (अस्त) नहीं था।

ग्रहैस्ततः पंचभिरुच्चसंश्रयै—
रसूर्यगैः सूचितभाग्यसम्पदम्।[३]

कवि ने इन राशियों के लिए प्रयुक्त पारिभाषिक संज्ञओं में से एक 'जामित्र' (लग्ने से सातवीं राशि) का नामोल्लेख भी किया है—

तिथौ च जामित्रगुणान्वितायाम्[४]

सत्ताईस नक्षत्र

कालिदास ने २७ नक्षत्रों में से चित्रा, विशाखा, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, कृत्तिका, रोहिणी और पुष्य जैसे कुछ नक्षत्रों के नामोल्लेख के साथ उनके तारों की संख्या भी दिखाई है। जैसे—

चित्रा

कवि ने कहा है कि चैत्र पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र से युक्त शुभ्र चन्द्रमा की भांति सुदक्षिणा के साथ शुभ्रवेशधारी महाराज दिलीप अत्यन्त सुशोभित

---

१. द्वादशात्मदिवाकराः। अमरकोष, ३-२८
२. अभिज्ञानशाकुन्तल, ७-२७
३. रघुवंश, ३-१३
४. कुमारसंभव, ७-१

हो रहे थे—

चित्राचन्द्रमसोरिव[1]

विशाखा—उसके दो तारे

अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त शकुन्तला को चन्द्रमा और प्रियंवदा तथा अनुसूया को उसके अनुगामी विशाखा के दो तारे बताता है :—

राजा—किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशांकलेखामनुवर्तेते ।[2]

इसी प्रकार विक्रमोर्वशीय में रम्भा कहती है—'विशाखा के दो तारों के साथ चन्द्रमा के समान उर्वशी और चित्रलेखा को साथ लेकर पुरूरवा इधर चले आ रहे हैं[3] ।

पुनर्वसु नक्षत्र के दो तारे

कवि ने श्रीराम और लक्ष्मण को धरती पर उतरे हुए 'पुनर्वसु' नक्षत्र के दो तारे कहा है :—

गां गताविव दिवः पुनर्वसू ।[4]

पुष्य नक्षत्र

पुष्य नक्षत्र की चर्चा करते हुए कालिदास ने कहा है—राजा 'पुत्र' का 'पुष्य' नामक पुत्र, दूसरा 'पुष्य' नक्षत्र ही था ।

पुष्यमिव द्वितीयम् ।[5]

उत्तराफाल्गुनी

उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा के योग से बने 'मैत्र' मुहूर्त के बारे में कवि का कथन है :—

मैत्रे मुहूर्ते शशलांछनेन
योगं गतासूत्तरफाल्गुनीषु ।[6]

---

१. रघुवंश, १-४६
२. अभिज्ञानशाकुन्तल, ३-१०
३. विक्रमोर्वशीय, १-१२
४. रघुवंश, ११-३६
५. रघुवंश, १८-३२
६. कुमारसंभव, ७-६

कृतिका नक्षत्र के छह तारे और रोहिणी

कालिदास ने कुमारसंभव में छः कृतिकाओं की चर्चा की है।[1] चन्द्रमा के साथ रोहिणी के योग की चर्चा करते हुए कवि कहता है :—

उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणीयोगम्।[2]

ध्रुव

विवाह के अवसर पर भगवान् शंकर ने पार्वती को ध्रुव का दर्शन कराया :—

ध्रुवेण भर्त्रा ध्रुवदर्शनाय
प्रयुज्यमाना प्रियदर्शनेन।[3]

शरद्ऋतु में तारे या सप्तर्षिगण ध्रुव के चारों ओर चक्कर काटते दिखते है :—

शरत्प्रसन्ने ज्योतिर्भिर्विभावर्य इव ध्रुवम्।[4]

अगस्त्य तारा

कालिदास ने अपनी उपस्थिति से शरद्ऋतु के आगमन की सूचना देने वाले अगस्त्य तारे के बारे में कहा है कि इस अत्यन्त तेजस्वी अगस्त्य के उदय हो जाने पर पृथ्वी का पानी निर्मल हो गया है :—

प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः।[5]

मंगल और उसकी वक्रगति

कालिदास ने मंगलग्रह के बारे में यह भी सूचना दी है कि यह वक्र गति से प्रायः पिछली राशि पर आ जाता है :—

विदूषकः—यावदंगारको राशिमिवानुवक्रं प्रतिगमनं न करोति।[6]

रात्रि के समय लाल रंग का मंगल ग्रह खूब दमकता है :—

नक्तमिव लोहितांगः[7]

---

१. कुमारसम्भव, १०-४२
२. अभिज्ञानशाकुन्तल, ७-२२
३. कुमारसंभव, ७-८५
४. रघुवंश, १७-३५
५. रघुवंश, ४-२१
६. मालविकाग्निमित्र, ३-२२
७. विक्रमोर्वशीय, ५-४

बुध और बृहस्पति

इन दोनों ग्रहों की चर्चा अप्रस्तुत रूप में करते हुए कवि ने कहा है कि भरत और लक्ष्मण के साथ श्री राम पताकाओं से सुशोभित पुष्पक विमान पर ऐसे चढ़ गए जैसे बुध और बृहस्पति के साथ चन्द्रमा सन्ध्या के समय बिजली वाले बादल पर जा बैठा हो। यहां सन्ध्या समय का उल्लेख कर कवि ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि सदा सूर्य के साथ रहने के कारण बुध सन्ध्या समय या प्रातःकाल ही दिखाई दे सकता है, अन्य किसी समय नहीं।

दोषातनं बुधबृहस्पतियोगदृश्य-
स्तारापतिस्तरलविद्यु दिवाभ्रवृन्दम् ।[1]

धूमकेतु

ग्रह—नक्षत्र व तारकगणों के साथ कवि ने कभी-कभी प्रकट होकर अपनी उपस्थिति से उत्पात की सूचना देने वाले धूमकेतु की भी चर्चा की है—तारकासुर को धूमकेतु बताया गया है —

उपप्लवाय लोकानां धूमकेतुरिवोत्थितः ।[2]

सूर्य-चन्द्र कालद्योतक

कालिदास ने कहा है कि कालज्ञान के प्रमुख साधन सूर्य और चन्द्र ही हैं :—

ये द्वे कालं विधत्तः[3]

सूर्य—चन्द्रमा का प्रकाशक

कालिदास का कथन है कि चन्द्रमा स्वयं प्रकाशमान नहीं है। वह सूर्य की किरणों से प्रकाशित होता है :—

करेण भानोर्बहुलावसने
संधुक्ष्यमाणेव शशांकलेखा ।[4]

अर्थात् शुक्लपक्ष में सूर्य की किरणों से चन्द्रमा के समान पार्वती जी वैवाहिक वेश में जगमगाने लगीं।

---

१. रघुवंश, १३-७६
२. कुमारसंभव, २-३२
३. अभिज्ञानशाकुन्तल, १-१
४. कुमारसंभव, ७-८

उत्तरायण और दक्षिणायन

कालिदास ने सूर्य की उत्तरायण तथा दक्षिणायन गतियों की चर्चा करते हुए कहा है कि जैसे सूर्य उत्तर और दक्षिण दोनों मार्गों को पवित्र करता है, वैसे ही राजा अतिथि ने अपने पितृ व मातृ-कुलों को पवित्र कर दिया था—

अपुनात्सवितेवोभौ मार्गावुत्तरदक्षिणौ ।[1]

इसके अतिरिक्त :—

दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि[2]

में यह भी बताया गया है कि दक्षिणायन में सूर्य की गर्मी कम हो जाती है ।

सूर्य और वृष्टिचक्र

कालिदास ने

सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ।[3]

कह कर सूर्य को वृष्टि-चक्र का निमित्त बताया है ।

इस प्रकार कालिदास ने चराचर जगत के उत्पादक कालज्ञापक, स्वयं प्रकाशमान तथा अपने प्रकाश से चन्द्रमा को प्रकाशित कने वासे सूर्य, उसका उत्तरायणऔरदक्षिणायनमार्ग से बारह राशियों में संचरण, और उसके द्वारा वृष्टिचक्र के प्रवर्तन जैसे सभी आवश्यक एवं उपयोगी तथ्यों को यथास्थान व्यक्त किया है ।

चन्द्रमा

चन्द्रमा और कमल संस्कृत काव्यों के अभिन्न अंग हैं । कालिदास के काव्यों में भी चन्द्रमा की शतशः चर्चा हुई है । चन्द्रमा-विषयक कुछ उद्धरण पहले यथास्थान दे दिए गए हैं । तथापि यहां चन्द्रमा से सम्बद्ध कुछ अन्य तथ्यों पर विचारकिया जाना आवश्यक है । चन्द्रमा से सम्बद्ध चन्द्रग्रहण और चन्द्र क्षयवृद्धि तथा ज्वार-भाटा इन दो भौगोलिक तथ्यों की विशेष चर्चा की जा रही है ।

चन्द्रमा के संबन्ध में सर्वप्रथम एवं प्रमुखतम ज्ञातव्य तथ्य यह है कि

---

१. रघुवंश,१७-२
२. वही, ४-४८
३. वही, १-१८

उसका अपना कोई प्रकाश नहीं है, वह सूर्य की रोशनी से ही चमकता है। कालिदास ने चन्द्रमा से संबद्ध इस तथ्य की जानकारी देते हुए कहा कि सखियों के द्वारा वधूवेश में सजाई गई पार्वती जी ऐसे दमक रही थी जैसे शुक्ल पक्ष की चन्द्रकला सूर्य की किरणों से चमक उठती है—

करेण भानोर्बहुलावसाने सन्धुक्ष्यमाणेव शशांकलेखा।

इसी प्रकार अन्यत्र स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि जैसे सूर्य की किरणों के पड़ने पर चन्द्रमा बढ़ता है, वैसे ही बालक रघु भी अपने पिता दिलीप की देखभाल से दिनोंदिन बढ़ने लगा—

पुपोष वृद्धि हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः।[1]

इसके विपरीत प्रतिपदा या द्वितीया को पूर्वदिशा में दिखाइ देने वाली पतली-सी चन्द्रकला का चित्र अंकित करते हुए कवि ने यक्ष के मुख से कहलाया है कि मेरी प्रियतमा मेरे विरह में ऐसी कृश हो गई होगी जैसे चन्द्रमा की नई कला हो—

प्रचीमूले तनुमिवकलामात्रशेषां हिमांशोः।

चन्द्रग्रहण

कालिदास ने राहु को 'छायाग्रह' मानते हुए स्पष्ट कहा है कि पृथ्वी की छाया ही चन्द्रमा के ग्रहण के रूप में दिखाई देती है—

छाया हि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता।[2]

वास्तव में चन्द्रमा पर पड़ने वाली पृथ्वी की छाया या अन्धकार ही 'राहु' है, इसीलिए अमरकोष में 'राहु' को 'तम' कहा गया है।[3]

कालिदास ने भी कहा है कि जैसे पथ्वी का तम, छाया या अन्धेरा पड़ने पर चन्द्रमा के ढक जाने से चांदनी नहीं रहती, वैसे ही स्वर्गीय माला के स्पर्श से इन्दुमती की आंखें तत्काल मुंद गई—

हृतचन्द्रा तमसेव कौमुदो[4]

चन्द्रमा तथा ज्वार-भाटा

उधर चन्द्रमा सूर्य की किरणों के प्रकाश से घटता-बढ़ता है। इधर

---

१. रघुवंश, ३-२२
२. रघुवंश, १४-४०
३. तमस्तु राहुः। अमरकोष, ३-२६
४. रघुवंश, ८-३७

धरती के समुद्र में चन्द्रमा के आधार पर ज्वार-भाटा आता रहता है।

चन्द्रमा का समुद्र व ज्वार-भाटे से अविनाभावी संवन्ध है। समुद्र में प्रतिदन ही २४ घन्टे में दो बार ज्वार आता है। पूर्णिमा को चन्द्रमा पृथ्वी के अधिक निकट होता है, फलतः चन्द्रमा का पृथ्वी की ओर आकर्षण बढ़ जाता है। उस समय समुद्र में विशेष ज्वार आता है और समुद्र का पानी उपर उठने लगता है। समुद्र कभी अपनी वेला का अतिक्रमण नहीं करता, किन्तु ज्वार का यह पानी समुद्र-संगम के स्थल पर नदियों में दूर-दूर तक बढ़ जाता है। चन्द्रमा की पूर्णता के साथ समुद्र में ज्वार आने तथा ज्वार के बाद पानी के फिर उतर जाने या 'भाटा' से सम्बद्ध इस वैज्ञानिक तथ्य की चर्चा करते हुए कालिदास ने कहा है कि चन्द्रमा पूर्णिमा के दिन परिपूर्ण होने के बाद क्षीण होने लगता है और इसी के साथ समुद्र में भाटा-पानी का उतराव आता है—

प्रबृद्धौ हीयते चन्द्रः समुद्रोऽपि तथाविधः।
स तु तत्समवृद्धश्च न चाभूत्तदिव क्षयी॥[1]

अर्थात् पूरा बढ़ चुकने पर चन्द्रमा घटने लगता है और समुद्र की भी यही दशा होती है। (ज्वार के बाद भाटा आता है) किन्तु महाराज अतिथि की समुद्र के समान वृद्धि तो हुई पर उसके बाद उनकी अवनति नहीं हुई।

इसी प्रकार कवि ने कहा है कि अपने पुत्र रघु का मुख देखकर महाराज दिलीप के हृदय में आनन्द का प्रवाह ऐसे उमड़ पड़ा, जैसे पूर्ण चन्द्रमा को देखकर समुद्र में ज्वार उमड़ता है—

महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शनाद्
गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि।[2]

अन्यत्र भी समुद्र में ज्वार का वर्णन किया गया है—

प्रत्युज्जगाम क्रथकेशिकेन्द्र—
श्चन्द्रं प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली।[3]

जैसे समुद्र अपनी लहरों को ऊंचा उठाकर चन्द्रमा का स्वागत करता वैसे ही विदर्भराज भोज ने नगर से बाहर आकर अज का स्वागत किया। इसी प्रकार दूसरे कई प्रसंगों में भी कवि ने ज्वार-भाटे की चर्चा की है। जैसे

---

१. रघुवंश, १७-७१
२. वही, ३-१७
३. वही, ५-६१

कि—

बभौ बलौघः शशिनोदितेन
वेलामुदन्वानिव नीयमानः ।[1]

अर्थात् कुश अपनी सेना को अयोध्या की ओर वैसे ही ले चले जैसे चन्द्रमा उदित होकर समुद्र को तट तक खींच लाता है।

इसी प्रकार कुमारसंभव में भी समुद्र के ज्वार का वर्णन करते हुए कहा गया है कि दुकूल धारण किए हुए भगवान् शंकर को अन्तःपुर की सुन्दरियाँ वैसे ही पार्वती जी के पास ले गईं, जैसे चन्द्रमा की किरणें झागों से उफनते हुए समुद्र को तट तक पहुंचा देती हैं—

वेलासमीपं स्फुटफेनराजिर्नवैरुदन्वानिव चन्द्रपादैः ।[2]

मेघ

आकाशस्थ वायुमण्डलीय तत्त्वों में मेघ का स्थान महत्त्वपूर्ण है। संपूर्ण जीव सृष्टि मेघाश्रित है। यही कारण है कि मेघ और उसके विभिन्न स्वरूप उसके नानाविध कार्यकलाप और उसके मार्ग तथा उत्पत्ति आदि के बारे में अनेकत्र दिए गए विवरणों से ही सन्तुष्ट न होकर मेघ के बारे में कवि ने एक गीतिकाव्य लिख डाला **मेघदूत**।

कवि ने बादल, बिजली, वर्षा, करका (ओले) और इन्द्रधनुष जैसे वर्षा और उससे सम्बद्ध भौतिक तत्त्वों का जो सारग्राही विवेचन मेघदूत में तथा अन्यत्र प्रस्तुत किया है, आज के भौतिक विज्ञान की कसौटी पर वह अक्षरशः सत्य और प्रामाणिक सिद्ध हो चुका है।

बादल के प्रमुख उपादान समुद्र और निमित्तकरण सूर्य के बारे में कवि ने बताया है कि समुद्र से ही सूर्य की किरणें जल लेकर गर्भ धारण करती हैं और बादलों को जन्म देती हैं—

गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्मात् ।[3]

अन्यत्र भी प्रमुखतया समुद्रजल से मेघोत्पत्ति से सम्बद्ध भौगोलिक तथ्य की चर्चा करते हुए कहा गया है कि जैसे मेघ समुद्र से पानी लेकर दानी बन जाता है, वैसे ही महाराज अतिथि से दान पाने वाले लोग भी बड़े-बड़े दान देकर दानी कहलाने लगते थे—

उदधेरिव जीमूताः प्रापुर्दातृत्वमर्थिनः ।[4]

१. रघुवंश, ६-५७
२. कुमारसंभव, ७-७३
३. रघुवंश, ३२२
२. वही, १३-४

मेघ के मुख्य उपादान 'समुद्र' के साथ ही नदी, तालाब आदि प्रत्येक जलीय तत्त्व को भी मेघ का जनक मानकर कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि धरती पर विद्यमान जल की नमी वातावरण में सदा व्याप्त रहती है और वही घनीभूत होकर बरस जाती है। गंभीरा, सिंध और सरस्वतीं व गंगा जैसी नदियों से मेघ के उठने और जल लेने की चर्चा द्वारा कवि ने मेघोत्पत्ति संबंधी वैज्ञानिक तथ्य ही प्रकट किया है। साथ ही—

धूमज्योतिसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः।[1]

में मेघ के सभी घटक तत्त्वों का कवि ने वैज्ञानिक विश्लेषण कर दिया है।

मेघों के प्रकार

खूब उमड़-घुमड़ कर उठने वाला महावर्त या आवर्तक, वर्षा की झड़ो लगा देने वाला 'संवर्त', मिली जुली तथा वर्षा की फुहार बरसाने वाला 'पुष्कर' और निरन्तर प्रभूत वर्षा करने वाला 'द्रोण' नामक मेघों के चार प्रकारों में में कवि ने—

जातो वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानाम्।[2]

में पुष्कर और आवर्तक इन दो की चर्चा की है।

बिजली

कवि ने—

मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः।[3]

आदि में बिजली का वर्णन किया है।

करका-ओले

वातावरण का तापक्रम उत्तरोत्तर कम होता जाता है। जैसे-जैसे धरातल से ऊंचा उठा जाये तो और ठंडक बढ़तो जातो है। यदि वातावरण में ठंडक हिमांक तक पहुंच जाये तो वर्षा की बूंदे बर्फ के रूप में जमकर करका वृष्टि करती हैं। निश्चित ही ग्रीष्म ऋतु में यह स्थिति केवल हिमालय के ऊपरी हिममय क्षेत्रों में ही संभव है। कवि ने—

तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्।[4]

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ-५
२. वही,
३. मेघदूत, पूर्वमेघ-५८
४. वही,

में वर्षा ऋतु में केवल हिमालय के उन्हीं ठंडे क्षेत्रों में ओलों की वर्षा दिखाई है। इस प्रकार करका-संबन्धी एक बहुत बड़ा और वैज्ञानिक तथ्य उद्घाटित किया है।

इन्द्रधनुष

"वैज्ञानिकों ने स्पष्ट किया है कि जब आकाश की वाष्प जलबिंदु का रूप ग्रहण कर लेती है और ऐसा मेघ सूर्य की किरणों के सामने पड़ जाता है तब प्रकाश की रश्मियों को विभिन्न घनत्व की सतहों में से निकलना पड़ता है जिसके कारण किरणें बिखर जाती हैं ओर सूर्य के सातों रंग अलग-अलग दिखाई देते हैं।"

इस प्रकार डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने मेघ की वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित उत्पत्ति का रहस्य तो बता दिया, किन्तु उन्हें यह विश्वास नहीं हो पाया कि कालिदास को इन्द्रधनुष की उत्पत्ति का यह सूक्ष्म वैज्ञानिक रहस्य भी ज्ञात था और उसका वर्णन भी कवि ने कहीं किया है।

इसीलिए वे आगे लिखते हैं "कवि को इस प्रकार सप्त पाताल से सत्य की कौड़ी निकालने की आकांक्षा नहीं। उसके लिए इन्द्र धनुष में अद्भुत जादू है।"

किन्तु यह लेखक यहां विनम्र निवेदन करना चाहता है कि कालिदास को इन्द्रधनुष की उत्पत्ति का रहस्य भलीभांति ज्ञात था।

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रक्ष्यमेतत्पुरस्ताद्—
वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य ॥[1]

आदि श्लोक में स्पष्ट कहा है कि 'वल्मीक' (ऐसा जलकणपूरित मेघ जिस पर सूर्य की तिरछी किरणें पड़ रही हों) के अग्रभाग से इन्द्रधनुष प्रकट हो रहा है।

यहां कवि ने वल्मीक का प्रयोग 'बामी' के अर्थ में न कर 'सातप मेघार्थक' पारिभाषिक शब्द के रूप में किया है। सौभाग्य से मेघदूत के एक टीकाकार श्री रामनाथ को सातप मेघ 'वल्मीक' का अर्थ ज्ञात था, उन्होंने वल्मीक का अर्थ सातप मेघ ही किया है। और अपने इस अर्थ के समर्थन में उन्होंने यह प्रमाण दिया है—

वल्मीकः सातपो मेघः वल्मीकः सूर्य इत्यपि।

डा० अग्रवाल ने उक्त श्लोक का अर्थ यही किया है, "इन्द्र का यह धनुखण्ड बाम्बी की चोटी से निकल रहा है।" पुस्तक के अन्त में दी गयी टिप्पणी

---

१. मेघदूत, पूर्वमेघ-१५

में उन्होंने स्वयं यह तथ्य प्रकट करते हुए भी मुक्तावली टीका में वल्मीक का अर्थ सातप मेघ दिया गया है। इन्द्रधनुष का वैज्ञानिक कारण तो यही है। लिखा है "किन्तु इसमें सन्देह है कि कालिदास इस तथ्य की ओर संकेत कर रहे हैं अथवा किसी लोक विश्वास पर आश्रित कवि कल्पना की ओर।"[1]

किन्तु कालिदास की कृतियों का सूक्ष्म अध्ययन करते हुए एक ऐसा तथ्य मरे हाथ लगा जिसके आधार पर निर्भ्रान्ति रूप से कहा जा सकता है कि कालिदास को इन्द्रधनुष की उत्पत्ति के बारे में उक्त वैज्ञानिक तथ्य हस्तामलकवत् स्पष्ट भासित था। और उसने निश्चित रूप से यहां 'वल्मीक' शब्द का प्रयोग सातपमेघार्थक पारिभाषिक शब्द के रूप में ही किया है।

कवि ने कुमारसंभव में इन्द्रधनुष की उत्पत्ति का वैज्ञानिक रहस्य स्पष्ट रूप से बताया है। वहां वह वल्मीक जैसे पारिभाषिक शब्दों के चक्कर में न पड़कर कहता है—"पानी की फुहारों पर पड़ती हुई सूर्य की तिरछी किरणें इन्द्रधनुष के रूप में प्रतिफलित हो जाया करती हैं।" प्रसंग इस प्रकार है--

"भगवान् शंकर गन्धमादन पर सूर्यास्त के समय की हिमालय की शोभा दिखाते हुए कहते हैं कि 'प्रिये देखो ज्यों-ज्यों दिन ढलता जाता है, त्यों-त्यों सूर्य की किरणें हिमालय के झरनों की फुहारों से हटती जाती हैं और उनके हटते ही उन फ़ुहारों में बनते हुए इन्द्रधनुष भी छिपते जा रहे हैं।"

सीकरव्यतिकरं मरीचिभिर्दूरयत्यवनते विवस्वति।
इन्द्रचापपरिवेशशून्यतां निर्झरास्तव पितुर्व्रजन्त्यमीः॥[2]

इस प्रकार स्पष्ट शब्दों में यह बता देने के बाद कि वर्षा की फुहारों पर प्रतिबिंबित सूर्य की सतरंगी तिरछी किरणें ही इन्द्रधनुष के रूप में दिखाई देती हैं, कवि ने अन्यत्र इन्द्रधनुष को 'तेजसधनुष' कहकर भी इसी वैज्ञानिक तथ्य को तीसरी बार फिर स्पष्ट कर दिया है—

तैजसः धनुषः प्रवृत्तये तोयदानिव सहस्रलोचनः।[3]

इन्द्रधनुष के लिए "तेजस धनुष—सूर्य के प्रकाश से निर्मित धनुष" इस सार्थक नाम का प्रयोग केवल कालिदास जैसा वैज्ञानिक दृष्टिसम्पन्न महाकवि ही कर सकता था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कालिदास का 'वल्मीक' 'सातप मेघ' ही है। और कालिदास ने इन्द्रधनुष की उत्पत्ति से सम्बद्ध वैज्ञानिक तत्व का प्रति-

---

१. मेघदूत एक अध्ययन, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृष्ठ-२२६
२. कुमारसंभव, ८-३१
३. रघुवंश, ११-४३

पादन अपने काव्यों में बार-बार किया है।

ओस, कुहरा या धुंध

वातावरण में व्याप्त नमी ही जब धरती के निकट घनीभूत हो जाती है तो कोहरा या धुंध के रूप में प्रातःकाल के समय सारे वातावरण को व्याप्त कर लेती है। सूर्य भी धुंध में स्पष्ट दिखाई नहीं देता। कालिदास ने

नीहारमग्नो दिनपूर्वभागे
किंचित् प्रकाशेन विवस्वतेव।[1]

में कोहरे का सही चित्र अंकित किया है।

ओस

वातावरण में व्याप्त नमी रात्रि की शीतलता में दूब तथा वृक्षों के पत्तों आदि पर पड़ी ओस की बूंदों का रूप ले लेती है। कवि ने—

कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं रंजयत्यग्रसन्ध्या।[2]

में झड़बेरी की झाड़ी के पत्तों पर पड़ी प्रातःकालीन सूर्य की किरणों से लाल रंग में रंगी ओस की बूंदों की सरस संश्लिष्ट चित्रोपम झांकी दिखाई है।

आकाशगंगा

कालिदास ने आकाशगंगा की भी अनेकत्र चर्चा की है। अभिज्ञान-शाकुन्तल में आकाशगंगा को ग्रह नक्षत्रों को ठीक-ठीक चलाने वाली गगन की प्रतिष्ठा कहा है—

त्रिस्रोतसं वहति यो गगनप्रतिष्ठाम्।[3]

अन्यत्र कहा गया है कि भगवान् शंकर के तेजोमय वीर्य से आकाश-गंगा भी खौल उठी—

सा सुदुर्विषहा गंगा धाम कामजितां महत्।
आदधाना परीतापमवाप व्योमवाहिनी॥[4]

वायुमण्डल

हमारी इस भूमि को ८०-९० कि०मी० ऊपर तक वायुमण्डल घेरे है। धरती पर जीवन तथा उसकी सुरक्षा में इस वायुमण्डल या वातावरण का भी

---

१. रघुवंश, ७-६०
२. अभिज्ञानशाकुन्तल, ४-३
३. अभिज्ञानशाकुन्तल, ७-६
४. कुमारसंभव, १०-४०

बहुत बड़ा हाथ है। अभिज्ञानशाकुन्तल में कालिदास ने स्वर्ग से धरती पर लौटते हुए दुष्यन्त और मातलि की बातचीत के माध्यम से पृथ्वी के इसी वायुमण्डल से सम्बद्ध वैज्ञानिक तथ्य का उद्घाटन किया है—

राजा—कतस्मिन्मरुतां पथि वर्तावहे।
मातलि—···वायोरिदिम् परिवहस्य वदन्ति मार्गम्।[1]

यहीं पर यह बताया गया है कि धरती के वायुमण्डल में प्रवेश करने पर वे लोग मेघों की सबसे ऊँची परत में आ पहुँचे—

गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणाम्।[2]

मास एवं ऋतुएं

कालिदास ने समय के सूचक दिन-रात, सायं-प्रातः, वर्ष-मास तथा ऋतुओं की यथाप्रसंग चर्चा की है।

वर्ष

मेघदूत में बताया गया है कि यक्ष को एक वर्ष के लिए अपनी पत्नी से दूर रहने का शाप मिला था—

शापेनास्तंगमितहृदयो वर्षभोग्येण भर्तुः।[3]

इस प्रकार अन्यत्र भी वर्ष के 'समा' आदि अन्य पर्यायों का उल्लेख हुआ है।

मास

वर्ष के बारह मासों में से चैत्र, वैशाख, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद व कार्तिक आदि कई मासों की भी कवि ने नामोल्लेख पूर्वक अथवा सांकेतिक रूप से चर्चा की है। मेघदूत में कहा गया है कि आषाढ़ के लगते ही उमड़ते घुमड़ते बादलों को देखकर यक्ष प्रियावियोग से व्याकुल हो उठा और उसने मेघ के द्वारा अपना संदेश भेजने का विचार किया—

आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुम्।[4]

यहीं पर यक्ष ने—

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ।[5]

---

१. अभिज्ञानशाकुन्तल, ७-६
२. वही, ७-७
३. मेघदूत, पूर्वमेघ, १-१
४. वही, २
५. मेघदूत, उत्तरमेघ, ५३

के द्वारा सूचित किया है कि हरिप्रबोधिनी एकादशी को मेरे शाप की अवधि समाप्त हो जायेगी और यह एकादशी कार्तिक शुक्ल में आती है, इस प्रकार कार्तिक मास की भी कवि ने प्रकारान्तर से चर्चा की है। इसी प्रकार कुमारसम्भव में 'कार्तिक' का स्पष्ट नामोल्लेख भी किया गया है—

श्वानः प्रमत्ता इव कार्तिके निशि।

वधू-वेश में सजी मालविका को धुंध या कोहरे से रहित तारों भरी निर्मल चैत्रविभावरी बताया गया है–

उडुगणैरुदयोन्मुखचन्द्रिका हतहिमैरिव चैत्रविभावरी।[1]

कवि ने चैत्र-वैशाख के लिए 'मधुमाधव' और श्रावण भाद्रपद के लिए 'नभनभस्य' जैसे वैदिक नामों का प्रयोग भी किया है।

विश्वामित्र मुनि के पीछे चल रहे राम लक्ष्मण को सूर्य के अनुगामी मधु माधव बताया गया है—

भास्करस्य मधुमाधवाविव[2]

अन्यत्र कहा गया है कि जैसे श्रावण और भाद्रपद के बीच में कोई अवग्रह वर्षा को ले उड़ता है, वैसे ही विराध ने राम-लक्ष्मण के बीच में से सीताजी को झपट लिया।

नभोनभस्ययोर्वृष्टिमवग्रह इवान्तरे।[3]

इसी प्रकार कहा गया है कि षट् कृतिकाएं माघ मास में गंगा-स्नान के लिए गई थीं—

जग्मुः षट्कृत्तिका माघे मासि स्नातुं सुरापगाम्।[4]

षड्ऋतुएं

बारी बारी से आकर भारतवर्ष की भूमि को नानाविध सौख्य समृद्धि प्रदान करने वाली छह ऋतुएं भी भारत भूमि का एक प्रमुख वैशिष्ट्य है। विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ छह विभिन्न ऋतुएं अपना रंग दिखाती हैं। इसी कारण षड्ऋतु-वर्णन यहां के महाकाव्यों का अपरिहार्य अंग माना जाने लगा। कालिदास को तो भारत की ये ऋतुएं और उनकी नित्य नवीन रहने वाली मनोहर रूपराशि इतनी प्रिय है कि उसकी काव्य-प्रतिभा का प्रथम उन्मेष ही षड्ऋतुवर्णनात्मक 'ऋतुसंहार' काव्य में हुआ है। उधर माल-

---

१. मालविकाग्निमित्र, ५-७

२. रघुवंश, ११-७

३. वही, ११-२८

४. कुमारसंभव, १०-४१

विकाग्निमित्र का अभिनय वसन्त में हुआ है—

कालिदासग्रथितवस्तुमालविकाग्निमित्रं नाम नाटकमस्मिन्वसन्तोत्सवे प्रयोक्तव्यम् ।[1]

इसके अतिरिक्त कवि अभिज्ञानशाकुन्तल की प्रस्तावना में ग्रीष्म को सुखद बताता है—

उपभोगक्षमं ग्रीष्मसमयमाधिकृत्य गीयताम् ।[2]

वर्षाऋतु को लेकर तो कवि ने पूरा काव्य ही लिख डाला मेघदूत।

"पंकज लक्षणा" शरद् ऋतु का बखान कवि ने रघुवंश के चतुर्थ सर्ग के १४ से २१ तक आठ श्लोकों में बड़ो ही प्रसन्न शैली में किया है।

गंधर्वनगर—कुमारसम्भव में गंधर्वनगर की भी चर्चा की गई है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास ने भारत के आकाश, उसमें विचरने वाले सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध और बृहस्पति आदि ग्रह, उपग्रह, मेष, वृष आदि १२ राशियों, विशाखा, कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसू, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी आदि नक्षत्रों वर्ष, द्वादश मास तथा छह ऋतुओं आदि के साथ चन्द्रग्रहण, चन्द्रमा के कारण उठने वाले सामुद्रिक ज्वार, बादल, वर्षा, वायु, ओले एवं इन्द्रधनुष तथा आकाशगंगा एवं धरती के वायुमण्डल आदि से सम्बद्ध खगोलीय तत्वों की वैज्ञानिक ढंग से काव्यात्मक शैलो में चर्चा करते हुए अपने पाठकों को इस विषय को भी सही-सही जानकारी दी है।

---

१. मालविकाग्निमित्र, १-१

२. अभि०शाकु०, १-२

अष्टम-अध्याय

उपसंहार

रथेनानुद्धातस्तिमितगतिना तीर्णजलधिः ।
पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधामप्रतिरथः ॥

—अभि० शाकु०, ७-३३

कालिदास के काव्यों में भारतवर्ष का भौगोलिक सर्वेक्षण

विगत सात अध्यायों में हमने कालिदास-निर्दिष्ट बृहतर भारत के भौगोलिक आदि तत्वों का यथामति विवेचन प्रस्तुत किया। इस विवेचन के आधार पर अनायास ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कालिदास ने अपने काव्यों में सम्पूर्ण भारतवर्ष और उससे सम्बद्ध आसपास के क्षेत्रों का एक प्रकार से प्रामाणिक सर्वेक्षण कर भारतभूमि, यहाँ के कण-कण एवं चरा-चर मात्र के प्रति अपनी अनन्य भक्ति व्यक्त की है।

कवि ने अपने इस सर्वेक्षण का आरम्भ भारतभूमि में स्वर्णयुग लाने वाले गुप्त सम्राटों की राजधानी पुष्पपुर—पटना की निकटवर्ती रघुवंशियों की राजधानी अयोध्या से किया है।

कवि ने अयोध्या से आरम्भ कर पूर्व में वंग या बंगलादेश, दक्षिण में लंका, पश्चिम में मरुभूमि, पश्चिमोत्तर में कम्बोज, (हिंदुकुश) उत्तर में सुमेरु से होते हुए पूर्वोत्तर में लौहित्य-ब्रह्मपुत्र तटवर्ती कामरूप जनपद में आकर समाप्त किया है। भारतवर्ष के चतुर्दिक सीमान्तों को छूने वाले इस परिक्रमा-मार्ग में दिखाई देने वाले नानाविध भौगोलिक तथ्यों और तत्वों को कवि ने अपनी इस सूक्ष्मेक्षिका से प्रत्यक्षवत् उजागर किया है। तदनुसार कवि के साथ इस लेखक की भारतभूमि के इस सर्वेक्षण का केन्द्रीय प्रस्थानबिन्दु भी अयोध्या और पुष्पपुर ही है।

श्री राम अकेले ही क्यों, रघु और सबसे बढ़कर महाराज अतिथि के शासनकाल के रूप में कवि ने गुप्तयुगीन भारत के ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, कला, और संस्कृति आदि सभी क्षेत्रों में सर्वांगीण समुन्नति के साथ अतुल सुखसमृद्धि का चित्र अंकित किया है। रघुवंश के अनेक सर्गों में मूलतः सोलहवें सर्ग के सातवें से तेईसवें श्लोक तक तथा तैंतीसवें श्लोक से सर्गान्त तक इस प्रकार लगभग पूरे एक सर्ग में अयोध्या के विगत वैभव और वर्तमान की उपेक्षित अवस्था के अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं। यहाँ अयोध्या के साथ प्रवाहित सरयू में स्नान, दान, तपोयज्ञ आदि धार्मिक क्रियाओं के साथ नौका-विहार और श्री राम के वैकुण्ठधाम पधारने के पावन स्थल "गोप्रतरघाट" का भी विशेषरूप से परिचय दिया गया है।

अयोध्या से कुछ ही दूर उत्तर में स्थित लव की तथा बौद्ध युग के प्रसिद्ध महाराज प्रसेनजित की राजधानी शरावती या श्रावस्ती गुप्त युग तक

उजड़ चुकी थी, इसलिए उसका नामोल्लेख मात्रकर कवि अपने पाठकों को आगे गौतमाश्रम, वामनाश्रम और विश्वामित्राश्रम आदि की एक झलक दिखाता हुआ विदेह नगरी या जनकपुरी में पहुंचा देता है।

विदेह नगरी से आगे बढ़ने पर पुष्पपुर आ जाता है। पुष्पपुर के मगध सम्राटों के लिये यह कह कर कि इस भूमण्डल पर भले ही सैंकड़ों राजा क्यों न हुआ करें, यह भारतभूमि इस मगध-नृपति के कारण ही राजन्वती है :—

कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये
राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम्।[1]

अपने युग के महान् गुप्त-सम्राटों के गुणों को ही व्यक्त किया है।

इस प्रकार कवि अपने पाठकों को पुष्पपुर, वहाँ के पाटलि पुष्पों से लदे उपवन तथा गंगा और शोण के संगम का दृश्य दिखाकर पश्चिमी बंगाल के सुह्म या आधुनिक मेदनीपुर जिले में पहुंचा देता है। सुह्म से कवि की यात्रा पूर्वी बंगाल या बंगलादेश में गंगा के मुहाने तक पूर्वदिशा में ही होती है। यहाँ से उसका सर्वेक्षण का कार्य पूर्वोत्तर के ब्रह्मपुत्र के तटवर्ती कामरूप या असम की ओर अग्रसर होता है और यहाँ वह अगर के वृक्षों के सुगन्धित वातावरण में अपने पाठकों को पहुँचा देता है।

कामरूप से वापस नीचे दक्षिण की ओर उतर कर उत्कल में कपिशा को पार कर नारियल, ताड़ और सुपारी के वनों से शोभायमान, पान के लता-मण्डपों से सुशोभित महेन्द्र पर्वत की घाटियों में से निकल कर कवि सहृदयों को कावेरी के आसपास पाण्ड्य देश में पहुँचा देता है :—

अनेन सार्धं विहराम्बुराशे-
स्तीरेषु तालीवनमर्मरेषु।[2]

इत्यादि श्लोक में कवि सुनन्दा के मुख से इन्दुमती के व्याज से अपने सचेत रसिक भारतीय पाठकों से मानो यह आग्रह कर रहा है कि आप लोग आइये और मलय व महेन्द्र की वनराजि से सुशोभित दक्षिण के समुद्र तटवर्ती प्रदेशों की एक मनमोहक छवि निहारिए तो।

दक्षिण में कवि अपने पाठकों को कावेरी समुद्र संगम के स्थल पर लेजा कर वहां पर समुद्र से मोतियों के निकाले जाने का एक दृश्य दिखाता है और लंका तथा भारत की मुख्य भूभि के बीच लहराते हुए समुद्र की उत्ताल तरंगों

---

१. रघुवंश, ६२२
२. रघुवंश, ६-५७

तथा तिमि-ह्वेलमछली आदि नानाविध समुद्र जीव-जन्तुओं की एक झलक भी गोचर करा देता है।

इस प्रकार कवि अपने पाठकों को अपने साथ दक्षिण में लंकापुरी तक लेजाकर वहाँ से वापस उत्तराभिमुख हो जाता है और श्रीराम के विमान मार्ग एवं रघु के विजय-यात्रापथ के माध्यम से अपने पाठक को दक्षिण क्षेत्र के कोने-कोने में घुमा देता है। यहां लोंग, इलायची और कालीमिर्च के खेतों तथा चन्दन और केवड़े के सुरभित वनों से लदे मलय और दर्दुर (वर्तमान) उटकमण्ड या उदकमण्डल—इन दोनों पर्वतों के बीच के मार्ग में से ले जाता हुआ सीधे केरल प्रदेश में पहुंचा देता है। समुद्र के साथ दक्षिणोत्तर में फैली हुई सह्य पर्वत शृंखला और अपरान्त महोदधि के बीच के केरल की संकरी उपत्यकाओं में से उत्तर की ओर अग्रसर होते हुए कवि अपने पाठकों के साथ त्रिकूट-वर्तमान महाबलेश्वर और गोकर्ण तीर्थ-गोमंतक या गोआ के ऊपर अपरान्त जनपद-भृगुकच्छ वर्तमान भडोंच और गुजरात तथा सौराष्ट्र की यात्रा पूरी करता है।

मध्य तथा उदीच्य क्षेत्र की सीमा पर स्थित पुष्कर या "त्रिपुष्कर" के स्पष्ट नामोल्लेख के बाद पुष्कर क्षेत्र के पश्चिम में फैले विशाल मरुस्थल की कवि ने 'मरुपृष्ठान्युदम्भांसि'[1] के द्वारा सांकेतिक चर्चा मात्र की है। पुष्कर के आगे कवि के उदीच्य क्षेत्रीय भौगोलिक विवरण कुरुक्षेत्र से आरम्भ होते हैं। कुरुक्षेत्र, सरस्वती नदी, रावी की सहायक भिद्य और उध्य नदी के पार पंजाब, केकय, सिंधुदेश, कारापथ, सिंधुनदी और तक्षशिला तथा पुष्कलावती की एक झलक दिखाकर कवि पाठक को पारसीक देश-ईरान की द्राक्षावलया-वृत मनोरम भूमि में पहुंचा देता है। यहां कवि ईरानी रेगिस्तान और अंगूर की बेलों के मण्डपों तथा केसर की क्यारियों में घुमाता हुआ पाठक को वंक्षु या औक्सस नदी के तट पर स्थित कम्बोज देश में पहुंचा देता है।

कालिदास ने कम्बोज से भी आगे सुमेरु (पामीर) की भी एक झलक अपने काव्यों में दिखाई है। सुमेरु से वापसी में वह अपने पाठक को कैलास, मन्दराचल, मानसरोवर और अलका की यात्रा करता हुआ क्रौंचरन्ध्र से हिमालय के गंगोत्तरी क्षेत्र के भूर्ज, देवदार और सरल, चीड़ के वनों में घुमाता है। इस प्रकार उदीच्य क्षेत्र के केसर-कस्तूरी, ऊनी शाल, अंगूर, अखरोट, सुर्मा और सेंधे नमक के क्षेत्रों में बिहार करता हुआ हिमालय की

---

१. रघुवंश, ४-३१

१५-२० हजार फुट ऊंची शृंखलाओं में कस्तूरी मृग और चमरी गाय के स्वच्छन्द विचरण के दृश्य दिखाता है।

मध्य क्षेत्र में कनखल, हस्तिनापुर, कण्वाश्रम तथा वसिष्ठाश्रम जैसे हिमालय की उपत्यकावर्ती नगर व तीर्थों, तपोवनों की पावन भूमि में लेजाकर कवि पाठकों को यमुनातटवर्ती ब्रजमण्डल के मथुरा, वृन्दावन व गोवर्धन के दर्शन कराता है और वहां से पूर्व को और अग्रसर होता हुआ 'वत्सदेश' से आगे प्रतिष्ठान-प्रयाग के त्रिवेणी संगम की नानाविध देवदुर्लभ झांकी दिखाता है।

कालिदास ने अपने पाठकों को बृहत्तर भारत के पूर्व दक्षिण उदीच्य और मध्यक्षेत्र का समग्र भौगोलिक सर्वेक्षण करा दिया और अपनी मातृभूमि मालवा तथा उज्जयिनी के दिव्यदर्शन तो कई बार कराए हैं, इस महाकवि ने।

चक्षुष्मत्ता तु शास्त्रेण सूक्ष्मकार्यार्थदर्शिना।[1]

के अनुसार ही अपनी नवनवोन्मेषशलिनी "लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षण"-जन्य अपूर्व प्रतिभा के बल पर अदृष्टचर विषयों को भी प्रत्यक्ष दृष्टवत् रूपायित कर देने की क्षमता दिव्यदृष्टि सम्पन्न कवि को प्राप्त है। अपनी इसी प्रतिभा के सहारे महाभारत के आदिपर्व के ६६ वे तथा ६८ वें अध्यायों के ८२ श्लोकों में सविस्तर-वर्णित कण्वाश्रम का चित्रण कवि परिमित रेखाओं में ही सजीवता व स्वाभाविकता के साथ कर पाया है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि दक्षिणपूर्व में द्वीपान्तर-इण्डोनेशिया से वंक्षु तथा कम्बोज-औक्सस नदी और हिन्दुकुश एवं लंका द्वीप से सुमेरु (पामीर) के पठार तक व्याप्त बृहत्तर भारत से सम्बद्ध नानाविध भौगोलिक तथ्यों का जैसा विवरण कालिदास ने अपने काव्यों में प्रस्तुत किया है, वैसा विवरण महाभारत के सिवा अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं है। महाभारत और कालिदास के भौगोलिक विवरणों में एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि कवि ने भौगोलिक स्थलों तथा अन्य सम्बद्ध तत्वों की झांकियां और झलकियाँ ऐसे काव्यात्मक रूप में दिखाई हैं कि भारत का यह चित्रण बड़ा ही सरस, सुन्दर और मनमोहक बन गया है। इस प्रकार प्रत्येक कृति और उसके प्रत्येक अंश से कवि की अपार भारत-भक्ति और सम्पूर्ण भारत राष्ट्र की ऐकता के लिए समर्पण की प्रबल भावना मुखरित हो रही है। •

१. रघुवंश, ४-१३

ग्रन्थकृदात्मवृत्तम्

राजस्थानेषु मेवाड़ः प्रदेशः सुमनोरमः।
अस्ति रायपुरं तत्र भीलवाड़ाख्यमण्डले ॥१॥
तिवारीलोइमागोत्रो गुर्जरगौड़मौद्गलः।
तत्र श्री टेकचन्द्रोऽभूत्षट्सुतास्तस्य जज्ञिरे ॥२॥
तेष्वेव रम्यगौराङ्गो बिहारीलालपण्डितः।
जातौ तस्य सुतौ श्रीमान् कालूरामस्तथापरः ॥३॥
श्री हरदेवशर्मास्ति ज्योतिर्विल्लोकविश्रुतः।
सुधाकरोऽस्य पुत्रोऽस्ति रोहितोऽस्य सुतः शिशुः ॥४॥
उज्जयिन्याश्च शिप्रायाः कालूहेड़ास्ति सन्निधौ।
तत्रत्योदर्यासिहस्य राज्ञो विज्ञः पितामहः ॥५॥
बिहारीलालशर्माणं व्यधात्स्वं राजपण्डितम्।
तत्रैव लब्धजन्मा श्रीकालूरामात्मजोऽस्म्यहम् ॥६॥
दत्त्वैव जन्म मे माता हाँसी बाई दिवं गता।
न्यवात्सीन्मे पिता तत्र गतेऽपि स्वर्पितामहे ॥७॥
पितृव्यं मे समुद्वाह्यात्यजद् ग्रामं पिता मम।
ततश्चोज्जयिनीं प्राप्य महाकालं समर्चयन् ॥८॥
ज्योतिर्विज्ञानदाक्ष्यायानुजं तत्र प्रवर्तयन्।
ज्योतिर्विद्भास्करादाप्टे श्रीगोविन्दसदाशिवात् ॥९॥
केतक्यध्ययनायात्रागाच्छ्रीमुकुन्दवल्लभः ।
सार्धं जयपुरं तेनाध्येतुं बधुञ्च प्रेषयन् ॥१०॥
अनुष्ठानादिसंलानो विहरन् यत्रकुत्रचिद्।
चन्द्रूखेड्यादिग्रामेषु कथाः पुण्याश्च श्रावयन् ॥११॥
लक्ष्मीनारायणीयेऽथाऽऽलोटस्थे नवमन्दिरे।
पूजारिप्रमुखस्थानमधितिष्ठन् समादृतः ॥१२॥
प्राप्यवन्तीन् पुनस्तत्र शिवस्याराधने रतः।
उषित्वैवं समाः काश्चिदनिकेतः पिता मम ॥१३॥
जले समाधिमास्थाय महाकाले व्यलीयत।
सूर्यनारायणस्याथ पितुः संकर्षणस्य च ॥१४॥
कुले नारायणस्यर्षेः सपितृव्यस्तदाऽवसम्।
विद्यारम्भोपवीताद्या उज्जयिन्यां ममाभवन् ॥१५॥
पितरौ शैशवेऽभ्यस्तौ ब्यावरे तदनन्तरम्।
श्रीहरदेवमाहूय मिश्रो मुकुन्दवल्लभः ॥१६॥
तत्साहाय्येन मार्तण्डपञ्चाङ्गमुपचक्रमे।
पितृव्येन च तेनाथ प्रापितोऽहं सुधासरः ॥१७॥
पुरामृतसरः प्रेरणापूर्णं लवपुरं ततः।
साहित्यिकप्रवृत्तीनां स्वाध्यायाध्यापनस्य च ॥१८॥

क्षत्रे मे शोभने आस्तां कौमारेऽप्यथ यौवने।
श्री हरि भानुदत्ताख्यः प्रज्ञाचक्षुर्विशारदः।
भ्रातृभ्यां सहितोवास प्रतिग्रहपरायणः ॥१९॥
कुर्वाणस्तिस्य कार्याणि पठने पाठने रतः।
चन्द्रशेखरमाश्रित्य बालो वृद्धयुन्मुखोऽभवत् ॥२०॥
मण्डलं स्थापितं तत्र मातृभाषाप्रचारकम्।
स्तोत्रं परशुरामस्य राष्ट्रालोकस्तथाद्भुतः ॥२१॥
तत आत्मविलासाख्य आत्मानन्दामृतार्णवः।
अमृतवाग्भवाचार्यग्रन्थास्तत्र प्रकाशिताः ॥२२॥
आदर्शमहिलाविद्यालयोऽपि स्थापितस्ततः।
गीताश्लोकद्वयाभ्यासं चक्रेण सूत्रकृन्तनम् ॥२३॥
छात्रास्तत्र सदाकुर्वन् स्वदेशरागरञ्जिताः।
प्रभाकराद्या हिन्द्यास्तु प्राज्ञाद्याः संस्कृतस्य च ॥२४॥
आंग्लीया मेट्रिकाद्याश्च परीक्षास्ता उदातरन्।
श्रीमन्मदनलालस्य ज्येष्ठां पुत्रीं शकुन्तलाम् ॥२५॥
उत्साहोद्धवमध्ये मां पितृव्य उदवाहयत्।
ततो लवपुरं गत्वा साहित्यसृजने रतः।२६॥
त्यक्त्वा लवपुरं रम्यं भारतस्य विभाजने ॥२७॥
शाहपुराख्यमागच्छम्पुरं स्वश्वसुरालयम्।
तत्र नाहरसिंहस्य प्रख्यातनृपतेः सुतः ॥२८॥
श्रीमानुम्मेदसिंहोऽभूदाहिताग्निर्नृपोत्तमः।
राज्ये सुदर्शनं देवमभिषिच्य सुतं स्वयम् ॥२९॥
वानप्रस्थाश्रमं लेभे राजासौ शास्त्रमर्मवित्।
तेनैव राजकीयस्य ब्रह्मविद्यालयस्य वै ॥३०॥
प्रधानाध्यापकस्याहं पदे श्रेष्ठे नियोजितः।
परं साहित्यसेवार्थं त्यक्त्वा तत्पदमुत्तमम् ॥३१॥
दिल्लीं प्राप्तो वसाम्यत्र निर्वहन्येनकेनचित्।
रविशर्मसुभासौ च भारतानन्दशर्मणौ ॥३२॥
सन्त्येते मे सुताः सौम्या वामाङ्गं मे शकुन्तला।
रवेर्विजयकृष्णोऽथ पुत्रोऽन्यो जयशङ्करः ॥३३॥
राजीवश्चारविन्दश्च सुभासस्य सुताविमौ।
गुरुवर्यः शिवः साक्षादाचार्योऽमृतवाग्भवः ॥३४॥
सद्गुरुः साइनाथोऽस्ति शिर्डीतीर्थे प्रतिष्ठितः।
सिद्धयन्ति तद्दयादृष्ट्या कार्याण्यखिलान्यपि ॥३५॥
सेवारतस्तु वाग्देव्याः शंकरस्य प्रसादतः।
सप्ततिवर्षदेशीयो हृद्रुग्णोऽप्यधुनास्म्यहम् ॥३६॥

—o—

इलाहबाद स्तम्भ पर उत्कीर्ण समुद्रगुप्त-प्रशस्ति



इस स्तम्भ-लेख में पूर्व में बंगाल से लेकर दक्षिण में पांड्य तक समुद्रगुप्त की तथा महरौली के स्तम्भलेख में उत्कीर्ण चन्द्रगुप्त द्वितीय की एवं भीतरी शिलालेख में स्कन्दगुप्त की पश्चिमोत्तर में वाल्हीक तक की विजय-गाथा ही संयुक्त रूप से कालिदास ने रघु की दिग्विजय के रूप में अंकित की है।

महाकालेश्वर मन्दिर



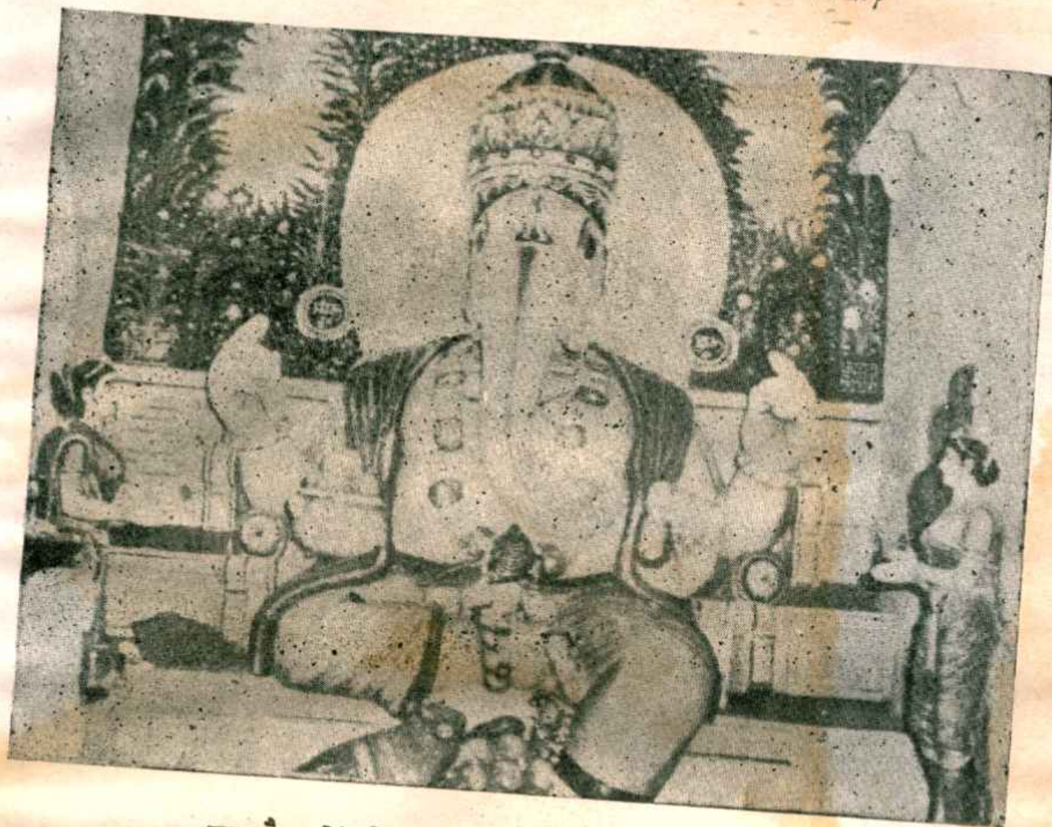
पुण्यं यायास्त्रि...भुवनगुरोर्धाम ...

...वी...

...भः।

भ... १७८ शब्...

उज्जैन के बड़े गणेश (लेखक की विद्याध्ययन-स्थली)



उज्जैन में क्षिप्रा का एक मनोहारी दृश्य



नीचगिरि (उदयगिरि) के महावराह



महावराह गुप्तयुग में विदेशी आक्रान्ताओं से भा[illegible]के [illegible]
थे। कालिदास कहते हैं—

रथी निषङ्गी कव[illegible] धनुष्मान् दृ[illegible]

निवर्तयामास [illegible] कल्पक्ष[illegible]

भीतरी शिलालेख [illegible] शब्दों [illegible]

उन्हीं नीचैर्गिरि-गुफाओं के गणेश



कालिदास ने नीचै[illegible] गुफाओं का वर्णन तो किया है, पर वे गणेश [illegible] भी नहीं, यह [illegible] गणेश-प्रतिमा को लेकर कहा जाता है।

आम्रकूट (पचमढ़ी) की एक झलक



आम्रकूट और 'अमरकण्टक' में नामसाम्य के रहते हुए भी कालिदास का आम्रकूट पचमढ़ी है, अमरकण्टक नहीं।

★ सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम् ★
संस्कृतं संस्कृतिश्चैव रक्षणीये प्रयत्नतः।

आर्य भारती के द्वारा प्रकाशित व प्रचारित
डा० भवानी शंकर त्रिवेदी
एवम्
अन्य विद्वानों की
आपके ग्रन्थालय के लिये
परमोपयोगी

कुछ नवीन रचनाएँ

★

आर्य भारती
(संस्कृत साजतीय-भारोपीय-भाषा संस्थानम्)
जी-१८, दिलशाद कालोनी, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

डा० त्रिवेदी की रचनाएँ—

संस्कृतम् यूरोपीया भाषाश्च

भारोपीया नवाः प्रत्ना भाषा हि संस्कृतानुगाः ।
प्रकृतिर्विकृतिश्चासां अत्र इतः सुपरीक्षिते ।।

इस ग्रन्थ में तुलनात्मक भाषा विज्ञान के नियमों का विवेचन करते हुए सैकड़ों, हजारों उदाहरणों के द्वारा यह भली भांति दर्शाया गया है कि यूरोप की ग्रीक, लेटिन, फ्रेन्च, रूसी आदि और विशेष रूप से अंग्रेजी और जर्मन आदि भाषाएँ संस्कृत से विकसित हैं, या उनका विकास संस्कृत के द्वारा ही समझा जा सकता है।

संस्कृत के महत्त्व के परिचायक मनमोहक आवरण से युक्त सुन्दर, सुनहरी जिल्द एवं परिपुष्ट कागज पर मुद्रित डिमाई ४१६ पृष्ठ के इस ग्रन्थ के राज संस्करण का मूल्य—१[illegible] रुपये।

कालिदासचर्चित बृहत्तर भारत

भारतस्य पराभक्तिः रक्षणं वेदसंस्कृतेः ।
राष्ट्रैक्योद्बोधनं ध्येयं कालिदासस्य मन्महे ।।

ग्रन्थ का यह उद्देश्य बता कर विद्वान् लेखक ने इस ग्रन्थ के द्वारा कालिदास को पढ़ने-पढ़ाने की एक सर्वथा नई और सही दिशा दिखाई है—

विक्रम वि०वि० उज्जैन (संस्कृत अध्ययनशाला) के आचार्य एवं अध्यक्ष डा० श्रीनिवास रथ के निम्न शब्द इस ग्रन्थ के गौरव के प्रत्यक्ष परिचायक हैं।

'आज भारत में विघटन की शक्तियों का सामना करना और देश की अखण्डता का संरक्षण सर्वोपरि महत्त्व के प्रश्न हैं। इस महनीय कार्य में जिस अदम्य साहस और शक्तिमत्ता की हमें आवश्यकता है, उसका अवलम्ब भी हमें अपनी सांस्कृतिक धरोहर से ही प्राप्त हो सकता है। मुझे पूरा विश्वास है कि डॉ० भवानीशंकर त्रिवेदी के साथ 'कालिदास चर्चित बृहत्तर भारत' की यात्रा वर्तमान युवा पीढ़ी को नया आत्मविश्वास प्रदान करेगी। यह आत्म-विश्वास आज के भारत के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कालिदास के भारत के लिये था।

मनोहर कपड़े की जिल्द व अनेक चित्रों तथा मानचित्रों से विभूषित डिमाई पौने चार सौ पृष्ठ के इस ग्रन्थ का मूल्य १०० रु०।

MAXMULLER'S

India what can it teach us

with its Hindi Translation

भारत से हम क्या सीखें

इस ग्रन्थ के बाएं पृष्ठ पर मैक्समूलर की पुस्तक का मूल अंग्रेजी व उसके सामने के पृष्ठ पर हिन्दी अनुवाद दिया गया है। मूल्य—१०० रु०।

मोक्षमूलरवैदुष्यम् (नाटकम्)

मैक्समूलर के समग्र जीवन में व्याप्त संस्कृत-सेवा एवं भारत-भक्ति को दर्शाने वाला हिन्दी अनुवाद एवं भूमिका आदि सहित नाटक। मूल्य ४० रु०

संस्कार प्रकाश

यह तथ्य है कि हमारा सम्पूर्ण जीवन संस्कारों से ही निर्मित होता है। इस ग्रन्थ में विवाह एवं यज्ञोपवीत आदि सभी छोटे-बड़े संस्कारों का विवेचन एवं विधि-विधान शास्त्रीय पद्धति से प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। पारस्कर के सूत्र, उनकी व्याख्या तथा समग्र विधिविधान संस्कृत और हिन्दी में दिया गया है। साथ ही प्रत्येक संस्कार की उपयोगिता व महत्त्व आदि का विवेचन भी वैज्ञानिक ढंग से किया गया है।

रायल साइज के ३२० पृष्ठों में मुद्रित इस सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य— इस का प्रकाशन श्रीलालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ ने किया है।

नित्यकर्मप्रकाश

इस पुस्तक में प्रातः काल से लेकर रात्रि में सोते समय तक स्नान सन्ध्यावन्दन, पञ्चमहायज्ञ, देवार्चन आदि प्रमुख कर्त्तव्यों की विवेचना एवं शास्त्रीय पद्धति से सम्पूर्ण विधिविधान के साथ ही गोत्र प्रवर तथा ऋष्यादि के सम्बन्ध में पूरी-पूरी जानकारी दी गई है।

सद्गृहस्थों के लिये अत्यन्त उपयोगी यह पुस्तक प्रत्येक परिवार में रहनी ही चाहिए। यह ग्रन्थ श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय विद्यापीठ के द्वारा प्रकाशित है।

भारत की विश्व को देन

'इण्डिया ह्वाट केन इट टीच अस' का स्वतन्त्र हिन्दी अनुवाद। मूल्य-६५ रु०

हमारा हिन्दी साहित्य और भाषा परिवार

सन् १९५० में पहली बार मुद्रित, डा० त्रिवेदी विरचित हिन्दी साहित्य का यह इतिहास स्नातक एवं स्नातकोत्तर छात्रों व प्राध्यापकों में अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। तीसरा संस्करण छप रहा है।

India what can it teach us (Only English) **Rs. 65.00**

हिन्दी कवि सर्वस्व

सन् १९५८ में पहली बार मुद्रित इस सचित्र ग्रन्थ की भूमिका श्रीरामधारीसिंह दिनकर ने लिखी है। वे लिखते हैं—

....'इसकी शैली में समीक्षा और इतिहास दोनों ही शैलियों की झाँकी मिलती है।...विद्वान् लेखक ने इन सभी सामग्रियों और मतभेदों के सार को बड़ी योग्यता के समेटा है। नवीन संशोधित परिवर्द्धित तीसरा संस्करण छप रहा है।

पूज्यपाद आचार्य श्री अमृतवाग्भव जी महाराज के कुछ ग्रन्थ—

१. श्री आत्मविलास—सुन्दरी नामक विस्तृत हिन्दी व्याख्या सहित अध्यात्मविद्या एवं दर्शनशास्त्र का एक सर्वथा नवीन अत्युत्तम ग्रन्थ। २५)

२. श्रीविंशतिकाशास्त्रम्—दो संस्कृत टीकाओं और एक हिन्दी व्याख्या समेत। अध्यात्मविद्या के गूढ़ रहस्यों का प्रकाशक। १०)

३. सिद्धमहारहस्यम् १०)

४. महानुभवशक्तिस्तव:—संस्कृत-हिन्दी टीका सहित। २८)

५. मन्दाक्रान्तास्तोत्रम् (देवी स्त्रोत)—हिन्दी अनुवाद सहित। ५)

६. अमृतसूक्ति-पंचाशिका—संस्कृत व्याख्या सहित। १०)

देववाणी परिषद के प्रकाशन

डा० रमाकान्त शुक्ल रचित/सम्पादित ग्रन्थ

भाति मे भारतम् (काव्यम्) ४०)

संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना (तीन भाग) १५०)

अभिशापम् (नाटकम्) २०)

पण्डितराजीयम् (नाटकम्) २०)

महाकवि रत्नाकरस्तदीयं हरविजयञ्च (डा० कृष्णकांत शुक्ल) १००)

पूर्णकुम्भ: (ललितनिबन्धसंग्रह:) पं० विष्णुकांत शुक्ल:) २०)

स्फूर्तिसप्तशती (डा० शिवदत्तशर्मा चतुर्वेदी) ३०)

डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी (मथुरा) के ग्रन्थ

श्री द्वारिकाधीश महाकाव्य (पुरस्कृत) ६०)

श्रीमद्भागवत के टीकाकार ,, ४५)

श्रीमद्भागवत पात्र एवं स्थानानुक्रमणिका ३०)

ब्रह्मसूत्र उपनिषद् एवं श्रीमद्भागवत १२५)

वितरक : आर्य भारती

त्रिवेदी जी के ये ग्रन्थ भी छप रहे हैं—

★ **संस्कृतम् ईरानीया भाषाश्च** (हिन्दी अनुवाद सहित)—इसमें फारसी (नई, पुरानी), पहलवी तथा अवस्ताकी भाषाओं का संस्कृत के साथ तुलनात्मक अध्ययन है।

★ **SANSKRIT COGNATE LANGUAGES**

★ **संस्कृत सजातीय भाषाएँ**—इसमें फारसी, अंग्रेजी, जर्मन, रूसी तथा ग्रीक व लेटिन आदि सजातीय भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन है।

★ **व्रतपर्वोत्सव प्रकाश**—(कर्मकाण्ड प्रकाश का तीसरा भाग)।